महाप्रस्थान के पथ पर

मूल लेखक—श्री प्रबोधकुमार सान्याल

अनुवादक—हरिकृष्ण त्रिवेदी

सरस्वती प्रेस, बनारस कैंट

इलाहाबाद · लखनऊ · बनारस सिटी

प्रथम सस्करण १०००
दिसम्बर, १९४१
मूल्य—दो रुपये

• स्व० रवीन्द्रनाथ ठाकुर •

'तुम्हारा यात्रा-वर्णन शास्त्रिक-पथ मे नहीं चलता, भौगोलिक-पथ पर नहीं चलता, वह चलता है मनुष्य-पथ पर। कितनी शताब्दियों से दुःसाध्य साधनरत मनुष्य का दुर्गम यात्रा का प्रयास अटूट चला जा रहा है—यह तीर्थयात्रा उसी का प्रतीक है। कभी तुम भी उसी के आकर्षण से चले थे.. ये नाना प्रदेशों के हैं, नाना घरों के है, ये बहुत विचित्र हैं किन्तु फिर भी एक हैं—इनके साथ-साथ चलते हैं सुख और दुःख, आशा और आशङ्का, जीवन और मृत्यु का घात-संघात—इसी युग-युगान्तर-पथ के पथिक मानव-चित्त ने अपनी अश्रान्त उत्सुकता के स्पर्श का संचार किया है तुम्हारे वर्णन में—उसका कौतुक और कौतूहल पाठक को स्थिर नहीं रहने देता।

मुद्रक और प्रकाशक
श्रीपतराय, सरस्वती-प्रेस
बनारस कैंट

महाप्रस्थान के पथ पर

उपक्रमणिका

मन का आदमी दुनिया मे मिलता नही, आदमी का मन इसी से सगीहीन है। असल मे हम सब अकेले हैं। मनुष्य का मनुष्य के साथ मिलन होता है बाहरी प्रयोजन के लिए बन्धुत्व के प्रयोजन के लिए, सृष्टि के प्रयोजन के लिए, स्वार्थ के प्रयोजन के लिए।

उस दिन कम्बल, झोला, लोटा और लाठी लेकर जब एकदम अकेले हिमालय की यात्रा के उद्देश्य के लिए तैयार हुआ, कोई संगी नही मिला, उस दिन किसी के ऊपर अभिमान नहीं किया, निरासक्त निर्लिप्त मनुष्य निरुद्देश्य होकर चला।

वैशाख के प्रारम्भ की चिता चारो ओर जल रही है, समग्र आर्यावर्त्त सूर्यदेव के अभिशाप की अग्निवृष्टि से गतिहीन हो गया है, मैदान धू-धू कर रहा है, सारा आकाश बादलों के लिए आकुल है ऐसे दिन काशी से हरिद्वार की ओर चला। जब हम स्थिर, सीमाबद्ध, कूप-मडूक, नगर-सभ्यता के जुए को कन्धे पर लेकर, आँखो पर पट्टी बाँध कर घूमते हैं, तब हम यह नही समझ पाते कि इसके बाहर बृहत्तर जगत है, उदार जीवन है; प्रतिदिन की लाभ-क्षति तथा सकीर्ण जीवन की तुच्छता-क्षुद्रता के पीछे एक परम आह्वान है, इस बात को हम भूल जाते हैं। चारों ओर जिस तरह झाड़-झखाड़ जमता है, उसी तरह मनुष्य भी जुटते हैं लेकिन जिस दिन पथ की पुकार सुनाई देती है, जिस दिन दूर की विकल वशी बजती है, उस दिन सब छोड़-छाड़कर अकेले-अकेले ही चलना पडता है, उस समय और अपेक्षा नहीं, पीछे देखना नही।

फैजाबाद पार हुआ, पार हुआ लखनऊ, पीछे रह गई बरेली. गाड़ी भागी जा रही थी। मेरी इस यात्रा के पथ मे कोई पद्धति नहीं थी, आयोजन नही था, यह जिस तरह विशृङ्खल थी उसी प्रकार

आकस्मिक भी थी। शेष रात्रि मे लकसर पार कर जब हरिद्वार आकर पहुँचा, उस समय देखा कि यह बिलकुल ही नया राज्य है! ठंढी हवा से सारा शरीर काँप गया है, इतना ठंढा है कि हाथ-पाँव ठिठुर जाते हैं, गरमी से मुक्ति पाकर आनन्द हुआ, शरीर मे आया उत्साह और मिली गति की चचलता। शेष रात्रि का अन्धकार, सिर के ऊपर नक्षत्र-खचित काला आकाश, आस-पास में कृष्णकाय प्रहरियो की तरह पहाड़ो की श्रेणियाँ, मधुर शीतल वायु—इन सबके बीच मे होकर मार्ग को खोजता-खोजता धर्मशाला की ओर चला।

हिमालय के जितने प्रवेश-पथ हैं उनमे हरिद्वार सर्वश्रेष्ठ और सुगम है। यहाँ केवल तीन ऋतुएँ होती है—वर्षा, शीत और वसन्त। निकट मे ही गगा की कलस्वनी तथा उपल-मुखरा नील धारा है। नदी के किनारे-किनारे सन्यासियो के अड्डे और आसन हैं, धूनी जल रही है, गाँजा पिया जा रहा है; वेद, गीता और तुलसीदास की आलोचना हो रही है। ब्रह्मकुण्ड मे स्नान, कुशावर्त मे श्राद्ध और तर्पण—कही भी चंचलता नही, जीवन-सग्राम नहीं . निर्विवाद और निर्लिप्त। इस समय यात्रियो की बहुत भीड़ है, सबका ही पथ बदरीनारायण की ओर है, आँखो और मुख से उत्साह टपक रहा है, सब यात्रा के आयोजन में व्यस्त हैं, उनके साथ ही पडो तथा कुलियो की कच-कच हो रही है। छोटा शहर, छोटा बाजार—बाजार मे शीतकालीन अनाज तथा तरकारी को भिन्न-भिन्न कतारो मे सजाया गया है—उस तरफ भोलागिरि की धर्मशाला और आश्रम है। आश्रम मे बंगालियो के ही कर्तृत्व तथा उनकी प्रतिपत्ति की ही प्रधानता है। सभी गृह-विरागी, गेरुआधारी तथा सिर मुँड़ाए हुए हैं— कई भद्र और सम्भ्रान्त परिवारो की सन्तान हैं, कही भी वे आत्म-परिचय नही देते, देने की बात भी नही, गगा के किनारे इस आश्रम मे, तपस्या मे वे अपने जीवन को उत्सर्ग किये हुए है। सुनने मे आया कि इस मनोरम निभृत योगाश्रम मे भी मनुष्य के छोटे-मोटे झगड़े चलते रहते हैं और सशय तथा विद्वेष बीच-बीच मे सयम तथा तपस्या का आवरण हटाकर, अपना सिर उठाकर खड़े हो जाते हैं। तीर्थ-यात्रियो के सिवा अनेक यहाँ स्वास्थ्य-सुधार के लिए भी आये है।

समुद्र के किनारे पथ खो जाने पर मनुष्य जिस तरह निरुपाय होकर उसकी ओर देखता रह जाता है, हिमालय के किनारे खडे होकर मैंने भी उसी प्रकार दूर दिशा की ओर एक बार देखा। लक्ष्यहीन.

निरुद्दिष्ट पर्वत श्रेणियाँ, इनका आरम्भ कहाँ से होता है और अन्त कहाँ होता है—यह सब समझने का कोई उपाय नहीं है : बद्रीनाथ किस दिशा की ओर है ?—केवल मेघो के पार मेघ, पहाड़ो के पार पहाड़—उत्तुङ्ग, कठिन और निर्दय। वास्तव मे मैं 'नर्वस', भयचकित तथा आरामप्रिय हूँ, दुस्साहस है किन्तु साथ ही साध्य नही—इस बात को इस तरह मैं आगे नही समझ सका। मन मे खयाल आया—अभी भी समय है, वापस हो जाऊँ किंवा किसी आश्रम में छिप कर दो महीने बाद स्वदेश को वापस लौटकर कह दूँगा कि घूमकर आ गया ! इसी बीच में सिरे पर लोहे से मढ़ी हुई एक लाठी खरीदी, क्रेपसोल कैनवेस के जूते खरीदे। ईसबगोल, मिश्री, भोजन के मसाले, हड़-बहेड़ा आँवला, और आमाशय की औषधियो से कन्धे का झोला भारी हो गया, यात्रियो के पास से मुक्त रूप मे उत्साह और उद्दीपन मिल रहा है, कितना भय, कितनी दुश्चिन्ता और कितनी सान्त्वना है। क्या करूँ, पथ की विपत्तियो और कष्टो की कथा सुनकर छाती पर साँप लोटने लगता है, कैसे वापस जाऊँ, देश से यदि एक विपद्‌सूचक जरूरी तार आ जावे तो बच जाऊँ, इससे तो जेल जाना अच्छा था ; एक बार मन मे भी आया कि मार्ग के किनारे खड़े होकर दो बार 'वन्देमातरम्' ही बोल दूँ जिससे गिरफ्तार हो जाऊँ—किन्तु मुख में और आवाज ही नहीं, कण्ठ में शक्ति नहीं, हृदय मे साहस नहीं, केवल निरुपाय पश्चात्ताप से दूर रेलवे लाइन की ओर एक बार देखा।

नहीं, लौट पड़ने का अब उपाय नही है। सगी नहीं, बन्धु नही, परिचित भी कोई नही। यात्रियों में से प्राय. सभी ससार से सम्पर्क छोड़कर आये हैं, शायद वापस लौटने की आशा ही वे नही करते, इन्तजाम पूरा हो चुका है. उनकी दृष्टि मे जीवन का मूल्य और कुछ नही, पैरो से, बराबर चलकर देह क्षय करके, एक दिन अन्तिम रूप से वे शय्याशायी होंगे ! इसी धर्मशाला से शीघ्र बगाली यात्रियो का एक दल बद्रीनाथ को चलनेवाला है। दल के साथ केवल एक पुरुष है और सभी वृद्धा तथा प्रौढ़ा हैं। स्त्रियो में पुण्यकामना और तीर्थ-यात्रा का आग्रह पुरुषो की अपेक्षा अधिक होता है—शायद इसके पीछे एक तत्व है. किन्तु इस बात को यहीं रहने दीजिये। दल के साथ चलनेवाले पुरुष का नाम ज्ञानानन्द स्वामी था : वह ब्रह्मचारी था और उसका सिर घुटा हुआ था : जाति से बगाली. उम्र में युवक, भद्र एवं शिक्षित, सिर पर गेरुआ रंग की रेशम की पगड़ी. पाँवों मे मोजे और जूते. देह

पर कुर्ता, चादर, गजी गेरुए से ही रंगे थे—ऐसा जान पड़ता था कि आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न हैं। उसके साथ मे उसकी माता थी और साथ मे चलनेवाली करीब बीस स्त्रियाँ। सहज ही में बातचीत होने लगी। स्वामीजी बोले—आपके जाने का तो कोई कारण नही है! यह दुर्गम पथ ..कितनी विपत्ति आप घर को लौट जाइये।

मैंने कहा—यह क्या, वापस चला जाऊँ? मैंने भी तो गेरुए से कपड़े व चादर रँग लिए हैं, स्वामीजी!

स्वामीजी मुख की ओर ताककर, मानो कुछ देखकर हँसे। बोले—संन्यास ले रहे है? वह तो आपके लिए नही है! मैं समझता हूँ कि आपका वापस लौट जाना ही अच्छा हैं, यह बड़ा कठिन पथ है। इसके सिवा गेरुए वस्त्र धारण करने से ही तो . सन्यासी होने के लिए तो उसका मन्त्र है, शोधन है, नाना क्रिया-कलाप आपके कारण हम बदनाम होते हैं, लोग हम पर विश्वास करना नहीं चाहते!

और दो-चार बातो का उपदेश देकर वे चले गये। उनको यह नही जतला सका कि मै सारे रास्ते आगे चलने-चलने हुए भी पीछे रह जाने की ही चेष्टा कर रहा हूँ।

दो दिन तक पथ मे, बाजार मे, नदी के किनारे तथा मन्दिर-मन्दिर-मे घूमता रहा। मन की बात किसको बतलाऊँ?

बाहर उत्साह प्रकट कर रहा हूँ, जाने का आयोजन कर रहा हूँ, किन्तु भीतर ही भीतर मेरी ज़रा भी इच्छा नही—इस बात पर आज कौन विश्वास करेगा? हाय, तब भी जाना होगा मुझको, बिना देखे बद्रीनाथ के दिन नही कट सकने, उन्हे मेरी बड़ी लालसा है!

तीसरे दिन अपरान्ह में यात्रा , जिनके साथ धर्मशाला में रहने से थोड़ा परिचय हुआ था उनसे म्लान हँसी के साथ विदा ली। धर्मशाला का मैनेजर एक बंगाली छोकरा था, नाम—चाटुर्य्ये गाने-बजाने, अच्छे व्यवहार और अपनी मीठी बोली से उसने सब यात्रियो को मुग्ध कर लिया था। उसने सकरुण आँखों से विदा दी। पथ में उतर आया। कन्धे पर एक तरफ रस्सी से कम्बल बँधा था, और एक तरफ झोला, हाथ मे लाठी और रस्सी से बँधा लोटा, पाँवो मे कैनवेस के नये जूते। आँखो मे शून्य दृष्टि, हृदय मे अवसन्नता, आत्मग्लानि, प्राणो मे भय, देह मे निरुत्साह, इसी तरह रास्ते पर चला। बाजार पार कर बड़े रास्ते के ऊपर आया, हृषीकेश तक मोटर बस पाई जाती है। गला सूख गया था, एक गिलास भर शर्बत पीकर गाड़ी मे बैठ

गया। भाड़ा दस आने है और रास्ता पन्द्रह मील का। जाने कौन पीछे से ठेल रहा है।

देखने-देखते वेला हो गई। पहाड़ों के पदतल से माथे की ओर सूर्य उठा, एक-एक करके ऋषीकेश के यात्री गाड़ी में चढ़कर बैठ गये। कितनी भीड़ और कितना कोलाहल। माथे पर पगड़ी बाँधे हुए, खुरदुरी दाढ़ी और मूँछवाला एक साधु आ पहुँचा। उसकी उम्र को कम समझ कर और उसके पास भी झोला, कम्बल, व लोटा देखकर साहस करके करुण कण्ठ से मैंने कहा—आप कहाँ जायँगे साधूजी ?

मुख की ओर देखकर वह हँसे। गाड़ी उसी समय छूटी। उनकी हँसी सन्यासी की स्वर्गीय हँसी नही थी, बन्धु-भावपूर्ण हँसी थी। बोले—बदरीनारायण को। ओऽम नमो नारायण !

चुप होकर मुँह फेरकर बैठ रहा। थोड़ी खुशी हुई, एक सगी मिला ! किन्तु इस खुशी को जाहिर करना दुर्बलता का परिचय देना था। कुछ मिनट बाद, झोली के भीतर से दो पान बाहर निकालकर, हाथ बढ़ाकर साधुजी स्मित हास्य से बोले, 'लीजिये महाराज, खाइये।' ऐसा कहकर उन्होंने दूसरे हाथ से बीड़ी बाहर निकाली।

उनके मुख की ओर मैंने अपना मुख उठाकर देखा। वह फिर हँसे। हँसकर परिष्कृत बँगला में बोले, 'कहाँ से आ रहे हैं ?' हँसकर मैंने कहा—अभी तक नहीं पहचान पाया, आप बगाली है ?

'हाँ, आप बद्रीनाथ जा रहे हैं ?'

'हाँ।'

चलती हुई गाड़ी में बातचीत होने लगी। उनका नाम पागल भोला ब्रह्मचारी था; ब्रह्मचारी ही उनको प्राय बोला जाता था। बहुत दिन हुए जब उन्होने सन्यास लिया था, परिव्राजक बनकर बहुत देशो का पर्यटन किया है। संसार में क्या है और क्या नही, उसका कुछ हिसाब नहीं रखा है, रखने का प्रयोजन भी नही है। भगवद्गीता उनको कठस्थ है—संसार माया है, कर्म-त्याग ही मुक्ति है, भगवान के प्रति पूर्ण विश्वास और परिपूर्ण आत्मदान छोड़कर मनुष्य की गति नही, जीवन तुच्छ है, मोक्ष-लाभ ही परम लक्ष्य है। भक्ति से भरी उनकी वाणी सुनी। बीड़ी पीते-पीते वह बातचीत कर रहे थे। वास्तव मे जीवन मे यही प्रथम सत्संग पाया।

गंगा के किनारे-किनारे गाड़ी चल रही है, कहीं-कही ऊँचा-नीचा पहाड़ी रास्ता है, बीच-बीच में पत्थरो के टुकड़े पड़े हैं, छोटे-छोटे झरने

हैं, कहीं कही संन्यासियो के अड्डे है, छोटे-छोटे देवालय हैं, नदी के उस पार पहाड़ हैं, नीचे बबूल के घने जगल हैं। गाड़ी तेज चली जा रही है। बाँई ओर रेल की लाइन देहरादून की ओर गई है, छोटे-छोटे स्टेशन मिल रहे हैं जो जन-शून्य से हैं, दक्षिण म ऋषीकेश की ओर रास्ता गया है। रास्ते मे जाते समय भीमगोड़ा चट्टी मिली। यहाँ एक गुफा है, पूर्वकाल मे भीम के अश्वक्षुराघात से इस पर भारी चोट पड़ी थी। उसके बाद सत्यनारायण का मन्दिर मिला। मन्दिर के पास काली कंबलीवाले की सदाव्रत चट्टी है। जो चिह्नित साधु-सन्यासी हैं, वे मुफ्त मे यहाँ आहार और आश्रय पाते हैं। गाड़ी कई मिनट के लिए रुकी तो ब्रह्मचारी उतरकर मन्दिर का दर्शन कर आये। देव, द्विज और संन्यासी मे उनकी अविचलित भक्ति थी।

दिन का अवसान हो गया है, पश्चिम दिशा की लाल रेखा इस बीच मे म्लान हो चुकी है, वन की छाया और पर्वतो के अन्धकार मे झिल्ली-रव जाग उठा है, गाड़ी ऋषीकेश की एक धर्मशाला के निकट आकर रुक गई। सब उतर गये। इस समय थोड़ा निर्भय हो गया। पास ही मे काली कम्बलीवाले की विराट धर्मशाला है, यही उनका प्रधान कार्यालय है। यह कम्बलीवाले एक साधु थे। अख्यात और नगण्य रूप मे यह साधु बद्रीनाथ गये थे, संबल था केवल एक काला कम्बल। रास्ते मे बहुत दुःख-कष्ट मिला था, उपवास मे दिन काटे थे क्योकि दरिद्र यात्रियो के पास से दरिद्र साधु की भिक्षा भी नही जुट पाती थी; किन्तु इसी महापुरुष ने, एक दिन अपने परिश्रम और अपनी चेष्टा से, हृदय के एकान्तिक आग्रह से देश-देश मे भिक्षा संग्रह कर निरुपाय साधु-संन्यासियो के दुःख को दूर किया। उनकी कृपा ही से इस समय रास्ते मे स्थान-स्थान पर सदाव्रत की व्यवस्था हुई है। आज वह इस ससार मे कहीं नही है, किन्तु असख्य निःसबल सन्यासियो का नतमस्तक प्रणाम निरन्तर उनके चरणो मे पहुँचता रहेगा।

ब्रह्मचारी बोले—मुझे भी तो सदाव्रत लेना होगा दादा! गरीब प्राणी हूँ, इसी आशा से तो आया हूँ। आप दया करके मेरी ओर से प्रार्थना कर दीजिये।

भीतर भीड़ थी, कोलाहल था; उसी को पार करता हुआ गद्दी के पास जाकर खड़ा हुआ। हिसाब-पत्र लेकर गद्दी का मैनेजर और क्लर्क बैठे हैं। आस-पास मे प्रायः पच्चीस-तीस साधु-भिक्षुक हाथ जोड़कर करुण नेत्रो से खड़े हैं। कोई-कोई प्रार्थना अस्वीकृत हो जाने पर अपनी-

अपनी अवस्था का वर्णन कर निवेदन कर रहे हैं, कोई बद्रीनारायण की शपथ लेकर कह रहे हैं कि वे वास्तव में सन्यासी ही हैं, दूसरे के मत्थे खाने-पीने का खर्च मढ़कर भ्रमण का शौक लेकर वे नही आये हैं, वे तो वास्तव मे नितांत निरुपाय तीर्थ-यात्री हैं। यह सब दृश्य देखकर ब्रह्मचारी का मुँह सूख गया और जब उसने सचमुच ही यह सुना कि वह भी सदाव्रत का टिकट नही पा सकेगा, उस समय उसने वही पड़े-पडे कहा—क्या होगा दादा, मैं तो बहुत आशा करके .मैंने तो यह सुना था कि जो आता है वही टिकट पाता है !

इस बात को वह नही जानता था कि पृथ्वी में इतनी बड़ी दान-शीलता कहीं भी नहीं है। दान के सम्बन्ध मे इतनी कड़ाई होने से ही तो दान का इतना मूल्य है !

अतएव निराश होकर ब्रह्मचारी को लौटना पड़ा, उसका चेहरा देखकर डर लगने लगा, रास्ते मे जो आनन्द और उत्साह उसमें था, वह बिलकुल मिट गया, कण्ठ हो गया रुद्ध, सर्वहारा की तरह हताश—म्लान आँखों से देखकर वह बोला—तो लौट जाऊँ सामान्य पाँच-सात रुपए लेकर इतने दिनो का रास्ता। तब तो लौट ही जाऊँ !

मन में बहुत बुरा लगा। मैंने कहा—लौट जाने के सिवा उपाय ही क्या है, सत्य ही तो है कि और उपवास किये रास्ता नहीं पार किया जा सकता।

परमुखापेक्षी का चेहरा ही ऐसा होता है। जब वह आशा से प्रज्वलित होता है तब तो दावानल बन जाता है और जब बुझता है एकदम राख का ढेर। ब्रह्मचारी जिस समय बिलकुल बालक की तरह सग-सग चलने लगा, उस समय मैंने स्पष्ट रूप से अनुभव किया कि भगवान मे उसका पूर्ण विश्वास शिथिल हो गया है। सदाव्रत न मिलने पर उसकी दरिद्रता का सत्य रूप मेरी आँखो के आगे विषम रूप से प्रगट हो गया।

नीलधारा के किनारे आकर बैठ गया। अन्धकारपूर्ण नदी, तरग-सकुल जल के ऊपर नक्षत्रों का प्रकाश चमक रहा है, भयकर और रहस्यमय, पर्वत के गम्भीर गह्वर से काला जल वन्य-जन्तु की भाँति चीत्कार करके चला आ रहा है, जल-प्रवाह के अविश्रान्त शब्द से चारो दिशाएँ मुखरित हो रही हैं। किनारे पर, बहुत दूर तक कहीं-कहीं धूनी जलाकर संन्यासी आसन डाले हुए हैं। एक निरुद्वेग, निविड़ प्रशान्ति है। तपस्या के लिए निश्चय ही उपयुक्त स्थान है।

एक बड़े पत्थर के ऊपर हम दो आदमी चुपचाप बैठे थे। पत्थर के ऊपर से जल बाहर फूट रहा है। अकेला ही जाऊँगा, उसको लौटना ही होगा, किन्तु क्या कहकर सान्त्वना दूँ, यही सोच रहा था, बात यह है कि इस क्षेत्र मे सब सान्त्वना ही उपहास की तरह सुनाई देगी ! मेरी इस समस्या का उसने ही खुद समाधान कर लिया। अन्धकार मे उसने अपनी चिन्तित दो आँखो को ऊपर उठाकर मेरा एक हाथ पकड़कर कहा—दादा, इतना परिश्रम मेरा व्यर्थ गया, तब लौटना ही होगा, क्या बोलते हैं ?

मैने कहा—यही तो सोच रहा हूँ।

वह बोला—मै अच्छे घर का लड़का हूँ, तब भी आपसे कहते मुझे सकोच नही, यदि कभी पा जाऊँ तो आपका ऋण मैं चुका दूँगा। लौटूँगा तो मै नहीं, रास्ते मे जिससे उपवास न करना पड़े, इसी के बारे मे आपसे प्रार्थना है। मै तो अब लौटूँगा नही दादा।

'कितने दुःख से आया हूँ, यह आपको क्या बतलाऊँ ! छः सौ मील रास्ता चलकर एक दिन हरिद्वार पहुँचा साथ मे और कोई नही था दादा, समझे ? केवल एक आशा थी, मन के अनुकूल एक मठ बनाऊँगा। बहुत दिनो से बद्रीनाथ जाने की इच्छा है, कितने दिनो से बराबर मन मे सोच रहा हूँ '

शरीर झाड़कर, उठकर, मैने कहा—चलिये, जो कुछ होना है, होगा। लौटने का काम नही, यदि उपवास ही करना पड़ेगा तो दोनो आदमी एक साथ करेंगे। चलिये, रात काटने के लिए एक जगह तो देख ले।

अत्यन्त कृतज्ञता से ब्रह्मचारी ने केवल इतना कहा—चलिये दादा।

अनेक अनुसन्धान एव सिफारिश के बाद अस्पताल के पास मे एक यात्रिशाला मे रात बिताने के लिए जगह मिली। यात्रिशाला के दालान मे जगह बहुत संकीर्ण थी। अन्धकार मे कई गढ़वाली कुली-मजदूरो का एक जमघट बैठा था, श्रद्धा दिखलाते हुए वे हमारे लिए स्थान छोड़कर एक ओर को सरक गये। भीतर देखा तो यात्रियो का एक दल नज़र आया। बँगला भाषा मे उनकी बातचीत सुनकर घर मे घुस पड़े। एक वृद्ध-से व्यक्ति ने अभ्यर्थना करके बैठाया। सारे घर मे करीब पन्द्रह स्त्रियाँ इधर-उधर पड़ी हुई थी।

मैंने पूछा—कहाँ से आ रहे है आप लोग ?

'कालीघाट से। आप ?'

'मैं काशी से आ रहा हूँ। यह परिव्राजक हैं।' उन महाशय की बड़ी दाढ़ी थी, यात्रियों की तरह सिर पर बाल थे, गेरुआ-वस्त्र पहने थे, शरीर में एक गरम वेस्ट-कोट था, पाँव मे पहरेदारो की तरह काली बनात की पट्टियाँ बँधी थीं। छोटी एक चिलम मे तम्बाकू भरा हुआ था।

उन्होंने पूछा—आप ?

मैंने कहा—ब्राह्मण, आहा हा, क्या करेंगे ? मै उम्र मे बहुत छोटा हूँ!

'इससे क्या, ब्राह्मण-सन्तान तो हो,' यह कहकर उन्होने जबर्दस्ती मेरे पाँवों की धूल माथे पर रख ली। बोले, 'बुड्ढा आदमी हूँ, इतने बाल-बच्चे को लेकर इस दुर्गम पथ पर ज़रा दया कर देखिये तो। मार्ग के सगी!' झोली से उन्होने दो बीड़ी हम लोगों के लिए बाहर निकालीं।

उनके साथ बातचीत करके फिर बाहर आया। प्रकाश जलाने का उपाय नही था। अन्धकार मे कम्बल फैलाकर दोनो जने पास-पास सो रहे। ब्रह्मचारी जँभाई लेकर अपने अभ्यासानुसार बोल उठा, 'ओम् नमो नारायण! ओम् तत्सत् :'

मैंने कहा—हम तो कोई रास्ता पहिचानते नही, किस दिशा की ओर जाएँगे ?

'एक ही रास्ता है, दूसरा नही। पूर्ण विश्वास लेकर चलेंगे दादा, डर किस बात का ? ओम् नमो नारायण।'

तरह-तरह की बातचीत होने लगी। अनेक पथो का इतिहास, कितने ही देशो तथा कितने ही राज्यों की कथा। ब्रह्मचारी बहुत दिनो से परिव्राजक-जीवन बिता रहा है, किन्तु विपुल अभिज्ञता होते हुए भी उसको आत्मोपलब्धि नही हो सकी। उसने जीवन को देखा है गीता मे, वेदो के कई श्लोकों मे, महाभारत और रामायण की कई घटनाओ मे, भगवान के प्रति तथाकथित पूर्ण विश्वास मे। धर्म की आलोचना मे उसके हृदयवेग का परिचय पाया जाता है, धर्मज्ञता और ज्ञान का प्रकाश नही पाया जाता। संसार मे सब कुछ सहज ही विसर्जन कर चुका है, नही छोड़ी है तो केवल आशा। आशा लेकर ही वह बचा हुआ है, आशा के बल पर ही उसका तीर्थ-पर्यटन है और आशा से ही उसका धर्म-जीवन है।

तन्द्राच्छन्न नेत्रो से पड़े-पड़े ही उसकी कथा सुन रहा था। वह एक

समय बोला – कितने स्थानो मे आसन डाला समझते हो दादा, बाँकुड़ा मे जयनगर है, जानते तो हो, उसी ग्राम मे एक पेड़ के नीचे . उसके बाद वृन्दावन गया, वृन्दावन से सीधा ज्वालामुखी . उँह, सुविधा नहीं हुई—आ गया हरिद्वार मे ; किन्तु यहाँ भी वही, धूनी जलाकर मूर्ख संन्यासी बैठे-बैठे गाँजा पीते हैं, जब खाने का समय आता है तो उन्हें भी भूख सताने लगती है .विशेषतः नशाख़ोर सन्यासियों का वह दल मुझे अच्छा नही लगता। उससे क्या होता है, बोलिये तो ? नशे की आँखो से ही यदि दुनिया को देखा

शरीर थक गया है ; आँखें बन्द करके बोला—यह तो ठीक ही है।

ब्रह्मचारी हँसकर बोला—'मैं निन्दा नहीं करता हूँ दादा ; हाँ, यह कहता हूँ कि यदि दिन-रात नशा ही किया जाय तो साधना के लिए समय कहाँ है ? साधना और तपस्या ही मै चाहता हूँ। जिस आसन पर बैठे हो उस आसन मे एक दिन अग्नि प्रज्वलित हो जाय, नाक चढ़ाकर नाभिश्वास . निन्दा मैं नहीं करता, लेकिन इससे वे क्या जानते हैं

वह फिर अपने आप बोला—ज़रूरत के मुताबिक नशा करना अच्छा है, समय के अनुसार, शरीर व मन दोनो ही ताजा रहते हैं .. यदि ज्यादा सर्दी पड़ रही हो, जाड़े के दिन हो, यदि रात में नींद न आती हो, हाँ, उस समय अवश्य निन्दा मैं नहीं करता दादा, उस समय तो यह पाप नही है, पाप बोलने से ही पाप कौन नहीं करता !

मैंने कहा—हाँ, यह तो ठीक है।

'मैं भी क्या पहिले नशा करता था ? जैसे जमता नही हो, वह अभ्यास की बात है, 'हैबिट इज दी सेकण्ड नेचर' - हा : हा : हा : .. आप तो सभी कुछ जानते हैं दादा, आप शिक्षित व्यक्ति हैं।' यह कहते-कहते वह हठात फिर बोल उठा, 'थोड़ा-सा उस दिन ख़रीदा था, वही गाँजा पड़ा हुआ है, पीने के लिए मेरी इच्छा नहीं है, वह सब क्या, बुरी आदत ! आः, मालूम होता है कि आज बहुत सर्दी है, एक-आध चिलम पी लूँ दादा ?' उस समय चारो ओर निर्जन, निस्तब्ध रात्रि का साम्राज्य था। गंगा के जल का शब्द, इतनी दूर से भी, मैं सुन रहा था।

यात्रा

वैशाख, १९, १३३९। उस दिन हमारी पैदल-यात्रा शुरू हुई। कन्धे पर गठरी और हाथ में लाठी लेकर दोनो वन्धु साथ रास्ता चलने लगे। पत्थर और कंकड़ो से भरा मार्ग, वाईं तरफ दूर पहाड़ की चोटी पर टिहरी का राजमहल ताजमहल की तरह सुशोभित है। उसके ही नीचे देहरादून के घने जंगल हैं। दक्षिण में प्रभात-सूर्य का निश्शब्द समारोह आकाश में प्रसारित हो रहा है। कुछ दूर जाने पर एक निस्तब्ध जंगल आया। उसमे एक छोटा गाँव मिला जहाँ भरत-शत्रुघ्नजी का एक मन्दिर था। मन्दिर के पार हो जाने पर हम धीरे-धीरे चलने लगे। पहाड़ की चढ़ाई प्रारम्भ हुई और हमारी चाल धीमी हो गई। पहाड़ी रास्ते पर चलने में वातचीत नहीं हो सकती। मुँह जब वन्द रहता है तो मन तब अपना काम करता जाता है। दो मील मार्ग तय करने पर ही हमें यथेष्ट थकावट मालूम होने लगी। नया जूता पैर मे लगने लगा, ब्रह्मचारी वगुले की तरह रुक-रुककर चल रहा है; वहुत दिनों के वाद उसने जूते पहने हैं, जूते पहनने की खुशी मे उसके पैर वातें करते-करते वढ़ रहे हैं। वहुत ऊँचाई तक रास्ता ऊपर उठकर फिर नीचे की तरफ़ झुक गया है। पहाड़ी-मार्ग अपनी इच्छानुसार यात्रियों को ले जाता है, समतल ज़मीन पर हमें स्वाधीनता होती है, चाहे जिस तरफ टेढ़े-मेढ़े चला जा सकता है, यहाँ वैसी बात नहीं है; यहाँ तो तुम पथ के अधीन हो; मार्ग के निर्देश पर ही तुम्हे चलना होगा। नीचे उतरने पर धीरे-धीरे पानी की आवाज़ तेज़ हो उठी, समझा कि नीचे आ रहे हैं। और कुछ दूर आकर लक्ष्मण-झूला पाया। गगा की नील-धारा के ऊपर पुल है; दोनो तरफ लोहे की साँकलों से वाँधा हुआ है। वद्री-नारायण के मार्ग के प्रायः सभी पुल लक्ष्मण-झूले की तरह ही वने हुए हैं, पार होने मे सारा पुल हिलता है, पुल टूट पड़ने का डर होता है, हमे भी डर लगा। पुल पार करने पर कई वगाली स्त्री-पुरुष मिले। हमने वद्रीनाथ की ओर पैर वढ़ाये हैं, यह सुनकर वे विस्मित हुए, और शुभेच्छापूर्वक नमस्कार करके उन्होंने हमें विदा दी।

सामने गगनस्पर्शी नीलकण्ठ पर्वत, उसके नीचे दक्षिण में स्वर्गाश्रम का श्वेत मन्दिर हंस के पखो की तरह सफेद, नीचे गंगा का नील जल-प्रवाह। विदा स्वदेश, विदा सभ्यता, विदा जन-समाज! आत्मीय वन्धु, परिचित सभी से मन ही मन विदा ली। हमारी आँखो मे सुदूर की

पिपासा है, अन्तर मे उद्दीपना और उत्साह और हृदय मे दु:साहसिक पथ-यात्रा का दुर्जय आनन्द है। हम गृह-विरागी हैं, किन्तु फिर भी मन भाराक्रान्त क्यो हो गया है ? क्यो इस प्रकार पैर कॉपने लगे। न जाने गले के अन्दर क्या अटक-सा गया ? शायद ऐसा ही होता हो ! मनुष्य के इस परित्याग के पीछे एक अनन्त वेदना का स्वर रहता है। इतनी माया, इतनी ममता, ऐसे हृदयावेग के खेल, तथापि ठीक समय मे चला जाना होता है, विदा लेनी पड़ती है। शायद एक दिन सवेरे का निर्मल प्रकाश, उज्ज्वल आलोक ऑखो पर से मिट जायगा। शायद इसी आकाश, इसी गगा, इसी पर्वतमाला, धरित्री के चारो तरफ के इसी मनोरम ऐश्वर्य-सम्भार को छोड़कर मैं विदा लूँगा , शायद वह दिन दूर नही उस दिन भी इस मृत्यु-लोक में इसी तरह आनन्द-कलरव चलेगा किन्तु जो क्षुधा, जो आशा, जो स्वप्न मैं जाने के समय पथ मे फेंक जाऊँगा, उसकी ओर फिरकर भी नही देखा जायगा।

कष्टदायक ऊँचा-नीचा मार्ग, पत्थरो से घिरा, बीच-बीच मे पहाड़ों मे पत्र-पल्लवो के अन्दर झरनो की आवाज़ सुनाई दे रही है, शेष-वसन्त के झड़े हुए पत्तो से मार्ग भरा हुआ है, मनुष्यो का आवागमन प्राय: समाप्त हो गया है और कोई आवाज़ नही सुनाई देती। नया जूता पैर काट रहा है ! पीठ पर बॅधे कम्बल और झोले की रस्सी से कन्धा दुख रहा है, शरीर थक गया। अनेक लोगो के अनेक उपदेश मिले थे, किन्तु वे केवल उपदेश ही थे। रास्ते मे उनकी सार्थकता खोजने पर भी नही पा सका, उलझन से बाहर निकलने का मार्ग ही नही मिलता था। दो घण्टे चलने पर ब्रह्मचारी शुष्क कण्ठ से बोला—आओ दादा ! थोड़ा बैठ जाये, थक गये हैं।

मार्ग के बगल से, शीतल छाया मे दोनो बैठ गये। नीचे नदी की कल-कल ध्वनि, वनमय पहाड़, पास ही एक छोटा-सा मन्दिर, निभृत और प्रशान्त—पुजारी ने हमे पीने को पानी दिया। पानी पीकर ब्रह्मचारी बीड़ी पीने लगा। बातचीत करने को कोई विषय नही था, बातें ही क्या हो ?—धीरे-धीरे पैर पसारकर सो गये।

ससार मे हृदयावेग का कोई मूल्य नहीं है यह ज्ञात है ; फिर भी इस मार्ग के पास सोने पर न जाने कहाँ से मानो अभिमान मन में प्रवेश करने लगा। शौक के नाते भ्रमण करने का मेरा कोई पेशा नही, शोर-गुल के साथ दलबद्ध होकर हवा बदलने की भी कोई बात नही, प्राकृतिक दृश्य देखकर जिनमे भावुकता आती है, ऐसे स्वल्प-प्राण,

उच्छ्वास-सर्वस्व लोगो को भी मैं जानता हूँ, अतः अपने को भी उनसे अलग होते नही देख सकता। आज सभी अच्छे मालूम हो रहे हैं। जो वन्धु हैं, जो विरूप हैं, जिनको छोड़ आया हूँ, जो जन्मभूमि—मेरे जीवन का आधार है, समाज और वस्ती अप्रसिद्ध और अनादृत, कोई भी तो अपना-पराया नहीं। आज अपना-पराया नही। आज मेरा सन्यासी का वेश है, किन्तु वह केवल परिच्छेद है, केवल बाह्य आवरण है, देश की वात सोचते ही, इस समय शरीर के लाखो स्नायु झनझन करके वज उठते हैं। सहज ही मे उस दिन जिस ममता का आश्रय छोड़कर चल दिये, उदासीन होकर जिनसे विदा लेकर चले, आज इस संन्यास के कृत्रिम आवरण के नीचे विच्छेद-कातर हृदय बोलता है, 'तुम लोग हमे भूल मत जाना, हम हैं, बचे हैं।'

एक दिन सभी मरेंगे, किन्तु निश्चिन्ह होकर मिट जाने की तरह सान्त्वनाहीन मृत्यु और कुछ नही ! हम निरुपाय, दुर्वल, भाग्य के खिलौने, फिर भी हम निरन्तर वचे रहना ही चाहते हैं। यही वचने की चेष्टा समस्त पृथ्वी पर अविश्रान्त रूप मे चल रही है। कोई वचता है नव-जीवन-सृष्टि के बीच में, कोई शिल्प और साहित्य में आत्म-प्रकाश करते हुए, कोई ख्याति और यश के लिए वचना चाहता है—यह जो समाज, सभ्यता, विज्ञान, साम्राज्य-प्रतिष्ठा हैं, इनके मूल में मनुष्य की वचने की अत्यन्त पिपासा रहती है। जो जीवन को असार समझकर मोक्ष-प्राप्ति की क्षुधा मे तीर्थ-भ्रमण मे घूमते रहते हैं, वे भी बचे रहना चाहते हैं, उसमें भी, रास्ते की धर्मशालाओ मे अपना-अपना नाम लिखे रखने का उनका कैसा अपरिसीम आग्रह और अध्यव्यवसाय दिखाई देता है। ब्रह्मचारी उठा और वोला—चलो दादा, शायद बारह बजे का समय हो गया है, निश्चय ही आपको भूख लगी है।

नि श्वास छोड़कर झोला और कम्बल उठाकर खड़े हो गये। वोला—कितने मील तय कर चुके होगे ब्रह्मचारी ?

रास्ते मे मील-पत्थर हैं। ब्रह्मचारी मन ही मन हिसाव लगाकर वोला—लगभग पाँच मील।

और कुछ दूरी पर गरुड़ चट्टी आ गई। एक वड़ी धर्मशाला है। नीचे एक दूकान, उसमें अधिक मूल्य पर सभी खाने की चीजें मिल जाती हैं। धर्मशाला के पास एक सुन्दर वगीचा और तालाब है। पास में पहाड़ से एक झरना बहता है, उसका ही पानी इस तालाब से यात्रियो के लिए एकत्र किया जाता है। चट्टी मे ठहरनेवालो के लिए

पीतल के बर्तन मिल जाते हैं, किन्तु इस शर्त पर कि वे चट्टीवाले से ही आटा, घी, चावल आदि खरीदे। जो कुछ न खरीदे, उसे चट्टी में स्थान पाना कठिन है। अनेक चट्टियो मे दो पैसे देने पर आश्रय पाया जाता है। सभी चट्टियो मे प्राय: एक ही नियम है। इस वेला यहाँ ही विश्राम, उस वेला मे फिर यात्रा। उस समय चट्टी की दूसरी मंजिल मे बहुत से यात्रियो का समावेश हो गया था। विश्राम के बाद दो बन्धुओ के खाने-पीने के आयोजन मे व्यस्त हो गया।

इसी तरह की हमारी यह यात्रा दोनो वक्त खाना पकाना, दो वक्त बर्तन मॉजना, दो वेला रास्ता चलना। दोपहर के समय भोजन करने के बाद गहरी निद्रा, मछली की तरह ताड़ना से मरे मनुष्य की तरह थका हुआ सिर-पैर घुमाकर आराम करता, तीसरे पहर फिर यात्रा प्रारम्भ होती है, शाम को किसी चट्टी मे आश्रय लिया जाता है; भोजन करने के बाद पशु की तरह निद्रा, सोते ही अचेत हो जाते हैं। चट्टियाँ अस्तबल की तरह तीन तरफ से बन्द, एक तरफ खुली हुई होती हैं, वृक्षो के तने और डालियों-पत्तों से तैयार की गई, कंकड़-पत्थर मिली मिट्टी से लिपी हुई, बिलकुल दरिद्र और मामूली होती हैं। हम यात्रियो के दल साज-पोशाक उतारकर चित लेट जाते है।

यात्री कई प्रान्तो से आते हैं, कोई दक्षिणी, कोई सिन्धी, कोई दल पंजाबी, उत्तर भारतीय, मारवाड़ी, उड़िया, गुजराती, महाराष्ट्रीय बगाली दल भी इसके बीच शामिल हो गया। यहाँ की साधारण भाषा उर्दू और हिन्दी का सम्मिश्रण है। दो-चार लोगो को छोड़कर सभी के पैरो में जूते हैं। अधिकांश लोगो के जूते कैन्वेस के है, और तले मे रबर की सोल हैं। और सुविधा भी इन जूतो के पहनने मे होती है। हाथ मे एक लाठी रखनी ही पड़ती है। उसके बिना यात्रा के अन्त तक चलना असम्भव है। लाठी ही मार्ग का एक मात्र उपकारी और निःस्वार्थ बन्धु है। अनेक यात्री गढ़वाली कुलियो की पीठ पर जाते हैं, कुलियो मे बहुत शक्ति होती है। काण्डीवाला उनका नाम होता है। काण्डी एक टोकरी की तरह होती है, जो पीठ पर बॉधी जाती है, उसके द्वारा माल भी जाता है और मनुष्य भी जाते है। काण्डी पर स्त्री-यात्री ही अधिकतर यात्रा करती है। डाँडियॉ आराम-कुर्सी की तरह होती हैं, उनके तले मे डडे लगाकर चार कुली कन्धे पर रखकर पालकी की तरह लेकर चलते हैं। सम्भ्रान्त यात्री डाँडी करके ही यात्रा करते है, यही सबकी अपेक्षा आरामदायक है। झॉपा भी होते है, मुर्दे की झॉझी की तरह उसका

चेहरा होता है, पद्मासन की तरह उस पर बैठा जाता है, इससे मार्ग का परिश्रम तो बच जाता है, किन्तु आराम नहीं मिलता। पहले-पहले तो यात्रियो के दलो में उत्साह होता है, पर चार-छः दिन बाद उनकी चाल मन्द हो जाती है। कोई लॅंगड़ा कर चलने लगता है, कोई पीछे रह जाता है कोई बीमार हो जाता है, किसी को चलने से घृणा हो जाती है, और कोई वापस चला जाता है। जिसे पहले स्वस्थ, सबल, प्रसन्नचित्त और मिष्टभाषी देखा था—कई दिनो के बाद उसके शरीर को दुबला-पतला, धूल और धूप से मलिन देखा, करुण-कातर दृष्टि है। शायद चलने मे उनके पाँवो मे दर्द रहता है, मुख और आँखो पर अस्वाभाविक वितृष्णा है और अत्यन्त चिड़चिड़ा स्वभाव हो गया है। पास खड़े होने से डर लगता है। यात्रियो की यह अवस्था कुली समझते हैं इसलिए जो बेकार कुली होते हैं, उनकी पीठ पर खाली काण्डी झूलती रहती है, कई दिनो तक धैर्यपूर्वक वे यात्रियों के झुण्डो के पीछे-पीछे चलते हैं। फिर देखा जाता है, धीरे-धीरे एक-एक करके उनके खरीदार मिल जाते हैं, तब यात्रियों की गरज समझकर कुली बहुत किराया माँगते हैं, और आखिर लाचार होकर यात्रियो को देना ही पड़ता है। गर्ज बुरी बला है। इस रास्ते में सभ्य-समाज की तरह चोरी-डकैती आदि कुछ नहीं होती, इस दृष्टि से इस तरफ यात्री निरापद होता है। कुली विश्वासी, नम्र और सीधे-सादे होते हैं। पैसे के लिए उनमें मोह होता है, किन्तु उसके लिए दुष्प्रवृत्ति नहीं होती। वे विवाद करेंगे पर धूर्तता नहीं करेंगे। वे ग़रीब होते हैं, पर ग़रीबी उनके हृदय को कलुषित नहीं करती। वे वित्तहीन हैं, पर चित्तहीन नहीं।

उत्तराखण्ड की गंगा के किनारे-किनारे हमारा मार्ग है। इस तरफ ब्रिटिश गढ़वाल, बाईं तरफ नदी और उस पार टिहरी-गढ़वाल है। कर देनेवाला राज्य है, और नाममात्र के लिए स्वाधीन है। गंगा, अलकानन्दा और मन्दाकिनी ही साधारणतः इस राज्य की निर्दिष्ट सीमाएँ हैं। गढ़वालियो के गाँव कहीं-कहीं पर दो मील तक ऊँचाई पर स्थित हैं। ग्रामीण लोग सभी खाते-पीते कहे जा सकते हैं। सभी किसान हैं। पहाड़ी ढालू जमीन में आरी के दाँतो की तरह खेत काट-काट करके वे एक आश्चर्यजनक-उपाय से कृषि उत्पन्न करते हैं। गेहूँ, आलू, अरहर, गोभी, सरसो आदि पैदा हो जाती है। उम्र में जो युवा हैं अथवा बोझ वहन करने में समर्थ वृद्ध और प्रौढ़ चैत्र महीने के अन्त मे नीचे मार्गों पर उतर आते हैं—हरिद्वार जाकर यात्रियो को लेने और बोझा लेकर

पहाड़ो मे उठाने के लिए। हरिद्वार से मेहलचोरी तक इनकी गतिविधि सीमावद्ध है, इसके वाहर जाने का उन्हे हुक्म नही है। मेहलचोरी गढ़वाल ज़िले की अन्तिम सीमा पर है। पृथ्वी पर कही जो समतल भूमि है, शहर हैं. नाटकघर हैं, स्कूल हैं, उनकी ये लोग कल्पना भी नहीं कर सकते। रेल-मार्ग पर जो ट्रेनें दौड़ती है, पानी मे जो जहाज चलते है, मैदान मे जो फुटबाल खेली जाती है; वे इन लोगो के लिए स्वप्न की तरह हैं। जाड़े के दिनो मे ये लोग कैसे वचते हैं, यह तो मुझे पता नही; किन्तु ग्रीष्मकाल मे कम्वल सिरहाने रखकर ये लोग रात विता देते हैं। कुली प्राय. जाति के ब्राह्मण या क्षत्रिय होते हैं। यात्रियो के साथ ही वे सोते, रहते, वातचीत करते भूरा तम्वाकू पीते किन्तु उनका छुआ नही खाते है। खान-पान के सम्वन्ध में उनमे विस्मयकर पवित्रता है। मांसाहार करना वे पाप मानते हैं। जीव-हिंसा वे कभी नही करते। उनकी स्त्रियाँ भी केवल घर-गृहस्थी के ही कार्य करके नही बैठी रहती, वल्कि वे भी खेती करतीं, पशुओ को पालतीं, कम्वल बुनतीं, लँहगा वगैरह कतरती-व्योतती, तैल-घी तैयार करती, पहाड़ के जगलो से लकड़ी काटकर लातीं, छोटे-छोटे वच्चों को पीठ पर वाँधकर घुमाने के लिए ले जाती हैं। रास्ता चलते यदि कोई ग्राम मिलता है, तो ऐसी हालत मे युवा स्त्रियाँ और वालक-वालिकाएँ यात्रियो के पास आकर हाथ पसारते हैं। और कहते है—ए सेठ जी! ए राना, सुई-धागा दो, पाई-पैसा दो! ए राना, दे राना।—सुई-धागा और पैसा छोडकर वे और कुछ नही माँगतीं। यदि पूरा एक पैसा मिल जाय तो उन्हे वहुत खुशी होती है, मानो कोई अप्रत्याशित ऐश्वर्य हाथ लग गया हो। सुई-धागे की भी उन्हे अद्‌भुत चाह है। ये वस्तुएँ गढ़वाल ज़िले में नही मिलतीं।

चौथे दिन सवेरे उतार के रास्ते हम व्यास घाट की तरफ़ चलने लगे। पहाड़ की चोटी से जल-धारा की तरह यात्री नीचे की तरफ उतरने लगे। जव किसी नदी को पार करना होता है या एक पहाड़ से दूसरे पहाड़ पर चढ़ना होता है, तव रास्ता उतराई का होता है। उतराई के मार्ग मे उतरते समय खतरा रहता है। गिर पड़ने और पैर फिसलने का डर रहता है। वहुत साधकर और सतर्कता के साथ घण्टे के वाद घण्टे उतरते-उतरते तवियत ऊव उठती है। उतरने से घुटनो पर ज़ोर पड़ता है, दर्द होने लगता है। आखिर पैर खराव हो जाते हैं। चढ़ाई के मार्ग पर उठते-उठते, कमर, पीठ और गर्दन के पिछले भाग मे दर्द होने लगता है। छाती मे व्यथा होती है, दाँतो को भींचे-भींचे

मुँह में तकलीफ़ होने लगती है—दूर पर चढ़ाई का मार्ग है, यह खबर पाकर हम डरकर एक-दूसरे के मुख की तरफ देखने लगते हैं। आनेवाली विपत्ति मानो रास्ते मे हमारी प्रतीक्षा कर रही है।

उस दिन आकाश सवेरे बादलो से घिरा हुआ था। नयार नदी और गंगा के सगम में हू-हू स्वर से हवा चल रही थी। एक नूतन राज्य पार कर गये। आज सुवह तक वत्तीस मील मार्ग तय कर लिया। एक-सी भूमि पर इतना मार्ग तय करने मे हमें मामूली परिश्रम ही करना पड़ता; किन्तु ये तो पहाड़ थे—दुर्गम, दुरारोह और पत्थरो से भरे हुए। इस मार्ग का अन्त नहीं, विच्छेद नही—एक-सा यन्त्रणादायक मार्ग है। नयार नदी का पुल पार करने पर व्यास गगा के किनारे एक चट्टी पर हम लोग आ पहुँचे। पिछले दिन की शाम तक कितनी ही चट्टियाँ पार कर चुके थे। नाई मुहाना, विजनी, वान्दर, शेमालू, कान्दि इत्यादि। वान्दर चट्टी में उस दिन रात को एक घटना हुई। निद्रित अवस्था मे हम दोनो बन्धुओ का एक भयानक पहाड़ी साँप ने सस्नेह आलिंगन किया, किन्तु कैसा सौभाग्य कि उसने चुम्बन नही लिया। लाठी की चोट से साँप तो मर गया, पर इसी सूत्र मे एक पण्डितजी के साथ सम्बन्ध हो गया। पंडित का घर मध्य-भारत के बुरहानपुर जिले में है। अकेली जान और पक्के तीर्थ-यात्री हैं। करीब एक वर्ष स वह परिव्राजक होकर सब तीर्थों मे घूम रहे हैं। संन्यासी योगी का वेश, इसीलिए रेलवे-कम्पनी वाले उनके पास से कभी भाड़ा अदा नही कर पाये। न वसूल कर सकने का कारण भी था; उनके चतुर और मधुर अलाप से वन के पशु-पक्षी भी मुग्ध हो जाते थे। उनकी अवस्था पैंतालीस से पैंसठ वर्ष के भीतर होगी। दुबले-पतले पर क़द मे बड़े, कई दाँत नही, चातुर्य और भगवद्भक्ति की सम्मिश्रित दीप्ति से दोनों आँखे उज्ज्वल, गले में चार-पाँच रुद्राक्ष की माला पड़ी थीं, जप के लिए बैठते तो गोमुखी में हाथ घुमाते, मस्तक पर चन्दन का तिलक लगाते, और मुँह स 'सीताराम' शब्द का उच्चारण करते थे। इस बीच हमारे दल में एक और वृद्धि हो गई, कालीघाट के वे यात्री आकर मिल गये। लम्बे वाल, गाँजा पीनेवाले दादा आकर पहुँच गये हैं, उनके पीछे है एक वृद्धा। वुढ़िया का उत्साह, धैर्य और सहनशीलता देखकर विस्मय होता है।

चारू की मा की कमर झुक गई है कुबड़ी होकर चल रही है, जीर्ण-शीर्ण शरीर, वह कालीघाट मे दूध वेचकर गुजर करती है; वह कई

गाय-भैसों की मालकिन है। अपनी लड़की के सिवा उसका संसार मे और कोई नहीं। लड़की का नाम चारू है।

'सुनती हो मा, भादू को जिस दिन बच्चा हुआ कितनी वर्षा हुई, वैसा अन्धकार, समझो मुश्किल ही है। किन्तु कानी, गूँगी, पगली, उनका समय . '

'क्या बकती है री चारू की मा! बड़-बड़कर रही है?'—ब्राह्मण बुढ़िया चिल्ला उठती—इसीलिए तुझको अपने साथ नहीं लाना चाहती थी। ढोरो को खिलाना-पिलाना सुनाते-सुनाते परेशान हो गये, यदि उनकी ही फिक्र थी तो फिर आये किसलिए? मै मरती हूँ ठंड से, और तू .दे अपना कम्बल, ओढ़ लूँ।

'ओ हो, बात सुनो न ब्राह्मणी मा? उसके बाद समझे, बाबा ठाकुर?'

'रुक-रुक, ओ मर, बहुत जरूरत है इसलिए कम्बल माँग रही हूँ, मुझे मत छू, उस जगह बैठ। इन लोगो के बार-बार छूने से मेरा जाति-धर्म अब कुछ भी नही बचा। स्वदेश जाकर प्रायश्चित्त नहीं करूँ तो .'

अस्पृश्या चारू की मा अप्रस्तुत होकर चली जाती है।

दादा के साथ अमरसिंह है। युवक पंडे लोगो का आदमी है, पथ-निर्देशक बनकर यात्रियो को बद्रीनाथ तक पहुँचाने का ज़िम्मा लेकर, साथ आया है। शुद्ध आचरण का ब्राह्मण है। कुछ लिखना-पढ़ना भी जानता है। देवप्रयाग से कुछ दूर पहाड़ के एक किसी गाँव मे उसका मकान है। वर्ष के अन्त मे पैसा पैदा करने के लिए हरिद्वार मे आ जाता है। यात्रियो के सुख-सुविधाओ की तरफ उसकी तीव्र दृष्टि रहती है मामूली बीस-तीस रुपए के लिए प्राय' साढ़े तीन सौ मील उसे चलना पड़ता है। भला आदमी है और वेश-भूषा से भी भद्र मालूम होता है।

व्यासघाट मे प्रकृति का अपूर्व प्रकाश है। उदार पर्वत-श्रेणी, मेघो से काले आकाश की छाया नदी पर पड़ रही है; नदी के प्रस्तर-आवर्त मे जगह-जगह अनेको सर्पों की तरह कुण्डलियाँ बनाए, प्रवाह बह रहा है, दूर तक बालू फैली है। कहीं-कहीं एक-दो संन्यासी जप करने के लिए बैठे हुए हैं। घनश्याम वन-रेखा उसके अन्दर से झरने की आवाज़, एक अनिर्वचनीय वातावरण है, किन्तु विश्राम का समय हमारे लिए नही है। एक आँख से तो इस स्वप्न-राज्य की शोभा ऐसी दिखाई दे रही थी, दूसरी आँख से पथ की ज्वाला अपरिमित दु ख और असह्य कष्ट दिखाई दे रहे थे। इस समय भी मन में सोच रहा था, किस तरह वापस फिर

जाऊँ। दो-चार लोगो को वापस जाते देखा था ; मेरा जाना ही ऐसा क्या अपराध है। अब भी समय है , अब भी तीन दिन के बाद जन्म-भूमि का स्पर्श कर सकता हूँ। मार्ग अब भी बहुत लम्बा तय नहीं हुआ है ; इसके बाद पश्चात्ताप का अन्त नही होगा। वापस चले जाने पर लोक-लज्जा का डर है, किन्तु इस सामान्य लोक-लज्जा के लिए क्या इस प्रकार जीवन की बलि दे दूँ ? नही, मृत्यु से मुझे बड़ा भय लगता है।

'बाबा, तुम इतनी कम उम्र मे तीर्थ करने के लिए क्यो आये ?'

'तीर्थ करने तो मैं आया नही।' मैंने कहा।

'तो फिर ? इस दुर्गम मार्ग मे क्यों आये ? ओहो यह लड़का ?'

'यो ही घूमने चला आया बूढ़ी माँ !'

'घूमने आये हो ! ओ हो क्या हो गया, घूमने के लिए और कोई जगह नही मिली ? मालूम होता है विवाह नही हुआ है ?'

मैंने हँसकर कहा—विवाह होने पर क्या कोई यहाँ नही आता ?

एक आदमी बोला—आहा, यह तो बाबा बद्रीनाथ की दया है। जिसको अपनी ओर खींचते हैं वही ..

मै बोला—जो बाबा की दया नहीं चाहता, वह यहाँ क्यो आता है बूढ़ी माँ ?

बुढ़िया आश्चर्य से आँखें कपाल पर चढ़ाकर बोली– जो ईश्वर की दया नही चाहता, ऐसा मनुष्य . वह तो नास्तिक होगा भाई !

कुछ मील चलने पर कानाफूँसी सुनाई पड़ी, मेरे बराबर नास्तिक और कोई इस दुनिया में नहीं है। निन्दा होने लगी, व्यंग्य-विद्रूप होने लगा, मेरे प्रति बुढ़िया की श्रद्धा और स्नेह विलुप्त हो गया, रास्ते में मेरे जैसे अहंकारी नास्तिक का देखना महापाप माना जाने लगा। सिर झुकाकर उनकी बातें सुन लेने के सिवा और कोई चारा नहीं था।

'और कुछ नहीं, समझलो ये सब बच्चो की बातें हैं। पागल भी तो क्या इस तरह ऊटपटाँग नही बकता—' दादा बोले।

'क्या कहा, मैंने तो कुछ सुन नहीं पाया !'

'न सुनना ही अच्छा हुआ। कहते है, ऐसे समय कान मे उँगली डाल लेना अच्छा—बच्चो की बातो पर ध्यान नही देना चाहिये—वे भारी पुण्य करने आये हैं !'

उस दिन काफी लम्बा मार्ग तय करके हम शाम को देवप्रयाग मे

आ पहुँचे। रास्ते के बगल में एक नंगा, निर्विकार और निर्लिप्त संन्यासी बैठा था। उसके पास ही एक भक्त शिष्य दोनो घुटनो के बीच सिर रख कर बैठा हुआ था। नवागत यात्री को देखकर अपना सिर नहीं उठाता था, मालूम होता था वह सो रहा है। पास ही धूनी जल रही है। एक पत्थर पर कुछ कच्ची भग घोटी जा रही है। भक्ति में भरकर, उसके पैरों के पास कुछ मिनट के लिए आँखे मूँदे बैठ गया, और फिर थोड़ी देर बाद उठकर चला गया। वह वास्तविक संन्यासी की तरह ही मालूम होता था।

देवप्रयाग एक छोटा पहाड़ी शहर है। यहाँ पर अलकानन्दा आकर गगा में मिलती है। मानो नीली साड़ियाँ पहने दो जुड़वाँ बहनें बहुत दिनो के बाद आपस मे गले मिलती हो। यहाँ पर रामचन्द्रजी का मन्दिर है। सुना गया कि देवप्रयाग मे अपने वंशजों का आगमन देखकर उनके पुरखे पितृलोक मे आनन्द से नृत्य करने लगते हैं। उनकी यह इच्छा रहती है कि वंशजो के हाथ से पिण्ड ग्रहण किया जाय; मालूम होता है कि पितृ-लोक मे नित्य दुर्भिक्ष रहता है। शहर की मामूली कुछ-कुछ आवश्यक वस्तुएँ यहाँ हैं। यहाँ कुछ धर्मशालाएँ, कम्बलीवाले बाबा का आश्रम, और दातव्य औषधालय, एक छोटा-सा बाजार, एक स्कूल और डाकखाना है।

आज का सफर समाप्त हो गया। क्लान्त मन और भग्न शरीर लेकर अमरसिंह के निर्देश के अनुसार हम सब एक धर्मशाला में आ गये। बच गये, शहर देखकर बच गये, मनुष्यो का समागम और उनके मकान देखकर बचे। इस हिमालय के राज्य मे भी और महाप्रस्थान के पथ पर भी, जिसका आदि है, किन्तु अन्त नहीं, मनुष्य-जाति ने कहीं अपने लिए निवास-स्थान बनाये हैं, समाज-संगठन किया है, यहाँ पर भी जीवन-संग्राम है, सुख-दुःख, आशा-आनन्द है—इसको हम पहले नही समझ सके थे। हम सभी उदासीन, समाजच्युत तीर्थ-यात्रियो का दल वायु-ताड़ित शुष्क और म्लान छिन्न-पत्र—नितान्त वैराग्य से शहर की तरफ देखता रहा। हमारे अन्तर के साथ आज उसका कही भी मेल नही था।

मामूली भोजन करने के बाद सोने को बिछौने पर गये। पास मे ब्रह्मचारी, सिर के पास वृद्ध दादा हैं और दूसरी तरफ़ बुढ़ियाओं के बीच से बिल्ली की तरह कोलाहल बढ़ा आ रहा है। किसी के शरीर से किसी के पैर छू गये तो किसी का पैसे-कौड़ी का हिसाब नहीं मिल रहा

है, कोई अपने घर चिट्ठी लिखने बैठा है, किसी के जामाता ने आने को मना किया था, किसी के पाँव मे मक्खी के काटने तथा खुजलाने से घाव हो गया है उसी की यन्त्रणा और कातरोक्ति—इसी तरह की नाना जटिल समस्याएँ। ब्राह्मणी मा के गले की आवाज़ बीच-बीच में इन जटिलताओं को तीर के नोक की तरह वेधती हुई उठ रही है।

बड़े प्रयत्न और आग्रह से अपना छोटा हुक्का भरकर दादा अँधेरे मे दियासलाई आगे बढ़ाकर बोले—जलाओ दादा! बिना तुम्हारे आनन्द नहीं। मालूम होता है कि साँपी सूख गई है।

गन्दे पानी में एक चिथड़े को भिगोकर उन्होने उसे हुक्के की तली मे जड़ लिया।

ब्रह्मचारी अनुगत भक्ति की तरह प्रसाद ग्रहण करने धीरे-धीरे उठ बैठा। सोने से पहले बिना दो कश लिये उसे नींद ही नहीं आती थी।

हुक्का पीते-पीते दादा बोले—गोपाल घोष आदमी को पहचानता है, इसीलिए ऐसे-वैसे आदमियो के साथ वह सम्बन्ध नहीं रखता। दादा! तुम्हें मार्ग में अच्छा पाया, तुम्हारी तरह मनुष्य . कहकर उसने हुक्का छोड़ दिया, फिर वह सिर सिकोड़कर सो रहा।

ब्रह्मचारी उसकी बात लेकर बोल उठा—इतना बड़ा धार्मिक है, समझे गोपाल दादा, समस्त-पथ मुझे खिलाते-खिलाते . दादा, आपका ऋण मैं इस जीवन में

अर्थात, गुरु और शिष्य दोनो ही उस समय गहरे नशे में मस्त थे।

मै बोला—ब्रह्मचारी, निन्दा और प्रशसा अब मेरे सामने एक ही वस्तु हैं, किन्तु आपके पक्ष में ये सब अर्थहीन हैं।

'क्या दादा?'

'यही आपका कृतज्ञता प्रकाश करना। संन्यासी का सबसे बड़ा लक्षण निर्विकार होना है।'

रात में देर तक जागकर ब्रह्मचारी के साथ बात-चीत होने लगी। उसके मन की कितनी बातें, कितनी कल्पनाएँ! वह बोला—भगवान मे पूर्ण विश्वास न होने से मठ जिस दिन खोलूँगा उस दिन आप उसका भार लेंगे दादा। मठ मै स्थापित करूँगा ही। अब कुछ दिन मेरी भिक्षावृत्ति चलेगी, ज़रूरत के लिए ही रुपये .किसी भी तरह हो, छल-बल और कौशल से ..

मैं बोला—भिक्षा से पेट भर सकता है। धन एकत्र करना सम्भव नहीं है।

ब्रह्मचारी कुछ देर तक न जाने क्या सोचने लगा। इसके बाद बोला—नशा के मुख से तव खुलकर ही आपको बोलता हूँ, कितने ही दिनों से आपके पास सलाह लेने के लिए ..आपको कह ही देता हूँ, गोपालदा क्या सो गये हैं ?

गोपालदा से कोई प्रत्युत्तर न पाकर निश्चिन्त होकर धीरे-धीरे वह बोला—कुछ रुपए इकट्ठे किये है दादा, हजार तो होंगे ही। इस समय दो हजार रुपए तो आखिर लग ही जायेंगे ; सोचता हूँ जाने क्या क्या ? बंगाल देश को ही जाऊँगा, एक गाँव की आब-हवा इस तरह अच्छी है। करीब तीन दिन पहले रात के समय छिपकर ग्राम के आस-पास एक मैदान मे, एक पेड़ के नीचे...

सिर उठाकर उसकी तरफ देखा।

'आपसे लज्जा नही करूँगा, बोल ही देता हूँ,' ब्रह्मचारी लज्जित होकर आँखें झुकाकर बोला—उसी वृक्ष के नीचे मिट्टी खोदकर एक शिवलिङ्ग की स्थापना करूँगा। तीन दिन के बाद उसी गाँव मे सन्यासी का वेश रखकर जाऊँगा। कहूँगा, कैलाश से आदेश लेकर आया हूँ। वृक्ष के नीचे भगवान का आविर्भाव होगा, स्वयभू महादेव का। मैं उनके मन्दिर की प्रतिष्ठा करने के लिए आया हूँ।

उत्साहित होकर मैं बोला—तो फिर मेरे लिए थोड़ा स्थान दे देना ब्रह्मचारी ! मै तुम्हारे विज्ञान का प्रचार करूँगा। देखो वह पेड़ भी प्राचीन होना चाहिये। हम लोग प्राचीनता के बड़े भक्त हैं।

ब्रह्मचारी प्रसन्न होकर कहने लगा—देव-देवता का व्यवसाय इस देश मे सबकी अपेक्षा जमा हुआ कारबार होता है।

मै बोला—तुम एक और काम करो ब्रह्मचारी ; उसके साथ ही योंही जन्तर-मन्तर, झाड़-फूँक आदि की औषधियों का कारबार भी खोल दो ! जिस स्त्री के बच्चा न होता हो, जिसकी अपने पति स बनती न हो, हिस्टीरिया का दौरा होता हो, उन्हीं के लिए।

उत्साह और आनन्द से हँसकर ब्रह्मचारी बोला और एक चिलम सुलफा तैयार करूँ दादा ?

इस तरफ़ चरस का प्रादेशिक नाम सुलफा है। ब्रह्मचारी को यह बहुत पसन्द था।

सुबह के समय नींद खुली। शरीर थकावट से चूर-चूर हो गया है। सिर उठाने की भी इच्छा नही होती। गर्दन के पीछे दर्द, कन्धे, पीठ और कमर मे दर्द, क्षत-विक्षत दोनो पैरों का करुण चेहरा देखकर

आँखों में आँसू आ गये ; कितना कष्ट उन्हे दे रहा हूँ ; प्रभु-भक्त दोनो पैरो की पीड़ा सह लेते हैं, इसलिए वे कोई शिकायत नही करते।

उठकर बैठ गया। शरीर इतना पीड़ित था, मानो उस पर लाठियो की मार पड़ी हो। सबसे अधिक खुशी की बात तो यह थी कि आज चलना नही होगा। यहाँ पर यदि नियमित रूप से अन्न-वस्त्र की कोई कमी न रहे तो फिर इसे छोड़कर स्वर्ग जाने की भी इच्छा न हो। जिस मनुष्य को हम पृथ्वी पर सबसे अधिक सुखी समझते हैं, जब उसकी मृत्यु हो जाती है तब हम सभी उसकी आत्मा की शान्ति-कामना करते हैं। असल में मनुष्य संसार मे जन्म ग्रहण करके दु.ख पाता है; यहाँ पर उसके लिए शान्ति नही है, यह बात मनुष्य अपने हृदय मे ही अनुभव करता है। ऐसा करने से ही देवताओ की सृष्टि, स्वर्ग की सृष्टि, परलोक में सान्त्वना की सृष्टि हुई है। दिशा, साहित्य, कृष्टि * (संस्कृति) सभ्यता सब छोड़ते हुए भी मनुष्य की दृष्टि ऊर्ध्व शिखा में गभीरता के अन्दर एक परम सान्त्वना की वाणी खोजती है। आशा का आश्रय—जीवन के चरम परिणाम के बीच में वह एक सुदूर वेदना को निरन्तर अनुभव करता है।

सूर्य का निर्मल प्रकाश चारों तरफ फैल गया है, स्निग्ध वायु बह रही है। आकाश कोमल नील है, कहीं-कहीं सफेद बादलो के टुकड़े परों की तरह घूम रहे हैं। बीच-बीच में वे पर्वत-श्रेणियो के शिखरो को स्पर्श करते हैं। उन्हीं शिखरों के देह घने हरित वनो के दुपट्टो से मडित हैं और हवा से ये दुपट्टे आकुल हो उठते हैं।

गगा और अलकानन्दा के संगम स्थान पर यात्री लोग श्राद्ध और तर्पण करने के लिए बैठ गये। गोपालदा और ब्रह्मचारी और प्रमुख बूढ़े-बुढ़ियो ने अपने-अपने सिर मुँड़वाये। पण्डे लोग मन्त्र पढ़ने लगे, ख़याल है कि पितृ-गण आकर अपने वंशज-भक्तों के हाथ से आटे के गोले खाकर तृप्त हो अदृश्य हो गये। सभी प्रयागो मे श्राद्ध और पिण्ड-दान करना होता है ऐसा शास्त्रों का आदेश है। शास्त्रों का यह देश है।

---

* मेरे व्यवहृत इस 'कृष्टि' शब्द को लेकर कुछ समय पहले साहित्य-समाज में एक वादाविवाद उपस्थित हुआ था। रवीन्द्रनाथ ने सबसे पहले (नवम्बर, १९२३) में मुझे लिखा कि 'कृष्टि' शब्द भाषा में कुश्री पैदा करता है। दूसरी जगह यह 'संस्कृति' शब्द प्रचलित है—यह भद्र समाज के योग्य है।' अधिक क्या बहुत से सामयिक पत्रों में कई आलोचना-प्रत्यालोचनाओं के बाद अन्त में रवीन्द्रनाथ के 'संस्कृति' शब्द ने ही अधिक मतों के मिलने से विजय पाई।

दिन अच्छा लग रहा है। इतना कष्ट, इतना परिश्रम, फिर भी इस सुन्दर प्रभात को देख-देखकर उपभोग करते है। पास में नदी के उस पार वन—मल्लिका के वृक्ष हवा से हिल रहे हैं, नदी काफी निचाई पर है। शरीर मे हवा लगने से अलकानन्दा के पुल के ऊपर इधर-उधर टहलने लगा। मन ही मन कहने लगा :

'शुधू अकारण पुलके, क्षणिकेर गान गारे
आजि प्राण क्षणिक दिनेर आलोके।' ❀

कविता के अन्दर जो व्यञ्जना है, जैसे उसी का स्वरूप चारो दिशाओं मे दिखलाई दे रहा था प्रभात की यह छवि मानो किसी शिल्पी के समस्त जीवन की साधना मे अ.कित हो। सारा मन इन चित्रो से अत्यधिक तृप्त हो, तल्लीन हो गया। बहुत देर हो गई थी जब रसोई की तैयारी कर अलकानन्दा मे स्नान करने आया। ब्रह्मचारी इस समय रामचन्द्रजी का प्रसाद पाने के लिए मन्दिर मे चला गया था, मेरे साथ वह भोजन करनेवाला नहीं था। रसोई बनाने की तैयारी मे बैठा ही था कि ऐसे ही समय गोपालदा आकर बोले—मेरे पास रुपया भेजा हुआ नही है। चार आने पैसे तो दे दो दादा! दूकान का हिसाब बेबाक कर दूँ। अभी दे दो।

लकड़ियो को जलाने मे फूँकते-फूँकते आँखें लाल हो गई थीं और आँसू आ गये थे। मैं बोला—देता हूँ, ज़रा रुको!

रूमाल मे बँधे हुए रुपए-पैसे ट्रंक मे ही होगे। दिन-रात साथ मे ही रखता था। पैसे निकालने गया तो देखा कि ट्रक खाली है। रूमाल का नाम-निशान भी नहीं था। इसका मतलब? इसका मतलब क्या? एक बार चारो तरफ देख गया और एक मिनट मे ही चेहरे का रग उड़ गया। उठकर झोले आदि देख डाले, कम्बल झाड़ा, कुर्तों की जेबें टटोल डालीं। गले के अन्दर मानो कोई कुछ ठूँस रहा हो, हृदय मे ओखली मे मूसल की चोट पड़ने की तरह एक प्रकार की आवाज़ शुरू हुई। चिल्लाने की चेष्टा करने लगा, किन्तु आवाज़ ही नही निकली। भाग उठने की इच्छा हुई, पर कहाँ जाऊँ? यह क्या सर्वनाश हुआ भगवान?

कुत्ते के सिर पर हठात लाठी मारने से वह जैसे गिरता-पड़ता पागल की तरह किसी छोटी जगह मे चक्कर लगाने लगता है, ठीक वैसे ही मैं भी कई मिनट तक हक्का-बक्का होकर धर्मशाला मे घूमने लगा। सब

* 'क्षणिक दिन के आलोक में, केवल अकारण पुलक में, हे प्राण! आज क्षणिक गीत गा!'

कुछ मौजूद है—कम्बल है, झोला है, लाठी है, पर केवल वही सबसे अधिक जरूरी वस्तु सर्वश्रेष्ठ धन नहीं है। मेरा सुख-दुख, आनन्द-वेदना पथ-श्रम और तीर्थ-यात्रा, स्वप्न और सौन्दर्य-बोध, सहानुभूति और अनुप्रेरणा, इन सबके मूल मे जो रहता है, वही मैले रूमाल मे बँधे रुपए-पैसे, इसी बात पर पहले मेरा ध्यान गया। मेरे प्राणो का रस एक क्षण मे ही मानो सूख गया, शरीर में जैसे एक बूँद रक्त भी नहीं है, सारे अंग बर्फ की तरह ठडे और चेतनाहीन हो गये—मानो मेरी अकाल मृत्यु हो गई हो। अपने भयानक परिणाम की बात का ध्यान होते ही साँस रुकने लगी। इस पथ मे किसी की सहानुभूति नहीं, मोह-ममता नही—जो कुछ भी है वह बिलकुल मौखिक है—स्नेहहीन पुण्यलोभी यात्रियो का दल उदासीन होकर मुझे छोड़कर चला जायगा—आज से चिर दिनो के लिए इस दुर्गम निर्वासन मे। सारे पहाड़ राक्षसो की तरह भयानक रूप मे सामने आकर विकट भाव से नृत्य करने लगे।

'क्यो दादा, दो भाई, जरा जल्दी करो !'

मैं बोला—मेरे पास भी टूटे पैसे नही हैं, रुपया भँजाना पडेगा।

'तो फिर बाज़ार जाकर ही भँजाना पडेगा। इस देश मे रुपया भँजाना भी बड़ा कठिन है।' यह कहकर गोपालदा चले गये।

दूसरी तरफ बुढ़ियाएँ खाने को बैठी हैं। मेरे चूल्हे मे आग बुझ गई है और धुआँ उठ रहा है, हजारो मक्खियों से चारो दिशाएँ छा गईं, शायद खाने की वस्तुएँ तो अब ली नही जाएँगी। उनकी तरफ़ देखता हुआ पत्थर की तरह खड़ा रहा। नदी सूख गई, प्रवाह बन्द हो गया, चारों दिशाएँ धू-धू कर रही थी, छाया नहीं, और आँखो में प्रकाश नहीं, आनन्द नही, आकाश विषाक्त हो गया। देखते-देखते समस्त प्रकृति का रूप मलीन हो उठा। मैं सन्यासी नही, भगवान पर भी मेरा पूरा विश्वास नहीं है, भगवान बद्रीनाथ की दया की आशा करके मैंने यात्रा आरम्भ नही की थी, देवताओ पर मुझे विश्वास नही। मुझे भूख है, प्यास है, अपना जीवन सबसे अधिक प्रिय है। दरिद्रता में, दुःख मे, निराशा में मैं वेदना पाता हूँ, सब लुट जानेपर विपद्-ग्रस्त होता हूँ, गृह-वैगुण्य मे विधाता का अभिशाप माथे पर आने से इस समय आँखो मे आँसू भर आते हैं। मेरे अन्दर वैषयिक हृदय है, स्वार्थ और सुविधा के लिए लोलुपता है। मैं देश वापस चला जाना चाहता हूँ, समाज मे, मनुष्य मे, स्नेह-ममता, दया-दाक्षिण्य, लोभ-मोह, कलह-कलङ्क, ग्लानि और मालिन्य—इन सबके बीच मे मैं गृहस्थ का जीवन बिताना पसन्द

करता हूँ! भय और निराशा से मेरा सारा शरीर थर-थर काँपने लगा। सहायता की प्रार्थना करने पर सभी व्यग्य करेंगे, सभी की मौखिक सहानुभूति ऊपर न प्रगट होगी, सभी अवज्ञा करेंगे, मेरे दुर्भाग्य की तरफ इशारा कर मुँह फेरकर चले जायेंगे। इसके अलावा यात्री अपने साथ जीवन धारण करने के लिए उपयोगी खर्च, तथा तीर्थ-पूजा का खर्च लाये है, पुण्य-कामियों के दल तथा विपदग्रस्तो की सहायता करने के लिए तो कोई सम्बल उसके पास नहीं। शहर मे जितने मनुष्य—पुजारी, पण्डे, दूकानदार—हैं, वे तो वर्ष के इस समय मे यहाँ खुद ही यात्रियो का शोषण करने लिए आते हैं, सग्रह और संचय करने की उनमे अनन्त क्षुधा है, दान करनेवाला मनुष्य उनमें शायद ही कोई हो।

अचानक मन मे खयाल आया, ब्रह्मचारी ने तो कहीं मेरे रुपए-पैसे नहीं ले लिये? देखते-देखने उत्तेजना से मेरी दोनो आँखें लाल हो उठी। अब ठीक तौर से पकड़ा। पिछली बार मेरे रूमाल के सम्बन्ध मे वह कुछ इशारा-सा करते-करते रुक गया था। उसके सिवा और कोई नही हो सकता! उसका यही पेशा है; यही उसका कायदा है, कल रात ही उसके अन्दर का भयावह रूप देखा था, साधु के वेश में बहुत दिनो से वह मनुष्यो को ठग रहा है। साँप की तरह उसका चरित्र है, शृगाल की तरह उसकी आँखें हैं, बाज की तरह वह मौके की ताक मे रहता है। उसे जो आश्रय देता है, उसी के मकान मे वह आग लगाता है; विश्वासघातक, कापुरुष - उसका गला दबाऊँ—

'दादा, खडे-खड़े क्या बड़बड़ा रहे हो?' कहते-कहते ब्रह्मचारी पास आकर खड़ा हो गया और कन्धे पर हाथ रखकर तथा डकार लेकर कहने लगा—बहुत दिनो बाद आज एक पान खा पाया हूँ। रोटी और आलू खाते-खाते मुँह खराब हो गया।

मैं उसके मुँह की तरफ देखने लगा। वह फिर बोलने लगा यह आपके लिए भी पान लाया हूँ—यह क्या. अभी तक आपने भोजन नही किया? स्नान भी नहीं किया?

'स्नान? ओ—जाता हूँ।'

'हाँ, अलकानन्दा में स्नान करना बड़ा अच्छा लगता है, चमकता हुआ स्वच्छ जल .बड़ा आराम है।'

फौरन ही मैं नदी की तरफ दौड़ पड़ा। गिर पड़ता तो मर ही जाता। कुछ दूरी पर बाईं तरफ रास्ता मुड़ जाता है। इसके बाद पत्थर की सीढ़ियाँ हैं, नदी बहुत नीचे है—पागल की तरह सीढ़ियाँ उतर

गया। सामने बालू से भरी उथली भूमि थी, इसलिए जल्दी-जल्दी नहीं चला गया। चारों तरफ असंख्य छोटे-बड़े पत्थर भी फैले पड़े हुए थे। कई जगह पैरों में ठोकर लगने से खून निकल आया। इस तरह जल की धारा के पास आया।

एक विशेष पत्थर पर निशान बना दिया था। जल्दी से उसके पास जाकर उसके तले मे बालू मे हाथ घुसाया। ओ, यही तो मेरा पारस है; मेरे सात राजाओं का धन-माणिक, मेरा स्वर्ग, मेरे बद्रीनाथ। अहा, बच गया, बच गया। स्नान करने के समय रूमाल समेत इसमे छिपाकर रख दिया था, इसका ख्याल ही नहीं रहा। धन्यवाद है तुम्हे ब्रह्मचारी! हे प्रवाह-पूर्ण अलकानन्दा तुम्हे भी धन्यवाद है। खुशी मे और कोई ध्यान नहीं रहा। आह्लाद मे संयम नही रहा; स्नेह और प्रेम के आवेग मे, उत्तेजना मे अश्रु-पूर्ण आँखों से रूमाल मुँह मे मीच कर उसे सम्मानित किया।

बद्रीविशाल की जय! जय बाबा केदारनाथ!

जिससे हमे परम प्रयोजन था, ठीक समय पर नितान्त अवहेलना के साथ उसे छोड़कर जा रहे थे। उस दिन तीसरे पहर देवप्रयाग का देना-लेना चुकाकर यात्रियो का दल फिर अपने परिचित टेढ़े-मेढ़े, ऊँचे-नीचे मार्ग पर यात्रा के लिए चल पड़ा। इस मार्ग को देखकर डर लगता था। यह मानो सबको दूरस्थ दुर्गमता की ओर धकेलकर ले जाने को ही अड़ा हुआ हो। साँप की तरह शीर्ण कठोर उसकी देह है, आगे और पीछे दुरूह पर्वतमाला को घेरे अजगर की तरह वह चिर-निद्रा में निद्रित है; ग्रीष्म, वर्षा और बर्फ मे वह चंचल नही होता। रास्ते मे उतरकर एक बार धर्मशाला की तरफ फिर कर देखा, मानो उसका दीवाला निकल चुका हो। जिसने आश्रय दिया, अपने स्नेह-क्रोड़ मे जिसने मेरा लालन-पालन किया, उच्छृङ्खलता सही, किन्तु आपत्ति नहीं की, आज उसकी तरफ मुँह फिराकर देखने का भी प्रयोजन नही, वह खाली हो गया। ऐसा ही होता है। अब शायद कितने ही दिन उसमे रोशनी नहीं होगी, भय का वास हो जायगा, या कोई वन्य-जन्तु आकर वहाँ आश्रय लेगा, रात के अँधेरे मे इधर-उधर से हवा आकर उसके कोने-कोने में विरह का निःश्वास फेंक जायगी और इस समय हमारी यह प्रिय धर्मशाला ऐसी ही निर्विकार, निर्लिप्त, अकृपण, दाक्षिण्यमय तथा अविचल संन्यासी की तरह खड़ी रहेगी।

समस्त अग्रगति के पीछे एक उत्साह होता है, प्राणो का वेग, एक

बड़ा नशा, किन्तु जिनमें यह नहीं, वे भी नही ठहर सकते। खिच-खिच-कर आते हैं, ठेल-ठेलकर जाना ही होता है, जहाँ बावन वहाँ तिरपन हूँ; भीतर से प्रति मुहूर्त्त ही एक प्रतिज्ञा उठ पड़ती है—क्यो न जाऊँ? चल, चल—पीछे रुक जा जीवन, मृत्यु रुक जा, मेरी सब इच्छाएँ मेरे सब संचय रुकें—चल! गौरीशकर सीताराम। जय बद्रीविशाल-लाल की जय!

'महाराजजी!'

मुँह फेर कर देखा। कौपीनधारी चिमटा हाथ में लिये एक साधु हँसता-हँसता बोला सीताराम मत बोलो, राधेश्याम का नाम लो। सीताराम कहोगे तो चिमटा बजाकर चलोगे और राधेश्याम कहोगे तो घर में बैठकर रहोगे—हाः, हाः, हाः चलो भाई चकाचक।

विरक्त और निस्वार्थी साधु भी परम स्फूर्ति एवं आनन्द में गद्‌गद् होकर हँसते, कूदते-फाँदते आगे-आगे चलने लगा। अपने पर वह विजय प्राप्त कर चुका था।

पहले तपोलोक मे भ्रमण किया था, अब देवलोक मे पदार्पण किया है। बाईं तरफ नीचे नई नदी, दक्षिण-वाहिनी अलकानन्दा, गगा की तरह ही उसके प्रवाह का स्वर, नील निर्मल प्रवाह; जल की अविश्रान्त आवाज़ में नीरवता और भी गभीर हो उठी है चढ़ाई के मार्ग में हम उत्तर को तरफ चल रहे हैं। क्रमागत उत्तर दिशा की ओर ही हमारी गति, महायोगी की जटा को स्पर्श करने के लिए निरन्तर उसका शरीर वह रहा था, जैसे चीटियो का दल। तीर्थ का यह दीर्घ पथ ही हमारी तपस्या, मार्ग समाप्त होने पर ही सब की छुट्टी। जीवन भी ऐसा ही है, अविच्छिन्न अनुगति ही हमारा जीवित रहना; हमारी साधना, परम परिणाम को स्पर्श करने के लिए ही हम आगे चलते हैं, कहाँ पहुँचेंगे, यह नहीं जानते। हेमन्त के अन्त मे प्रथम वसन्त-काल की तरह आब-हवा, वन्य औषधि-लता और अरण्य पुष्पों की एक तरह की विचित्र मिश्रित गन्ध से कहीं-कही पथ आच्छन्न है, वायु बीच-बीच मे उस गन्ध को दूर तक प्रसारित कर यात्रियो का अभिवादन प्रगट करती है; पर्वत शिखर की श्यामश्री के ऊपर से धीरे-धीरे मिटने वाली रक्तिम सूर्य आभा, नीचे नदी के निर्जन में सन्ध्या की छाया चुपचाप उतर रही है। इस समय हम थोड़ा ही चलेंगे; एक दिन विश्राम करने पर हम में आराम करने का लोभ बढ़ जाता है, पहली सुविधा पाकर ही हम आश्रय ले लेंगे। कोई तीन मील का रास्ता है,

बहुत धीरे-धीरे चल रहे हैं, जल्दी नही है। समय का अन्दाज है, विद्या-कुटी चट्टी तक पहुँचने में कोई देर नहीं लगेगी।

किन्तु ग्रह-वैगुण्य! आज सुबह से ही घुटनो में न जाने क्यों अधिक दर्द हो रहा था, इस समय वह और भी बढ़ गया। ऊँचाई-नीचाई पर चलने का जिसे अभ्यास नहीं, सुना था, यह व्यथा उसे सहज ही अपना लेती है। बद्रीनाथ की पैदल-यात्रा के पथ मे यह व्यथा ही सबसे बडी बाधा है, यह बात सभी जानते हैं। चढ़ाई के मार्ग पर चढते समय यह दर्द होता है, उतरने के रास्ते मे उतरते समय इसकी प्रति-क्रिया होती है। डर लग गया एव वह क्या भय था उसको आज लिखकर नहीं समझा सकूँगा। धीरे-धीरे पैर मचकाते हम चल रहे थे, और सभी आगे निकल गये थे, गोपालदा और ब्रह्मचारी आँखो से ओझल हो गये थे। वे क्यों न जाएँगे? जो रोगी और अशक्त हैं, स्वस्थ मनुष्य उनके साथ सहयोग कर अपने को पंगु किस लिए करे? मेरे साथ उनका कौन-सा बन्धन? कैसा ऋण? लँगड़ाते-लँगड़ाते चल रहा हूँ, सुना है, आत्म-विस्मृति से पीडा कुछ देर के लिए कम हो जाती है! नाना अवस्थाओ मे आत्महारा होने का अभ्यास है। किन्तु आत्म-विस्मृति हो कैसे? जिसे भूल जाना ही उचित है, वही सबसे अधिक मन में पहले आ उपस्थित होता है। अतः आईना होता तो देखता कि शरीर की क्या दुरवस्था हो गई है। धूल और धूप से सिर के बाल भी पुआल की तरह रूखे हो गये थे चमड़ा विवर्ण और रक्तहीन, आँखें भीतर धँस गई थी, दृष्टि क्षीण हो गई थी, हाथ और पैर मैल से गन्दे, लकड़ियो की आँच लगते-लगते हाथो के रोम सफाचट हो गये थे। पहनने के कपड़ो और सिर के बालो मे एक प्रकार के पीड़ा देनेवाले पिस्सू पड़ गये थे। उनके लगातार उत्पीड़न से रात में निद्रा नही आती थी, एक बार भगा देने पर फिर न जाने देह में कैसे घुस जाते थे? इनके साथ ही मक्खियो का उपद्रव रहता, लाखो-करोड़ो मक्खियाँ, सब मक्खीमय, मक्खियो का समुद्र था। ऐसा कोई यात्री नही होगा जिसके हाथ-पैरो मे इनके काटने के कारण घाव न हुए हो। जल के ऊपर भी ये मक्खियाँ मँडराती थीं, यह दृश्य मैंने पहले ही पहल देखा।

लाठी पर भार दे-देकर धीरे-धीरे विद्याकुटी आ पहुँचा। शाम हो चुकी है। पास ही एक कदली-वन है, शुक्ल-पंचमी की ज्योत्सना केले के वृक्ष के चौड़े पत्तो के ऊपर पड रही है, वे चाँदी के पत्तो की तरह झलमला रहे हैं, अन्धकार में अलक्ष्य अलकानन्दा का झर-झर स्वर

कानों मे सुनाई दे रहा है—चारों तरफ प्रकृति की एक रोमाञ्चकर वसन्त-शोभा है। कई क्षण विश्राम के बाद ब्रह्मचारी रोटी सेकने का आयोजन करने लगा। पहले पानी गर्म किया, उसमे नमक मिलाकर पैरों पर मालिश करने के लिए बैठ गया। जैसा देश वैसा वेश, नमक और गर्म पानी की तरह पैरो के दर्द की दवा और कहीं भी दुनिया मे नहीं! ब्रह्मचारी बोला आपका दर्द भी मै अच्छा कर दूँगा। इससे भी ठीक न होगा तो एक दूसरी और औषधि भी मै जानता हूँ।

रसोई बनाने, खाने और सोने मे वह रात बीती। सवेरे से फिर यात्रा। बूढ़ियो ने नास्तिक और धर्म-त्यागी कहकर मुझसे सम्पर्क नहीं रखा था। मेरे प्रति अब उनकी कोई सहानुभूति नही। झुकी कमरवाली चारु की माँ चुपचाप छिपकर कह गई, 'इसीलिए मैंने तुम्हे नहीं छोड़ा है, मैं तुम्हारे पीछे-पीछे ही हूँ। कालीघाट मे चक्रवर्ती के घर, मैं तीन पाव दूध देती हूँ; उसका रुपया-पैसा अवश्य चारु ही अपने पास रख लेती है हाँ, उनके घर में तुम्हारी तरह ही एक लड़का है. अहा, जिस दिन मेरा निवारण मर गया, वही एक भतीजा था—उसी वर्ष दूध दुहने बैठी थी कि हावली के लात मारने से मेरा घुटना टूट गया, उस दिन हावली के पैरो मे रस्सी बाँधी थी। ओ, जाती हूँ, वे फिर डाँटेंगे...पैर का दर्द कैसा है, बाबा ठाकुर?' इतना कहकर चारू की मा लाठी टेकती हुई झुक कर लम्बे-लम्बे कदम रखने लगी। बुढ़िया की अवस्था सत्तर के ऊपर पहुँच गई थी।

मैं धीरे-धीरे चल रहा हूँ, आज रास्ता काफी तै करना है, आज और क्षमा नहीं। मै साधारण चाल से चलने पर भी सबके आगे रहता था; अब से ऐसा नही होगा, इस बार पीछे ही रहना होगा। गोपालदा बुढ़ियों को लेकर चले, ब्रह्मचारी भी कुछ दूर तक साथ-साथ चला, इसके बाद वह भी आगे बढ़ गया। पीछे से जो पजाबी और बिहारी यात्री आ रहे थे, वे भी सस्नेह मेरे पैरो की तरफ एक बार देखकर मेरे पास से होकर चले गये; पीछे और भी कोई है, इसका मुझे पता नहीं! सबके मन मे एक ही बात, आगे चल, आगे चल भाई। आज का मार्ग बड़ा कठिन और दुर्गम है, कही-कही नदी के किनारे रास्ता धँस गया है, कहीं-कही पत्थरो का ढेर खतरनाक अवस्था मे पहाड़ के शरीर मे मामूली आधार पर अटक रहा है, एक बार फिसल पड़ने से एक साथ दस यात्रियो की मृत्यु होती। कई चीजो से भरा झोला और कम्बल का भार अब अखरने लगा है। कन्धे मे दर्द होने लगा! खुद अकेले

चलने से ही कष्ट होता है, फिर बोझ किस तरह लेकर चला जाता ? मामूली एक सेर वज़न लेकर भी इस दुर्गम मार्ग पर चलना कठिन है, बहुत अखरता है और काफी मेहनत पड़ती है। मेरे पास कोई सात सेर वज़न के कम्बल और झोले होगे। यात्रा का आनन्द नहीं, शरीर अचल, पैर पगु, भोजन रूखा-सूखा, शरीर में रात-दिन काट रहे हैं. जूतों के काटने से पैरो में बड़े-बड़े फफोले, निरुत्साह मन, पुण्य-सचय की अब स्पृहा नही—इस स्थिति मे फिर कैसे चला जाता ? ख़ैर प्राय: अस्सी मील पहाड़ इसी तरह पार हो गये !

एक अस्फुट आर्तनाद से मैंने पीछे की ओर देखा। रास्ते के बगल मे एक तरफ दो पुरुष-यात्री एक पत्थर के सहारे बैठे-बैठे हाँप रहे हैं। मैं समझ गया कि ये पीड़ित हैं, चल नही सकते। बस यहाँ तक ही। लाठी टेक-टेक कर मैं आगे बढ़ रहा था, एक मनुष्य हाथ उठाकर बोला। बोलने से क्या, विरक्त होकर मैंने कहा, 'कहो, क्या बोलते हो ?' वह न जाने क्या बड़-बड़ करने लगा। कुछ समझ में नही आया कि किस जाति का है। आखिर एक आदमी उठा और आकर मेरा लोटा छूकर इशारा करके पूछने लगा, 'पानी है कि नहीं ?' पानी थोड़ा ही था, रोगी के मुँह मे उस डालकर, फिर आगे चल दिया। मालूम होता था कि, पीछे से वह आशीर्वाद दे रहा था, किन्तु भाषा समझ नहीं पाया। उसके आशीर्वाद का मूल्य मेरे सामने एक कानी कौड़ी के बराबर भी नहीं, जब तक पैरो की पीड़ा नहीं मिट जाती, संसार को तब तक मैं सुदृष्टि से नहीं देख सकता।

हाँ, ससार का नियम ही यह है। अपने मन के अनुसार ही हम सब कुछ का विचार करते हैं। कोई विश्व को सुन्दर रूप मे देखता है, और कोई कुत्सित रूप मे। पाँवो मे पीड़ा होने के कारण ही उस दिन की तीर्थ-यात्रा, मार्ग मे प्रकृति का सौन्दर्य और हिमालय का विपुल सौन्दर्य-सम्भार, मेरी आँखो में विषाक्त बन गया था, मैं हृदय की स्वस्थता को खो चुका था, सहज उपलब्धि और सरल दृष्टि को भी। अपमान और विरक्ति से आकाश और पृथ्वी दोनो छा गये थे। शायद ऐसा ही हुआ। कला और साहित्य की समालोचना में देखा जाता है कि एक ही वस्तु के सम्बन्ध मे समालोचको के विभिन्न मत होते हैं। यह ठीक है कि विभिन्न मतो का अपना-अपना मूल्य है, किन्तु जहाँ साहित्य कला का स्थान ले लेता है, जहाँ गंभीर अनुभूति का निर्मल आनन्द प्रकाशित होता है, वहाँ पर मतो की विभिन्नता को मन नहीं

समझ सकता। विचारों के अन्याय मे सत्साहित्य को जो गन्दा करने की चेष्टा में व्यग्र रहते हैं, जान पड़ता है वे समालोचक मेरी ही तरह लँगड़ाते चलते है। लँगड़े पाँव की ग्लानि को वे साहित्य की तथाकथित समालोचना मे फैला देते हैं।

'क्या दादा, वहुत कष्ट है? तुम वहुत पीछे रह गये। यहाँ पर तुम्हारे ही लिए ठहर रहा हूँ। यह—एक और संगी मिल गये हैं।'

मुँह उठाया। देखा, एक लम्वा-चौड़ा काले शरीर का वगाली गृहस्थ एक शिला पर बैठा बीड़ी पी रहा है। नमस्कार आदि किया। फिर सामान्य वातचीत हुई। वातों-ही-वातो मे पता चला कि वह अकेले ही नहीं हैं उनके साथ अपनी स्त्री और सास भी हैं। वे लोग कुछ दूर आगे चले गये हैं, दस मील से अधिक चलना उनके लिए कठिन है। उनका नाम अघोर वावू था। वह वोले, 'वहुत कहा काँडी या डाँडी कर लो, इसमे खर्च ही कौन-सा वड़ा होगा, किन्तु उन्होने एक न सुनी, स्त्रियो का हठ भी वड़ा भयानक होता है, वीच रास्ते मे अवाध्य होना मुझे अच्छा नही लगता। पैदल चलेंगे तो पाँवो मे दर्द तो होगा ही।'

मै वोला—डाँडी मे क्यों नही चढ़े?

'इसीलिए कि पुण्य न होगा। इस तरह चलने से वावा वद्रीनाथ की दया अधिक होगी।'

ब्रह्मचारी वोला—आहा यह सत्य है, ओम् नमो नारायणाय! भगवान मे पूर्ण विश्वास रखकर जो नही चलते अच्छा चलिये, मैं थोड़ा आगे चलता हूँ। यह कह कर वह झोला-कम्वल लेकर चलने लगा।

अघोर वावू का मकान कलकत्ता में है। काज-कारवार है, पर अव व्यवसाय का वाज़ार मन्दा हो गया है। स्त्री को लेकर तीर्थ-भ्रमण को निकले है। उनके कोई भी वाल-वच्चा नहीं है। वोले, 'आप तो संन्यासी लोग हैं ससार की ज्वाला नही। अच्छा वताइये ब्रह्मचारी कैसा आदमी है? मैने सुना कि आप तो उसे खिलाते-पिलाते हुए आ रहे है। वह कैसा आदमी है? नकली तो नही?'

मै वोला नकली होने से क्या हुआ, मुझे वताओ? सभी के साधु हो जाने से विपत्ति ही होगी!

'यही तो कहता हूँ, आप से यही तो पूछता हूँ। कितनो ही ने अपने दुःख मुझे सुनाये हैं, उन्होने कुछ सहायता भी चाही। रुपए-पैसे तो मै दे नहीं सकता। खाने-पीने को एकाध दिन कुछ दे सकता हूँ।'

'अजी, यही काफी है।' मैं बोला—मार्ग में खिलाना-पिलाना क्या कम है?

'हाँ, यही तो कहता हूँ, मनुष्य को पहचानना कितना कठिन है! एक बार एक खराब नौकर रखा था। वह बिना वेतन के नौकरी करता रहा। अचानक एक दिन भाग गया। सन्दूक खोलकर देखा तो गहना भी गायब था। दूसरो का गहना बन्धक रखकर रुपए उधार दिये थे, सोच सकते हो, कितनी भयानक विपत्ति आई?'

मैं हँसकर बोला—तन्ख्वाह न देने से ही विपत्ति आई!

यह बात सुन वह प्रसन्न नही हुए; किन्तु आत्म-संवरण करके बोले—यही सही, लाभ का गुड़ चींटियाँ खा गईं।

बातचीत करते-करते रायपुर चट्टी के पास आ पहुँचे, इसके पहले रानीबाग छोड़कर आये हैं। सामने एक बड़ा झरना है उसके आस-पास कुछ चट्टियाँ हैं। मार्ग में चट्टी के पास अघोर बाबू की स्त्री और सास दिखाई दीं। मार्ग के परिश्रम से दोनो ही थकी हुईं और मा उदास थी, किन्तु राख से ढकी आग की तरह स्त्री का शरीर-सौन्दर्य सभी की दृष्टि को आकर्षित कर रहा था। चेहरे पर एक कमनीय शान्तश्री थी। ब्रह्मचारी पास ही खड़ा था, वह उत्साहपूर्वक बोल उठा, 'दादा, यह देखो, यही मेरी मा है, अन्नपूर्णा मा और यह मेरी दादी है।' कहकर वह पास की वृद्धा को दिखाने लगा।

स्मित मुख से मैंने उसकी तरफ देखा, किन्तु बातचीत करने का कोई विशेष प्रयोजन नही था। मार्ग मे जितनी स्त्री-यात्री देखी गईं, उनमें यही एक मात्र कम अवस्था की और रूपवती थीं। मैंने पूछा हमारे लिए भी किसी चट्टी की व्यवस्था की है या नहीं ब्रह्मचारी?

'यही चट्टी, यही अच्छी है दादा! गोपालदा भी तो यहीं आ गये हैं।'

'अच्छा, अच्छा, आओ थोड़ा बैठ जाएँ। पैर थक गये हैं।' सारा शरीर दुख रहा था।

मुझे उदासीन देखकर अघोर बाबू कुछ क्षुब्ध हुए; बातचीत ही क्या होती? हठात् व्यस्त होकर वह बोले—क्या यहाँ दूध नही मिलता? मेरे पास चाय और चीनी है, जरा चाय ही पी जाती।

चाय की व्यवस्था के लिए वह चले गये। स्त्री ने स्निग्ध हँसी से सविनय पूछा—आपके पैरों मे क्या दर्द है?

मैं बोला—हाँ, भारी परेशानी है।

वृद्धा बोली—अच्छा, राधारानी की पीड़ा का साथी मिल गया। मेरी लड़की के बाएँ पाँव मे भारी दर्द है, बाबा !

'तब तो ठीक ही है। ब्रह्मचारी, तुम तो मेरे साथ इस समय नहीं खाओगे ?'

ब्रह्मचारी पास आकर सिर खुजलाता हुआ बोला—यही बात तो आप से कहता था, मा अन्नपूर्णा का प्रसाद पाकर ही मेरी इस समय गुज़र होगी दादा ! आपने तो मेरे लिए यथेष्ट खर्च किया ही है। अब से इन्ही .

'अच्छा, अच्छा '

'मैं आपके लिए भोजन तैयार कर दूँ दादा ?'

'नहीं, मुझे बनाने में कोई कष्ट न होगा।'

इतने में गोपालदा दिखाई दिये। वे एक तरफ बैठकर, आनन्द से तम्बाकू पीने की व्यवस्था कर रहे थे। धीरे-धीरे बोले—बडे घर की स्त्री हैं, क्या कहना ? ओ हो, क्यो कष्ट करने निकली हैं ! मालूम होता है ऐशो-आराम नही सह सकीं। लो, पकडो चिलम को, दियासलाई जलाता हूँ।

पास-पास सभी रसोई बनाने बैठ गये। अघोर बाबू चाकू से आलू काटने लगे, ब्रह्मचारी कहीं से मसाला इकट्ठा करके, उसे पत्थर पर पीसने बैठ गया। फिर भी यह स्पष्ट दिखाई दे रहा था कि उत्साह की भारी कमी है। अघोर बाबू की सास और बहू अधमरी-सी होकर बैठ गई थी। मैंने सोचा उनमे अब उठने की शक्ति नही है, सारे अङ्ग धूल-धूसरित हो गये थे, कपड़े बहुत ही मैले हो गये थे, सिर के बाल जटाओ की तरह हो गये थे, मानो वे मृतक-सस्कार करके अभी हाल श्मशान से लौटी हो। कौन किसको देखे ? जिस तरफ भी देखो, केवल थकावट, मार्ग की पीड़ा, निस्तेज शरीर, और अवसन्न हृदय दिखाई देते थे। इसी बीच कई स्त्री-पुरुष न चल सकने के कारण, अधिक किराया देकर कुलियो की पीठ पर कण्डी पर बैठकर यात्रा करने लगे थे। खिदिरपुर की मौसी के पैरो मे बहुत दर्द था। कांडी मे चढ़ने अथवा उससे उतरने के समय वह जिस तरह चीखती-चिल्लाती थी, उससे डर लगता था। निर्मला तो अनाहार के कारण अधमरी हो गई थी। रास्ता चलने से उसमे रसोई बनाने का उत्साह नही रहा था, इसलिए पानी और शक्कर मिला आटा घोलकर खा रही थी। किन्तु यह पेट क्यो सहता, अतएव उसे कै-दस्त लगने शुरू हो गये। इसके अतिरिक्त

मक्खियो के काटने से जो खुजली उठती थी उससे भी कोई-कोई पागल की तरह इधर-उधर भागने लगते। ऐसा लगा कि झरने के पानी का भी दोष है। कई प्रकार के पहाड़ी पेडो व लताओ की पत्तियो के ऊपर झरने बहते हैं, इसलिए उसके पानी का उपयोग भी निरापद नही होता।

किन्तु जल-वायु का गुण भी आश्चर्यजनक है। आधा घण्टे विश्राम करने के वाद मृत शरीर भी फिर फुर्तीले और जानदार होकर उठ बैठे। खाने-पकाने, भीड़-भाड़, गप-शप, इधर-उधर की चर्चा से फिर उत्साह का ज्वार उठ पड़ता है। भोजन आदि के बाद सभी बर्तन साफ करके चट्टीवाले के साथ हिसाव करने बैठ जाते। मोटे हिसाब से एक आदमी के एक बार के खाने का खर्चा चार आने पड़ता है। किन्तु जहाँ चीजें मिलनी कठिन होती हैं, वहाँ पर छ: आने से कम में उदर-पूर्त्ति नहीं होती है। घी और दूध के सम्बन्ध में जो कम खर्च करता है, उसके अन्त तक बीमार होने की सम्भावना वनी रहती है। अपने हाथों से वनाये भोजन के सिवा और कुछ आहार करना इस मार्ग मे विपत्ति-जनक है। हर साल आहारादि की असावधानी के कारण कितने यात्री क्रिया-शक्ति से हीन होकर मरते होगे, इसकी कोई हद नही।

'इसी तरह कितने ही कष्ट होते हैं, जिन्हे देखकर मुझे दु:ख होता है। ये लोग जीवन को खतरे मे क्यो डालने आते हैं?'

वहू के गले की आवाज सुनकर मैंने मुख फेरकर देखा। उनकी वाणी में करुणा और दर्द था। पहले किसी ने उत्तर नहीं दिया, किन्तु इसके वाद ही अघोर बाबू खीझकर बोले—तुम फिर आई क्यो? घर बैठ कर पूजा करने से क्या पुण्य नही होता?

'मैं मरी जा रही हूँ, यहाँ ऐसा रास्ता होगा, इसका मुझे क्या पता था?'

'अच्छा, अव चुप हो जाओ! ज्यादा बकबक मत करो!'

सास बोल उठी—बद्रीनारायण हम भूलकर भी नही आते, अगर हमे पता होता तो, हमारा कोई दोष नही।

इतनी थकावट होने पर भी वहू के मुख पर हँसी आ गई। कुछ देर वाद वह वोलीं—अच्छा पैरों के लिए किसी दवा का पता लगा? वडी तकलीफ है।

मैंने कहा—सुना कि श्रीनगर मे अस्पताल है, देखा जाय।

'देखती हूँ कि आपका तो दाहिना पैर खराव हो गया है, पर मेरे वाएँ पाँव मे तकलीफ है। चढ़ते समय तो दर्द सह लिया जाता है, पर

उतरते हुए . अरे बाप रे ; घुटने टूटे पड़ते हैं। आँखों में आँसू आ जाते हैं। लाठी पर भार रखकर चलने से दाहिना हाथ आज अब मुड़ ही नही रहा है—अच्छा, एक बात बताओगे ?'

मुख उठाया। वह अनेक दुविधाएँ और संकोच दबा कर हठात् मेरे मुख की तरफ़ देख कर बोली—बहुत देर से सोच रही हूँ—आप क्या स्वामी विवेकानन्द के कोई आत्मीय हैं ?

'जी नही।'

कुछ वक्त और इधर-उधर की बातो मे बिताया। भोजन बनाने की तैयारी मे था इसी समय वहू ने गुपचुप अघोर बाबू से कुछ अनुरोध किया। पति बोले, 'कितने ताज्जुब की बात है, तुम कह नहीं सकतीं ? यह तो तुम्हारे ही बतलाने की बात है।'

वह फिर पास आकर खडी हो गई।

मुख उठाने के पहले ही यह स्निग्ध, दीप्त और सम्भ्रान्त महिला अपने स्वाभाविक कोमल, लज्जाजड़ित कण्ठ से सविनय बोली—मार्ग मे आम का पेड़ देखकर एक कच्चा आम तोड़कर ले आई, चटनी बनाई है, आप खायेंगे ?

भूल गया था पृथ्वी पर कहीं स्नेह का बन्धन है, कही अयाचित आत्मीयता है, भूल ही गया कही मनुष्य के लिए मनुष्य का उद्वेग और हित-कामना है। मन मे लगा कि यह यहाँ दूर बगाल देश से श्याम-श्री की कमनीयता लेकर आई हैं, मिट्टी की ममता लेकर। फिर भी विनीत कण्ठ से बोला—शास्त्र मे कहा है, तीर्थ के मार्ग मे किसी से भेट या दान लेना उचित नही।

'ओ, तब रहने दीजिये, यह बात मुझे ज्ञात नही थी।' बोलते-बोलते वह सिर झुकाकर चली गई।

आज श्रीनगर पहुँचना चाहिये। जल्दी-जल्दी कोई ढाई बजे सभी रास्ते पर चलने के लिए आ गये। पैरो की तकलीफ के कारण सीधे खड़े होकर चल नहीं पाते ; वहू भी बिल्कुल लाठी टेकती-टेकती लँगड़ाती हुई चल रही है, अब मालिश का ठीक इन्तज़ाम हुए बिना काम चलने का नहीं। अभी तो हम केवल छः दिन ही चले हैं। लगभग एक महीने तक रास्ता और चलना होगा ; पैरो को तो स्वस्थ रखना चाहिये ही। एक जगह दो-चार दिन विश्राम लेकर हम पैरो की थकान मिटा सकते थे, पर उससे हमारे चलने का छन्द भंग हो जाता, पीछे पड़ जाते, समय के साथ कदम नहीं रख सकते ; पथ के जो सुख-दुःख के अस्थायी

सगी थे—सुबह-शाम दुःख में, दुर्गम मे, जिनका व्यथित और करुण मुख हम देखते आ रहे थे, उनसे बिलकुल साथ ही छूट जाता। हम सभी, सबके परम आत्मीय हो गये थे—पण्डितजी, पगड़ी पहने रामायार, एक पूना से आई हुई महाराष्ट्रीय वृद्धा, गोपालदा, अमरसिंह, कुली कालीचरण और तुलसीराम, ब्रह्मचारी, रुईदास शुक्ल—इनमें से किसी को छोड़ना हृदय को बहुत अखरता। जाति-विचार नहीं, स्पृश्यता और अस्पृश्यता का भी कोई प्रश्न नहीं, सब इकट्ठे बैठकर तम्बाखू पीते हैं। कालीचरण कुली ही सही, वह तम्बाकू का कश लगाकर हुक्के को गोपालदा के हाथ में देता, गोपालदा अमरसिंह के हाथ में, अमरसिंह ब्रह्मचारी के हाथ में, ब्रह्मचारी का प्रसाद रुईदास शुक्ल पाते। शाम के समय विना मौज में आये कोई रह नहीं सकता था। सर्वत्यागी परिव्राजको का दल तम्बाकू और सुलफा के नशे में अर्ध-चेतन हो चट्टी के पास बैठकर अपनी धुन मे मस्त रहता। उन्हे वाहरी दुनिया मे क्या हो रहा है, इसका कोई पता रखने की जरूरत नही थी। मनुष्य की कल्पना को घेरकर जो एक अलोक सामान्य रूप-कथा-सा स्वप्न-राज्य होता है, उसके मस्तक के ऊपर आती है प्रथम सूर्य-रश्मि लेखा, जो ऐसी मालूम होती है, मानो उदासिनी सन्ध्या का रहस्यमय पथ हो। वे सभी गृहत्यागी, सन्यासी और संन्यासिनी हैं, उनके मुख में केवल तीर्थ और देव-मन्दिरो की ही बात रहती है, नदी, सागर, और हिम के देश की ही चर्चा करते हैं; उनके पास में सुनाई देती है वन्य-जन्तुओ की वात, या विपत्ति की कहानी।

इस समय प्रायः आठ मील रास्ता है। चलने से पॉव दुखने लगे हैं। भीलकेदार तक चार मील मार्ग अतिरिक्त कष्टदायक है। इस स्थान का नाम दुरण्डप्रयाग भी है। भीलगंगा और अलकानन्दा यहाँ पर मिलती हैं। कोई पाँच-छः जीर्ण चट्टी वहाँ पास-पास ही हैं। पहले प्रस्ताव हुआ, आज भीलकेदार तक पहुँचा जाय, पर वहाँ तक जाने को कोई राजी नहीं हुआ। समय भी काफी है, अनायास ही इस समय तीन-चार मील तक चला जा सकता है। पैरो के दर्द के नाम पर हम दो-एक मनुष्यों ने आपत्ति की, किन्तु जन-मत की ही विजय हुई। सुना गया, मार्ग मे चढ़ाई और उतराई वैसी कुछ नही है, अधिक पैरों पर ज़ोर देकर नहीं चलना पड़ेगा, श्रीनगर आज ही पहुँचना उचित है।

इस ओर मल्लिका और मालती-लता रास्ते में छाई हुई है। वन-गुलाब के जंगल से लजाई-सी सुगन्ध चुपचाप चली आ रही है। इतने

दिनों के बाद आज एक समतल मार्ग मिला। अलकानन्दा के किनारे होकर ढालू पहाड़ों तक खेती होती है ! नदी के किनारे-किनारे छोटे-छोटे गाँव चित्रपट की तरह अंकित है। मार्ग मे काँचा सिद्धि और नागफनी के घने जगल थे। उनके भीतर से यात्री लोग चलते हैं। इनके बीच मे सबसे अधिक आश्चर्य तो आम और सहिजन के पेड़ो को देखकर होता है ! कहीं-कहीं आस-पास मे चूने और बालू के पहाड़ है, सूखे झरनो के निशान पड़े हुए है। नदी के उस पार मनोरम प्राकृतिक शोभा है ; पर्वत-प्राचीर में हमारी थकी हुई दृष्टि और अतिहत नहीं होती ; आँखें प्रकृति के अखण्ड सौन्दर्य के बीच निश्चिन्त होकर विचरने लगी। स्नायु-ग्रन्थियाँ अलग होकर इस कमनीयता के अन्दर आ पड़ना चाहती है। हम प्रायः नदी के समतल आ गये। ओह बच गये। बच गये।

पीछे रह गया था। चलते-चलते देखा सास और बहू मार्ग के पास थककर बैठ गई हैं। आगे-पीछे रहने से क्या, सभी से एक बार मुलाकात हो जाती है, दो-एक बार चलते-चलते सबको विश्राम लेना ही पड़ता है—पानी पीने तथा ठंढी हवा से पसीना सुखाने के लिए। फिर सिकुडा शरीर सीधा कर चलने लगते। नदी के किनारे बहुत गर्मी मालूम होती है और चढ़ाई पर चढ़ने मे ठढी हवा लगती है। गर्मी की अपेक्षा ठढे मे ही यात्रियो को सुविधा रहती है। सास ने पुकारा—तुम्हारा श्रीनगर कितनी दूर और है बाबा ? लड़की से अब चला नहीं जाता !

खड़े होकर बात करने मे शरीर टूटता-सा मालूम होता है, अतः झोला-कम्बल रखकर मार्ग के इस पार उदास होकर बैठ गया। बोला—अब ज्यादा दूर नहीं है।

मा और बेटी हाँफ रही थीं। लड़की के पैरो को सहलाते हुए बोली—तुम्हारे लोटे मे थोड़ा पानी होगा बाबा ? ज़रा दो तो ?

इतनी थकावट थी कि कई मिनट तक यही विचार करता रहा कि मै ही पानी दे दूँ या वह खुद ले लेंगी। आख़िर वह ही खुद उठकर जल ले गई। उन्होने खुद पानी पिया और उसके बाद आँखे मूँदी हुई लड़की के गले मे भी पानी डाल दिया। पैरो के दर्द के कारण लड़की को होश नही था, वह प्राय: चलने की शक्ति से हीन हो गई थी, फिर कुछ स्वस्थ हो सिर उठाकर देखने लगी। अब कृतज्ञता प्रगट करने की आवश्यकता नही, वह तो अब पुरानी चीज़ हो गई है। केवल बोलीं—आप तो पुरुष हैं, दर्द सहते हुए भी घसीटते-घसीटते चल सकते हैं, किन्तु हम तो मृतप्राय हो जाती है।

धूल, वालू, तेल-जल के दागो से, वेपरवाही व असाध्य परिश्रम से ऐसा लक्ष्मी का-सा रूप सूखकर काला हो उठा है—यही बातें उनकी मा कहने लगीं। यही मालूम भी हो रहा था। आराम, ऐश्वर्य और भोग में पला हुआ शरीर, किन्तु लड़की को क्या नशा-सा चढ़ा कि ऐसी कठोर तीर्थ-यात्रा को निकल पड़ी और साथ में अपनी मा को भी ले आई। आजकल के लड़के-लड़कियाँ सब दुनिया-भ्रमण की इच्छा करते हैं। केवल क्या तीर्थ-दर्शन और पुण्य-कामना के लिए? कहीं लड़कियाँ तो अपने देवता को लेकर किसी भी दिन उच्छ्वास-प्रकाश तक नहीं करतीं? तिस पर भी यह जान पड़ा कि यदि यह लड़की कई वर्ष तीर्थों में नहीं घूमेगी तो इसे शान्ति ही न मिलेगी। इसकी अवस्था भी इस समय कितनी होगी, तीस वर्ष की उम्र तक पहुँचने में भी अभी देर है। धैर्य रखकर मैंने उसकी मा की बातें सुनीं।

सुस्ताने के बाद फिर सबको उठना पड़ा। झोला-झोलियो का मृत्यु-यन्त्रणा-दायक बोझ फिर पीठ पर रख लिया। मा और बेटी लाठी टेकती-टेकती आगे चलने लगीं। फिर वह बुढ़िया बोली—बाबा, अघोर से कहो कि इस तरह तो हम चलकर मार्ग तै नहीं कर सकते, और क्या होगा दस दिन की देर ही हो जायगी। इस तरह से चलने से तो प्राण ही निकले जाते हैं। दस मील से अधिक रोज़ चलना तो स्त्रियो के लिए ऐसा तो अब नही होगा बाबा!

रास्ते मे जूते घिसते-घिसते वे चल रहे थे। दरअसल उनकी हालत जो कोई भी देखता तो उसे यह धारणा होती कि ये कही भी विवश होकर रास्ते में गिर पड़ेंगे—कुछ भी विचित्र नही!

अन्त में एक समय श्रीनगर के चिन्ह दृष्टिगोचर हुए। मार्ग के पास ही कालीकवलीवाले का प्याऊ है। बाईं तरफ नागफनी के जगल में से एक सँकरा रास्ता कमलेश्वर महादेव के मन्दिर की तरफ चला जाता है। मार्ग के मोड़ पर अघोर बाबू और ब्रह्मचारी प्रतीक्षा कर रहे थे। मा और बेटी हाँफते-हाँफते आकर क्षीण कण्ठ से बोली, 'इस तरह से तो हम नही चल सकते, सबके शरीर एक जैसे तो हैं नहीं। पैरो को देखो, कैसी शोचनीय दशा हो गई है।'

ब्रह्मचारी बोला—धर्मशाला मे पहुँच कर आपके पैरों की मैं अच्छी दवा कर दूँगा मा!

'अच्छा बाबा!' कहकर वहू के मा के साथ आगे बढ़ते ही अघोर बाबू बोले—कमलेश्वर के दर्शन तो नहीं करोगे?

'नहीं।' एक विरक्ति के साथ उनकी बात का उत्तर दिया गया।

सबके आगे बढ़ जाने के बाद मैं और ब्रह्मचारी मन्दिर के दर्शन करने के लिए गये। पर उसमें कोई विशेषता नहीं। पुराना जीर्ण मन्दिर है, भीतर एक प्रकाण्ड शिवलिङ्ग है। पूजा-अर्चना की कोई आयोजना नहीं। मालूम हुआ, पास ही कोई एक गाँव है क्योकि बच्चे और मन्दिर के रक्षक दौड़े आये और पाई-पैसो के लिए धक्कमधक्का करने लगे। भारत के प्रायः सभी तीर्थों मे भगवान के बहाने यात्रियो के प्रति ऐसा ही जुल्म किया जाता है। चतुरता और खुशामद द्वारा यात्रियो का शोषण करना इस देश के तीर्थों के पण्डे-पुजारियो का एक प्रधान कार्य हो गया है। उद्विग्न होकर हम वापस लौट आये। मार्ग और अधिक दूर नहीं था, कुछ रास्ता चलने पर दाहिने हाथ की तरफ एक बड़ा अस्पताल मिला। खुश होकर भीतर घुस गये। वहाँ जितने भी रोगी दिखलाई दिये वे सभी प्रायः अकर्मण्य यात्री थे। हमने अर्जी पेश की—पैरो के लिए एक मरहम, नाक के जख्म के लिए थोड़ा वैसलीन पॉमेड, और ब्रह्मचारी के दाँत के लिए एक आयडीन। ये लेकर और चारो तरफ देख-सुनकर हम चले आये। श्रीनगर देखने मे एक छोटा और सुसज्जित शहर है। अवश्य यहाँ का हेडक्वार्टर पौड़ी में है जो यहाँ स नौ मील की दूरी पर है। वहाँ पर अदालत, पुलिस, जेल आदि हैं और अफसर रहते है। पौड़ी का खूब नाम है। मार्ग मे दो सभ्य बंगालियो को देखकर विस्मय हुआ। वे इस हिमालय के गहन राज्य मे यहाँ के किसी कालेज मे शिक्षा के लिए आये थे। इसमें कोई सन्देह नही कि बगाली दिग्विजयी होते है। बातचीत के बाद फिर आगे बढ़े। शहर का केवल एक बड़ा पक्का राज-मार्ग है और सौभाग्य से यह मैदान है। दूकानें अनेको हैं। विलायती और जर्मन माल कम नहीं बिकता। सुनने मे आया कि कुछ दिनो पहले यहाँ पिकेटिंग और सभाएँ आदि हुई थीं। रास्ते मे एक जगह अब भी १४४ धारा का नोटिस टॅगा हुआ था, सभा-समितियाँ बन्द थीं। खोजते-खोजते धर्मशाला मे पहुँचे। अन्दर दो बड़े आँगन है। सामने एक मन्दिर है, जिसमे सन्ध्या की आरती की आयोजना हो रही थी। धर्मशाला दो मंजिलों की एक बड़ी बैरक है। देखकर बड़ी स्फूर्ति हुई। लाठी के सहारे कुछ दूर घूम आये। रास्ते के ऊपर ही मिठाइयो व अन्य खाने-पीने की चीजो की दो बड़ी दुकानें हैं। अतएव आज खाना बनाने की जरूरत नहीं। पूछने पर मालूम हुआ कि दूकान मे चाय का प्रबन्ध भी हो सकता है। तब और क्या, किला फतह

कर लिया। अब पैरों में दर्द नहीं—बद्रीविशाललाल की जय! ओम् नमो नारायणाय!—आनन्द मे ब्रह्मचारी लट्टू की तरह घूमने-फिरने लगा।

कैसी अनिर्वचनीय आरामदायक रात आ गई। दूध, दही, जलेबी, चाय, उम्दा घी की पूरियाँ, आलू की तरकारी, आदि—सबको एकत्र करके ही भोजन किया गया। भोजन का कार्य जितनी देर चला, ब्रह्मचारी ने आँखें नहीं खोली। बोला—दादा, मुँह खोले रहता हूँ, आप जितना चाहें उतना लगेज अन्दर ठूँस दीजिये।

'ब्रह्मचारी, कालरा हो जायगा?'

उच्च कण्ठ से, आँखे बन्द किये हुए ही वह क्षुद्र मनुष्य बोल उठा—दादा क्या रथ मे बैठने से भय लगता है? विश्व रूप दिखा दूँ क्या? आज यह पेट सब कुछ निगल सकता है! मैं दादा, भूखा खटमल हूँ।

भोजन करने के बाद ब्रह्मचारी गीत गाते-गाते ऊपर उठ आया। पास ही पास दो व्यक्ति कम्बल बिछाकर लेट गये। आज ब्रह्मचारी बार-बार 'ओम् नमो नारायणाय' कह रहा है। ऐसा लगा कि आज के भोजन से उसके दाँत, होठ, जीभ और तालू—सभी परितृप्त हो गये हैं। कितनी ही उसने बातें की। उस तरफ गोपालदा बुढियो के गोरख-धंधे मे घूम रहे है। शाम को एक मात्रा अफीम और एक चिलम गाँजा पीने के बाद गोपालदा एक नूतन मूर्ति धारण करने—देव-लोक के पारिजात कानन में दार्शनिक की तरह भ्रमण करने लगते, उस समय कोई उन्हें उद्विग्न करता तो वह हत्या करने के योग्य समझा जाता। बुढ़ियो की किचिर-मिचिर से बेचारे परेशान हैं। सिर की तरफ एक छोटे घर में अघोर बाबू सपरिवार आ पहुँचे। उनका खाना-पीना खतम हो गया है। उनकी सास और बहू एक बार आकर हमारे भोजन करने और सोने के सम्बन्ध मे पूछ गईं।

किन्तु पैरो का दर्द किसी से भी कम नहीं हुआ। कई टोटके, जड़ी-बूटियाँ, अस्पताल की मालिश—किसी से भी कुछ नही हुआ। अतएव मशविरा हुआ कि रोज पाँच-सात मील ही मार्ग तै किया जाय। कष्ट के समय साधारणत हम जो कल्पना करते हैं, कार्यक्षेत्र मे उनमे परिवर्तन होता है। रास्ते मे चलते-चलते सोचा कि मार्ग तै करने के बाद ही शान्ति मिलेगी। श्रीनगर से सुबह चलने के बाद लगभग ग्यारह बजे

हम भट्टी सराय आ पहुँचे। रास्ते में सुकृता नामक एक छोटी-सी नदी और एक चट्टी पार हो गये। भट्टी सराय में मार्ग समतल है; इसीलिए एक समय में आठ मील तै करके आ पहुँचे। पास ही एक नदी है, उसका नाम हर्षवती है और वह अलकानन्दा की ही एक शाखा है। चट्टी के पास एक झरना है। उसी के प्रवाह को बुद्धि के द्वारा मनुष्य ने कैसे अपने प्रयोजन में लगाया है; यह दृश्य यहाँ देखा गया। इसका नाम पनचक्की है अर्थात पानी और पहिया। लकड़ी के एक पहिये के ऊपर पानी की धारा गिरकर धक्का देकर उसे घुमाती रहती है, ऊपर पत्थर की चक्की लगाई गई है और उसके अन्दर गेहूँ पिसते हैं। बिना परिश्रम किये आटा तैयार होता है। उसकी प्रशसा किये बिना रहा नही जा सकता। जहाँ तक याद है, इसी भट्टी सराय में गोपालदा के दल की ब्राह्मणी मा के साथ अघोर बाबू का झगड़ा हुआ। कारण, जाति-विचार और शुद्धाशुद्धि। अत्यन्त मामूली कारण से ब्राह्मणी मा की प्रचण्डता देखकर अघोर बाबू की स्त्री स्तम्भित हँसी हँसकर मुख की तरफ देखने लगी। ब्राह्मणी मा हमारे सनातन धर्म की साक्षात प्रतिमा थीं। जाति-विचार और अस्पृश्यता छोड़ दे तो, वह बचती किस तरह ? वह सनकी की तरह अटशंट बोल उठती, 'किस पाप से तुम्हारे साथ पड़ गई। सूखे कपड़े मेरे क्यो छू दिये ? शूद्रो का मिज़ाज आजकल बहुत बढ़ गया है !'

अघोर बाबू अपने को न रोक सके। खैर, स्त्री ने आकर समझा दिया और उनसे कहने लगी—छिः चाहे जो कुछ भी हो, ब्राह्मण की लड़की है, उसकी इज्जत का ख्याल रखना ही चाहिये।

ब्रह्मचारी क्रोध से बड़बड़ाता हुआ बोला वह क्या ब्राह्मणी है मा वह तो चाण्डाल है।

'छि, बाबा, जो अन्धा है उससे यह कह कर कि उसकी आँखें फूट गई हैं तिरस्कार करना बड़ा पाप है।'

गोपालदा चुपचाप बैठे रहे, वह किसी के शत्रु नही। किन्तु उसी दिन तीसरे पहर हम परस्पर विच्छिन्न हुए। छान्तिखाल की खड़ी और भारी तकलीफदेह दो मील की चढ़ाई पार करके खाङ्करा चट्टी के पास आ गये—उस समय शाम होने में कुछ देरी थी। अन्य स्थानो के मुकाबले थोड़ा मैदान है, पास ही अलकानन्दा की ही एक और शाखा है, उसका नाम पटुवती है. दूर पर एक मनोरम पर्वत-उपत्यका है तीन तरफ गगन- स्पर्शी पर्वत-शिखर है, स्निग्ध मधुर वायु है, झरनों की

झंकार है, वन-फूलों की गन्ध। अघोर बाबू की स्त्री बोली—अब और आगे न चलिये, यहीं पर रुकना है न?

मार्ग की तरफ एक बार मुड़कर देखा। प्राय: एक मील दूर पर नदी के मोड़ पर सदलबल गोपालदा का अस्पष्ट छोटा-सा शरीर दिखलाई दिया। मन्द गति से चींटियों की कतार की तरह वे चल रहे हैं। दूसरे साथी भी चल रहे हैं। मैं बोला—उन्हें क्या छोड़ दें?

इस पर अघोर बाबू बोले—हो सकता है हम एक-दो मील पीछे रह जावें लेकिन उसके बाद तो उन्हें पकड़ ही लेंगे। सास बोली—यही ठीक होगा बाबा, तुम्हारा शरीर हमसे भी अधिक खराब हो गया है। हमारे कुली के पास बिस्तर है, वह भी जायगा, तुम्हारे लिए बिछौना बिछा दूँगी। इस समय तुम्हें अब अलग भोजन बनाने की ज़रूरत नहीं। हमारे साथ ही खाना-पीना हो जायगा। ब्रह्मचारी बोला आज के लिए उनकी माया-ममता छोड़ दो दादा!

पति-पत्नी तब इस तरफ देखकर विजय की हँसी हँसने लगे। मानो उन्होंने हम पर विजय पाली है। मैं बोला—आज न हो तो यही रहा जाय। किन्तु और दिन इतना थोड़ा मार्ग चलने से काम चलेगा नहीं। यात्रा तो हम जल्दी से जल्दी समाप्त करना चाहते हैं।

'अच्छा, तो खैर आज के लिए ही रह जाओ, मा का अनुरोध भी तो रखना चाहिये।'

मैंने कहा—पैरों के दर्द ने इस समय बड़ा कष्ट दिया है। नहीं तो अनुरोध न मानकर भी मैं चल देता।

स्त्री के प्रति यह अकरुणाउक्ति सुनकर अघोर बाबू को ऐसा मालूम हुआ कि, कुछ बुरा मालूम हुआ। हँसकर बोले आपमें विशेष माया-दया नहीं है!

शाम हो गई। पहाड़ के शिखर के पास क्षीण चन्द्रमा दिखलाई दिया, तारे भी आकाश में जगह-जगह छिटकने लगे—सभी के चेहरे जाने किस तरह बदल-से गये। शायद ऐसा ही होता हो। दिन में प्रखर प्रकाश, स्थूल वास्तविकता, मनुष्य का दैन्य और स्वार्थ के प्रति स्थूल घात-प्रतिघात; किन्तु कितना आश्चर्य, रात में सब बदल गये। इस विश्व-प्रकृति को प्रसाधन-परिपाटी में अलंकृत करके मानो उसे किसी ने मनोहर कर डाला है। रात्रि की स्निग्ध ज्योत्स्ना में दिन के आलोक की मानो याद ही नहीं आती।

सास-बहू की परिचर्या में उस रात हम सबने ही आनन्द पाया।

उच्च शिक्षा की एक ऐसी दीप्ति और गम्भीरता वहू के मुख मे और आँखो मे देखी कि हम दोनो सन्यासी तक, उसकी प्रशसा करते-करते नहीं अघाये। ब्रह्मचारी तो 'मा-मा !' कहते-कहते उन्मत्त-सा हो उठा। मैने बाहर बैठकर आकाश के तारे गिनना शुरू कर दिया। वह रात कटी। सवेरे फिर ब्रह्मचारी को साथ लेकर आगे चला गया। प्रथम तीन-चार मील रास्ता हम चुपचाप चल देते हैं। रास्ते मे सुवह दूध मिल जाता है, चार-छ: आने सेर गरम दूध पीकर फिर चल पड़ते हैं। आज साथ मे कोई खास यात्री नही थे। जो दो-एक मिले, वे अपरिचित थे। सहयात्री देखकर 'जय वद्रीविशाल' बोलने लगे। चलते-चलते हम चीड़ के जगल के वायु-प्रवाह की तरह परस्पर एक दूसरे के हॉफने की आवाज सुनने लगे। विशेष कर चढ़ाई चढ़ते समय। आज का मार्ग कही बहुत सॅकड़ा है, यथेष्ट सतर्क होकर सम्हल-सम्हल कर चलने लगे, नीचे की तरफ अति साहसी व्यक्ति भी देखने का दु:साहस नहीं करता, सिर मे चक्कर आ जाने की सम्भावना है, नीचे अतल जलराशि मानो यात्रियों को निरन्तर आकर्षित करने की चेष्टा कर रही हो। पैरो का दर्द सहकर चलने का अभ्यास हो गया है, यन्त्रणा और दु:ख शरीर के साथ हिल-मिल गये हैं। सीधे और स्वस्थ रूप में चलना तो भूल ही गये हैं। समस्त दु:ख ही मनुष्य को इसी तरह सहनशीलता देते हैं। अपना प्रयोजन सिद्ध करते हुए वे मनुष्य को उपयुक्त करते हैं, खरा बनाते हैं, दुर्गम को सरल कर डालने के लिए उसे वे कठिन बना डालते हैं। निर्मल और परिच्छन्न होकर हमारे चलने का उपाय नही, रास्ते के समस्त दाग सारे अंग मे फूट उठे हैं। लोगो की आँखो मे हम पहले के वे ही सामाजिक मनुष्य अव नही हैं, हमारे सारे शरीर मे हिमालय की छाप है, एक तरफ ज्वाला-यन्त्रणा, दूसरी तरफ दु:सह क्लान्ति, फटे मैले कपड़े, धूल-धूसरित काला शरीर अन्दर धसी हुई क्षीण और शून्य दृष्टि, रक्तहीन मुर्झाया हुआ रूप—हम परस्पर एक दूसरे के मुखो की तरफ देखकर निश्वास छोड़ते हैं। मानो हम बिलकुल समाप्त हो गये हो, मानो हमारा दीवाला निकल चुका हो।

उस दिन दोपहर के समय हॉफते-हॉफते हम कई व्यक्ति प्राय: मुमूर्षु अवस्था मे अलकानन्दा का पुल पार कर रुद्रप्रयाग आ पहुँचे। विश्राम, कहीं कुछ विश्राम लेना चाहते हैं। लाठी टेकते-टेकते एक धर्मशाला की ऊपरवाली मजिल मे बैठ गये। अब तबियत नहीं, रुचि नहीं—और उठ भी नहीं सकते। एक बार चीत्कार करके मार्ग के

इन दु:खो का प्रतिवाद करने लगा—किन्तु ठहरो, पहले थोड़ा सो लें। सब चूल्हे मे जाय, सब ध्वंस हो जाय—इसका क्या प्रयोजन था, कोई आज कह सकता है ? हम क्या चाहते हैं ? इन दु.खों का अन्त जिस दिन होगा, उस दिन हमे क्या मिलेगा ? दरिद्र की तरह दीनता और मलीनता को लेकर हम क्या भिक्षा माँगने आये हैं ?

आँखों के पलक बन्द कर सो गया। ओहो, यही अच्छा है। और आँखें खोलकर नहीं देखा, ताकि कोई देखने में न आ सके। सब मिट जाय, दूर हो जाय, इन पुण्य-लोभी तीर्थकीटो के प्रति और कोई श्रद्धा नहीं, माया नहीं। और कहीं न जाऊँगा, काफी शिक्षा मिल चुकी है इस बार यही सदा के लिए मिट्टी में पड़ा रहूँगा।

किन्तु हाय रे निर्लज्ज शरीर, फिर स्निग्ध मधुर हवा के स्पर्श से धीरे-धीरे सजीव और सचल हो उठा! धर्मशाला के नीचे ही गहरी, नीली अलकानन्दा का कलकल्लोल है, फिर क्यो न आँखें खुल पड़ें ? सूर्य के प्रकाश मे चमकती जल-धारा के ऊपर पर्वत शिखर की श्यामल छाया उतर पड़ी है—अरे मन, देख तो सही। गौर से देख—शरीर अब कातर नहीं, दृष्टि अब क्षीण नही. व्यथा नहीं, विक्षोभ नहीं—क्या ऐसा और कही देखा है! यह तो केवल रूप नही, यह तो रूपातीत है ; केवल सौन्दर्य नहीं, लोकोत्तार व्यञ्जना है ; केवल काव्य नही, सुदूर अनिर्वचनीयता है। जल, मिट्टी, वृक्ष, प्रकाश और आकाश—इनको छन्द के अन्दर लाकर और फिर भाव-रूप देकर, व्यञ्जना की ओर इंगित करके—यह सब की अपेक्षा बड़े शिल्पी, सर्वोत्तम स्रष्टा का कला-त्मक कार्य है। अरे मन! खूब अच्छी तरह देख!

धीरे-धीरे उठकर बैठ गया, मानो हड्डियाँ टूट-फूट जाने से पंगु हो गया, पैरो मे अब हाथ नही लगाया जाता, जैसे बड़े-बड़े फोड़े उठे हो। यही रुद्रप्रयाग है। एक मामूली शहर उस पार पहाड़ की गोदी में छोटे-छोटे दो सरकारी बँगले, दक्षिण मे अलकानन्दा और मन्दाकिनी का सङ्गम-तीर्थ है। एक नदी देव-लोक की और दूसरी ब्रह्मलोक की। इसी नदी के संगम मे एक दिन गय राजा के यज्ञ मे असन्तुष्ट परशुराम के शाप से ब्रह्म-राक्षस योनि प्राप्त दो लाख ब्राह्मणो की मुक्ति हुई थी। यहाँ पर रुद्रेश्वर का शिव-मन्दिर है। धर्मशाला, सदाव्रत, डाकखाना और एक छोटा-सा बाज़ार है। रुद्रप्रयाग मे मार्ग के दो भाग हो गये है। एक रास्ता कर्णप्रयाग होकर अलकानन्दा के किनारे-किनारे बद्रिकाश्रम की ओर चला गया है। और एक मार्ग मन्दाकिनी के किनारे-किनारे

केदारनाथ की तरफ चला गया है। हम प्रायः सौ मील पार करके आ गये हैं। भीतर चारो तरफ देखा, मानो मृत्युपुरी है। कोई ज्वर से पीड़ित है, किसी को पेट की शिकायत है, कोई-कोई यात्री अकर्मण्य हो गया है, मुँह और आँखों पर मक्खियाँ बैठती हैं, किन्तु वह निश्चेष्ट और निस्पन्द पड़ा है, यदि मृत्यु हो जाय तो शव ले जाने के लिए लोग नहीं। फिर भी इसी तरह ये लोग चलते हैं, लँगड़ाते-लँगड़ाते रेंगकर, छिपकली की तरह पहाड़ पर चढ़कर, रास्ते मे जगह-व-जगह रोग और यन्त्रणा से जर्जरित होकर कई लोग रुक जाते हैं। सहयात्री एक बार मुँह फिरा उदासीन होकर 'अहा' कहकर चले जाते हैं। मालूम होता है कि बाबा (बद्रीनाथ) की दया नहीं हुई है।

दिन तीसरे पहर की तरफ झुका। जो केदारनाथ की तरफ जाने मे डरते है, वे सीधे बद्रीनाथ की तरफ यात्रा करने जाते हैं। केदारनाथ का पथ भयानक है। केदारनाथ का दर्शन करने जाने के लिए और भी अस्सी मील रास्ता तै करना पडता है। रुद्रप्रयाग के सङ्गम मे ही यात्रियों की पुण्य-कामना की अग्नि-परीक्षा होती है। जो शरीर से भयभीत, अशक्त और दुर्बल होते हैं, यात्रा का उत्साह जिनमे नहीं रहता है, जिनका रोग की स्याही से शरीर काला हो जाता है, वे केदारनाथ के मार्ग की तरफ फिरकर भी नही देखते, वे कर्णप्रयाग की तरफ चले जाते हैं। उनके पक्ष मे केवल बद्री है, केदारबद्री नही। मैंने भी केदार परित्याग करने का इरादा कर लिया। किन्तु घटना का प्रतिघात दूसरी ही तरह का हो गया। तीसरे पहर एक निकृष्ट श्रेणी की बंगाली स्त्री हठात् खोजते-खोजते पैरो के पास आकर रो पड़ी—ओ बाबा रक्षा करो बाबा ! रक्षा करो बाबा ! मेरी गुरु-माता के बचने का और कोई उपाय नहीं। तुम्हारे बारे मे रास्ते मे सुनती-सुनती यहाँ आई हूँ बाबा .. हमारा और कोई धन नही !

पहले तो वह जोर-जोर से रोने लगी, रोना-धोना जब बन्द हो गया तब उसने रुक-रुककर, वह सारी घटना सुनाई जो घटी थी। उसके कथनानुसार माता और कई शिष्याएँ कलकत्ता उल्टाडिङ्गि वोस्टम के अखाड़े से आये थे, सेठजी के बगीचे मे उनका अखाड़ा है, सब लोग ठीक चले आ रहे थे, लेकिन परसों रात को किसी एक चट्टी से अन्धकार में गुरु-माता चट्टी के दरवाजे से किसी काम से बाहर निकलीं। अचानक पैर फिसल गया और वह पहाड़ से नीचे गिर पड़ीं। उलटती

तलाश मे उतरे। देखा तो गुरु-माता के सारे शरीर की हड्डियाँ चकनाचूर हो गई हैं और शरीर खून से लथपथ और बेहोश हो गया था।

पैसा-टका जो कुछ था, उससे कठिनता से एक कांडी का आयोजन कर बूढ़ी को श्रीनगर के अस्पताल मे ले जाया गया. वहाँ प्राथमिक चिकित्सा तो होती है किन्तु स्थानाभाव के कारण अस्पताल के कर्मचारी रोगी को रखना नही चाहते, कुछ दवाएँ के साथ में रखकर रुद्रप्रयाग भेज दिया। '—आओ बाबा, तुम्हारे दोनो पावो पर पड़ती हूँ कुछ व्यवस्था कर दो।' फिर वह जोर-जोर से सिसकियाँ भरने लगी।

घटना अवश्य ही सब सत्य थी। नीचे आकर देखता हूँ तो बूढी यन्त्रणा से हृदय-विदारक चीत्कार कर रही है। समस्त जीवन धर्माचरण से बिता कर और शिष्या के कान मे मन्त्र फूँक कर, इस सर्वश्रेष्ठ तीर्थ के पथ पर आकर एक नारी की यह शोचनीय गति! किन्तु जीवन में ऐसा ही तो होता है। अपराध नहीं फिर भी दण्ड है, पाप नहीं फिर भी एक मुक्तिहीन प्रतिफल है, कारण नही फिर भी दुःख और व्यथा का एक दुर्भोग रहता है। किन्तु चुपचाप खड़े रहने का समय नही, समय बीता जा रहा है, अतएव लाठी के ऊपर अवलम्बन कर, लोगों को बुलाकर उन्हें बूढ़ी की अवस्था से परिचित कराया। एक स्थानीय युवक और अघोर बाबू ने उस दिन खूब सहायता की। बाजार मे, पथ मे, घाट में और यात्रियों के पास मे घूम-घूमकर मनुष्य के जीवन की आकस्मिक विपत्ति के सम्बन्ध मे ओजस्विनी भाषा मे वक्तृता देकर, अन्त में श्रोताओ के दुर्बल मुहूर्त के समय चतुरता के साथ भिक्षापात्र बढ़ाया। हमारी जाति भिखारियो की जाति है, अतएव अपमान का तो मैंने अनुभव किया नहीं, वरन परोपकार के आवरण से ढक कर उसको महत्व का एक बड़ा खोल पहिना दिया। धेला, पैसा, आना दो आना, अठन्नी—किन्तु पूरा एक रुपया किसी ने दिया नहीं। मैंने खयाल किया कि दोष मेरा ही है, शायद एक रुपए मूल्य की वक्तृता मैं दे ही नहीं सकता, सोलह आने मूल्य एक साथ मिला नहीं। मुझे ऐसा लगता है कि जीवन में निस्स्वार्थ परोपकार करने का यही प्रथम सुयोग मैंने पाया है, अतएव इसको योंही नही छोड़ा जा सकता था, यात्रियो के पास से अर्थ-शोषण के कार्य में चिपट गया। अन्ध आवेगपूर्ण और साहित्यिक हिन्दी भाषा में उस दिन मानवीय नीतिबोध, धर्मानुभूति और परोपकार की प्रेरणा के सम्बन्ध मे जैसा उत्तेजनामूलक व्याख्यान दिया, वैसा राजनीति की दिशा मे मुड़ने से शायद ये

पैतीस कोटि देशवासी ब्रिटिश शासन के विरुद्ध विद्रोह कर उठते।

किन्तु इतना करने पर भी पन्द्रह रुपए की आवश्यकता मे से साढ़े बारह रुपए से अधिक चन्दा जमा न हो सका। बाकी हम लोगों को ही पूरा करना था। अघोर बाबू की पत्नी हॅसकर बोली—आप क्या! लोग अपनी माताओं के लिए भी इतना कष्ट नहीं उठाते। हॉ, आज अपने यहाॅ आपके भोजन की व्यवस्था कर रही हूँ, खाओगे न ? आज तो मै और कुछ न सुनूॅगी।

'यथायोग्य मूल्य ले लिया जायगा, कहिये ?'

'यदि दे सके तो देंगे। इस बात को न भूलियेगा कि जो कुछ देंगे उससे केवल खाने के दाम ही वसूल होगे।'

अघोर बाबू स्त्री की ओर एक बार देखकर मुझसे बोले—आप बड़े निर्दय हैं, महाशय।

रुपए एक शिष्या के हाथ में गिनकर, वृद्धा को आगामी प्रातःकाल उखीमठ अस्पताल मे डाँडी से भेजने की व्यवस्था कर जिस समय हॉपते-हाँपते ऊपर उठ आया, उस समय निश्चय ही रात के दस बज गये होगे। प्राय: सभी यात्री उस समय घोर निद्रा मे अचेत पडे थे। इस समय ब्रह्मचारी दिखाई दिया! मौके पर वह कहाॅ अदृश्य हो जाता है, समझ मे नहीं आता। जल्दी-जल्दी खाना खाकर चुपचाप अलग ले जाकर वह बोला—दादा, गाना सुनोगे ?

गाना! मृत्यु से घिरे इस महा दुर्गम मे कौन गाना गाता है ? पीडितो का निःश्वास सुन रहा हूॅ, जर्जरितो का विलाप सुन रहा हूॅ, गाना तो सुनाई नही देता। विस्मित होकर मै बोला—गाना कहाॅ हो रहा है, ब्रह्मचारी ?

'आइये मेरे साथ' कहकर वह हाथ पकडे ले गया।

पथ निस्तब्ध। कही भी प्रकाश का चिन्हमात्र नहीं। आँखे उस समय निद्रा से भारी हो गई थी, शरीर बहुत थक गया था, तब भी जाना ही पड़ा। रास्ते मे घूमकर सीधा वह नदी के सगम की धारा के पास आकर बोला—उतर आइये, यही जो पक्की सीढ़ियाॅ हैं।

'कहाॅ जाऍगे, यह जो नदी है ? नदी का ही गाना तो ?'

'कहता हूॅ, सीढ़ियो से उतर आइये।'

लाठी के ऊपर शरीर का भार रख कर, पाँवो की व्यथा लेकर कई सीढ़ियाँ नीचे उतरा। इसके बाद दिखाई दी सुन्दर ज्योत्स्नामयी रात्रि। स्वच्छ सुस्मित नील आकाश मे तारे चमक रहे थे। दोनो नदियो के

घात-प्रतिघात से जल का प्रबल गर्जन, कानों से सुना नहीं जाता था। तब भी उस शब्द को अतिक्रम करने पर मन में लगता था कि आज बहुत सुन्दर प्रशान्त रात्रि है। आज सोना उचित नही, नदी-पर्वत और ज्योत्स्ना की ओर एकान्त मन से देखकर आज को रात इसी तरह काटनी उचित है। उसी स्वप्नमय रात्रि मे नदी के गर्भ की ओर इशारा कर ब्रह्मचारी ने कहा—आइये मेरे साथ, इसी बाएँ हाथ की ओर

सीढ़ियो के पास ही पहाड़ की ढालू भूमि पर एक अधपक्की कुटी थी। ब्रह्मचारी के पीछे-पीछे उसके भीतर आ घुसा। एक कोने मे एक प्रकाश टिमटिमा रहा था। बाघ और भालू की खाल के तीन-चार आसन बिछे हुए थे, उसी में से एक के ऊपर एक भारी-भरकम बूढ़ी सन्यासिनी बैठी हुई थी, नवागतुक को देख हँसकर सस्नेह उसने कहा—आओ बेटा।

उसके चरणो के पास जाकर बैठकर प्रणाम किया। ऐसा जान पड़ा कि आने के पहले ही ब्रह्मचारी ने मेरे बारे मे इनसे बातचीत कर रखी है। अभी तक नही देखा था, पास ही में एक शीर्णकाय वृद्ध हाथ में एक एकतारा लेकर बैठे हुए हैं, सन्त के समान यही गायक हैं। आदर-सत्कार में कमी नहीं हुई, अनेक तीर्थों के बारे में बातचीत होने लगी। सन्यासिनी नारायण गिरि माई ने कैलाश जाने के लिए परामर्श दिया, आषाढ़ मास ही कैलाश जाने के लिए उपयुक्त समय है, इस बार के सुयोग्य को हाथ से न जाने दिया जाय। विनय और भक्ति के साथ उनकी वाणी सुनता जा रहा था। घर के भीतर माल-असबाब के रूप मे ये ही चीजें थीं—रुद्राक्ष की कई मालाएँ, दो शख, लकड़ी के कई कटोरे, चार-पाँच कम्बल, पत्थर के कई बर्तन, कई ताम्रपात्र और फूल, मोटी-मोटी तीन किताबें और आग रखने का एक ठीकरा। माईजी (संन्यासिनी जी) के साथ खूब बातचीत होने लगी, सभी ने भाग लिया, माईजी के लिए तो सभी बेटा-बेटी थे—बहुत अच्छा मालूम हुआ। प्रकाश टिमटिमा रहा है, दरवाजे के पास आकाश से चाँदनी की एक झलक आ पड़ी है, माईजी अपनी मनोरम लालित्यपूर्ण हिन्दी और उर्दू भाषा मे अपने बहु-तीर्थ-भ्रमण की, अभिज्ञता की कथा कहने लगीं। कहाँ किस नदी के किनारे हिंस्र जंगली जानवर विचरते हैं, किस मरुभूमि मे से अपरिचित दुर्लभ-पथ कहाँ गया है, किस अनजान पर्वत-चोटी के तुषाराच्छन्न-पथ मे झब्बू और घोड़े की पीठ पर सवार होकर उनको कभी कैलाश जाना पड़ा था, ये सब बातें उन्होने अपनी

रहस्यमय और चमत्कारपूर्ण कहानी में कहीं। बात करते-करते एक समय वह भीतर की ओर ताककर बोलीं—चिलम बना दो रग्गी, ए सुना ?

भीतर से आवाज़ आई 'देथे माई !' और उसी के दो मिनट बाद दो तरुणी संन्यासिनियाँ धीरे-धीरे बाहर आईं। पहली माई के पास आकर बैठ गई और दूसरी पीतल से मढ़ी एक बड़ी पतली चिलम को तैयार कर माईजी के हाथ मे देकर दूसरी के पास जाकर बैठ गई। भीतर की आवहवा थोड़ी देर के लिए न जाने कैसे बदल-सी गई। पहले ही मन मे यह विचार उत्पन्न हुआ कि ये दोनो फूल एक ही टहनी के हैं। सिर पर जटाओ की लम्बी वेणी, मुख मे सयम की एक मिश्र दीप्ति और कठोरता, देह बलिष्ठ और दीर्घाकार, वस्त्र गेरुए रंग में रँगे और चारो चक्षुओ मे निर्विकार और निःस्पृह शून्य दृष्टि। उनकी ओर एक बार ताक कर ब्रह्मचारी ने दियासलाई जलाई, माईजी ने चिलम मे ज़ोर का एक कश लिया। हाँ, जोर से ही लिया। जिस समय धुँआ छोड़ा तो कुटी के भीतर उस समय अन्धकार हो गया। सबके हाथो मे चिलम एक बार घूम कर सोनी और रज्जी के हाथो में पहुँच गई। उनका अकुण्ठित धूम्रपान देखकर मै चकित हो गया। इस समय वृद्ध के गाने की बारी थी। एकतारा को ठीककर उन्होने धीरे-धीरे कंठ की आवाज़ उठाई, गाना तो उनका चमत्कारपूर्ण था। मुग्ध श्रोताओ का दल चुपचाप कान लगाकर बैठा रहा, केवल बीच-बीच मे चिलम एक हाथ से दूसरे हाथ मे जाने लगी। किन्तु समस्त वातावरण मे एक विस्मय निहित था। यह मानो एक कल्पित रूप-कथा थी। हम नवागत विदेशी थे, वृद्ध गायक भी सन्तवत नवीन परिचित थे, सामने यही ममतामयी आश्रयदात्री थी, उसके दोनो ओर लक्ष्मी और सरस्वती इन तीनो नारियो के घर-द्वार उनकी जीवन-यात्रा, उनका आचार-व्यवहार, कहाँ से वे आई हैं, ये कौन हैं और क्या हैं, इनके जीवन का चरम लक्ष्य क्या है, इस प्रकार की नाना समस्याओ मे मैं उलझा रहा। फिर भी आज उनकी कहानी लिखने में पूरी सच्चाई से स्वीकार करूँगा कि उस ज्योत्स्नामयी सुन्दर रात्रि मे उस रहस्यमय क्षुद्र कुटी के स्वल्पालोकित परिवेष्टन के बीच मे संन्यास जीवन के एक अपूर्व संयम और उसकी श्री ने सबके मुखो को निर्मल और उदासीन कर रखा था, अत्यन्त सहज-सरल सौजन्य और उदासीनता लेकर हम सभी दो व्याघ्रचर्मों के ऊपर बिलकुल पास-पास बैठे थे। उस दिन भी परिचय प्राप्त नहीं किया, आज तो हम अज्ञात हैं—

वे दो तरुणियाँ कौन है, माईजी से उनका क्या संबध है, उनका रास्ता कहाँ है, इस कुटी और इस आश्रम को भी तो वे छोड़कर शीघ्र चली जावेंगी, किन्तु कहाँ ? जीवन उनका केवल शून्य है ? केवल एकान्त लक्ष्यहीन है ? उनकी समस्त जीवन-व्यापी पथ-यात्रा की परम सार्थकता क्या है ?

गाना बन्द हो जाने पर माईजी को प्रणाम कर, बोझिल मन से विदा ली। हाँ, यह स्वीकार करने मे लज्जा नही कि मेरा क्षुद्र मन कौतूहल से भर उठा। केवल कौतूहल से ही, चन्द्रिका-प्रकाशित निस्तब्ध रात्रि के चरणो के पास खड़ा परिश्रान्त और पंगु पथिक मै—मैं क्या शपथ लेकर कह सकता हूँ कि मेरे मन मे केवल कौतूहल था, वेदना बिन्दु मात्र भी नहीं थी ? मूढ़ विपथगामी संन्यासी मैं, मैं भी यह जानता हूँ कि जीवन की व्यर्थता का रूप कैसा होता है ! सुख, ऐश्वर्य, आनन्द, संभोग, रस-पिपासा—'जीवन अनित्य है' यह कहकर ही तो इनका इतना प्रयोजन है, इतना प्रलोभन है ! समस्त जीवन लगाकर कठिन वैराग्य और भयावह शून्यता को प्रकाशित कर रही हो, तुम नारी हो, तुम विश्वसृष्टि के अनन्त स्रोत को प्रतिहत कर रही हो, प्रकृति के नियम का अपमान कर रही हो, ध्वस की निष्ठुरता को ससार मे लाई हो, रूप और सौन्दर्य का गला दबाकर उनकी हत्या कर रही हो !

एक हाथ में लाठी लेकर और दूसरे हाथ से ब्रह्मचारी के कन्धे का सहारा लेकर, पॉव घसीटते-घसीटते ऊपर उठा। ब्रह्मचारी मुख की ओर देखकर बोलने लगा—आपको यह क्या हो गया है दादा, आपको न लाना ही ठीक था, यह मैंने नही सोचा।

दूसरे दिन फिर कठिन पैदल-यात्रा। ब्रह्मचारी साधारण गति से चल रहा है, अघोर बाबू आगे जा रहे हैं, सास और बहू कष्ट से चल रही हैं। बन्धुत्व एवं आत्मीयता कुछ घनिष्ट हो गये हैं। अघोर बाबू को खुशी हो रही है, बहू ने बड़ी बहिन के समान व्यवहार करना प्रारम्भ किया है। उनकी आँखो और मुख मे सस्नेह हँसी थी, बातचीत में आन्तरिकता, दोनो हाथो मे सहोदर की सेवा और सुख-दुख का ध्यान। उनको साथ में पाकर कोई भी यात्री अपना सौभाग्य समझेगा। छतोली और मठचट्टी पार करने के बाद दोपहर की धूप में थके हुए हम रामपुर चट्टी पहुँचे।

किन्तु एकाएक विपत्ति सामने आ खड़ी हुई। सास के पाँवो मे एक बड़ा छाला पड़ गया। चलने मे उसको भारी कष्ट होने लगा। सभी

अत्यन्त दुःखी हुए। साथ ही और एक घटना घटी। ब्रह्मचारी और अघोर बाबू नीचे खड़े होकर बात करते-करते एकाएक गरम से हो उठे। वह इस मुआहसे में ही अघोर बाबू ब्रह्मचारी के प्रति व्यक्तिगत आक्षेप कर बैठे। यही न कि ब्रह्मचारी आलसी और आरामप्रिय है, खाने-पीने के समय के अतिरिक्त और समय वह नहीं दिखाई देता। मालूम होता है कि इससे ब्रह्मचारी के आत्मसम्मान को ठेस लगी, क्षुब्ध होकर वह बोला—महाशय, मै किसी की परवाह नहीं करता, यदि खाने को देते हो तो उसका यह मतलब नहीं कि आप मेरा अपमान करे।

अघोर बाबू कह उठे—आपके समान मनुष्यो को मै जानता हूँ।

अतएव ब्रह्मचारी चल देने को उद्यत हुआ। भगवान मे पूर्ण विश्वास होने से दिन कट ही जावेंगे—यह कहकर उसने चलने की तैयारी शुरू कर दीं। मुझको भी चला जाना होगा—पहिले तो इतना ही रास्ता रोज तय करने से मेरा काम नहीं चल सकता, दूसरे ब्रह्मचारी को छोड देना भी कठिन है। भोजन करीब तैयार कर चुका था, किन्तु ब्रह्मचारी आज खाने को राजी नहीं हुआ, नीचे दुकानवाले से आटा लेकर और जल मे घोलकर उसे खाकर वह बोला—मैं यहाँ इन्तजार कर रहा हूँ, आप चले आइये। नही तो चला जाऊँ दादा, क्या बोलते है ?

जान पड़ा कि वह एक क्षण भी यहाँ रहना नहीं चाहता, क्रोध से वह काँप रहा था। मैंने कहा जो सुविधा हो करो।

तेज धूप से तपता हुआ वह रूखा दिन आज भी मेरी आँखों में चमक उठता है। भोजन करने के बाद निरुपाय होकर विदा लेने के लिए गया। अघोर बाबू दुःखित होकर बोले—आपके साथ मे होने से हमे खुशी होती, वह जाता है तो जाने दीजिये, हाँ यह जरूर है कि आपको जल्दी जाना है, क्या करूँ बोलिये, इन्ही की वजह से मुझको इतना आहिस्ते-आहिस्ते .

सास-बहू के पास विदा लेने गया। थोड़ा भीतर जाकर देखता हूँ कि मा और लड़की भात लेकर सिर्फ बैठी ही हैं, किन्तु शुरू हुआ नहीं है। लड़की ने कहा—आप चले जा रहे हैं इसलिए मा की आँखो से आँसू टपक रहे हैं।

'क्यों ?'

'क्यो ?' कहकर उसने भी मुँह उठाकर देखा पर उसकी आँखों की ओर नहीं देखा जा सकता था। मैं बोला—क्या करूँ, बतलाइये

तो, जाना तो मुझको जल्दी है ही, शायद फिर कभी आपके साथ भेंट हो ..'

जान पड़ा कि बहू की आँखें अपने को अधिक न रोक सकीं, वे भी डबडबा आईं, रुद्ध कण्ठ से बोलीं—मेरा केवल एक छोटा भाई था, वह भी आपकी ही तरह था वह अब नही है! मा, लड़के के साथ तुम बातचीत करो।'

मा ने मुख उठाकर देखा। मैं बोला—अपना पता ही बतला दीजिए, यदि स्वदेश लौटा तो कभी .

'ठिकाना तो बतलाने का उपाय नही है भाई।'

विस्मित होकर मैंने पूछा—क्यो ?

अस्फुट स्वर मे मा बोली—खैर जो भी हो, पता तू ही बतला राधा-रानी, हम मा-बहिन जितनी भी अयोग्य हो!

नाटकीय प्रदर्शन के लिए मेरे पास समय नही था। 'अच्छा, तब आप बैठिये।' कहकर मैं झुका और नमस्कार करने ही को था कि अघोर बाबू की स्त्री ने हाथ पकड़ लिया। बोली—नहीं बोल सक रही हूँ भाई, नारियों के अपमान की कथा कहने को मुँह खुलता ही नहीं, तब भी तुमसे नहीं छिपाऊँगी, नही तो बद्रीनाथ-यात्रा मेरे लिए मिथ्या होगी।

हम सभी ने परस्पर एक दूसरे के मुख की ओर एक बार देखा। लड़की और माता ने माथा झुका लिया, और उसी तरह नतमस्तक होकर ही अघोर बाबू की स्त्री ने भरे गले से कहा—मैं तुम्हारी बड़ी बहिन हूँ, किन्तु मै नरक की कीट हूँ। मैं मैं वेश्या!

दोनो कान झन-झन करने लगे। बोला—क्या कहती हो!

कोई उत्तर नहीं, और उत्तर सुनने से पहले ही घर छोड़कर पत्थरों की सीढ़ियो को पार कर नीचे उतरकर किस तरह मैं भागा, उसका खयाल कर आज भी आश्चर्य होता है। मै नीति का ज्ञाता नही हूँ, वेश्या को वेश्या समझ कर ही मै नही चौंक पड़ता, साहित्यिक की उपयोगी उदारता मे भी मै किसी से कम नहीं हूँ, किन्तु इतना बड़ा आकस्मिक आघात—मेरे समस्त जीवन के ऊपर मानो किसी ने सपाक से एक जोर का चाबुक मारा! लँगड़ा पाँव, भग्न देह, पीठ पर बोझा, सिर के ऊपर सूर्य की अग्नि-वृष्टि, पत्थर व कंकड़ो से भरा ऊँचा-नीचा रास्ता, गले के भीतर मरुभूमि, तब भी मील के बाद मील चल रहा हूँ। ब्रह्मचारी कहाँ है, कहीं उसका चिह्न भी नही है! उस दिन क्यो भागा, निश्वास क्यों बन्द हो गया, यह आज भी मेरे लिए आश्चर्य की बात है। भागने की

भरपूर चेष्टा की। ऐसा मालूम पड़ा कि पृथ्वी के प्रकाश-वायु-विहीन कारागार में मै बन्दी हूँ !

झोला-झंझट उतार कर एक स्थान पर बैठ गया। किन्तु बैठने की शक्ति भी और नहीं थी, देह फैलाकर सो गया। आह, मानो अब उठना नही है, सब दुःखों के अवसान आ जा, ओ प्रशान्त मृत्यु ! छाया नहीं, मुख के ऊपर कड़ी धूप पड़ने लगी ; जल नहीं, हृदय हा-हाकार करने लगा। किन्तु यह कैसी अशान्ति कैसी चञ्चलता ! दुर्बल चित्त आज की घटना को स्वीकार करना क्यों नहीं चाहता ? क्या यह सत्य है कि श्रद्धा और सम्मान से जिसकी पूजा की, वह मूर्ति आज चूर्ण-विचूर्ण होकर धूल मे मिट रही है ? हे सत्यनारायण सूर्य, तुम तो जानते हो, उसमे कोई मलिनता नही है ! सेवा-सुश्रुषा, स्नेह, दाक्षिण्य और व्यवहार मे वह तो किसी सम्भ्रान्त भद्र महिला से कम नहीं है, तब भी वह पतिता क्यो ? उसमें कोई छलना नहीं, मोह जाल नहीं, वासना का कोई अभद्र इगित नहीं—वह तो संसार में किसी से हीन नही है, अनुपयुक्त नहीं है ! हे सूर्यदेव, तुम बतला दो ! तुम आज बतला दो, राधारानी क्या वेश्या है ?

तीसरे पहर की धूप म्लान हो आई। सोये हुए ही, बहुत बेचैनी से लोटते-पोटते एक बार क़ै की। तब भी, एक बार धूल व बालू में बैठे-बैठे, आँखो के आँसुओं में किम्भूतकिमाकार चेहरा लेकर चलना प्रारम्भ किया। अगस्त्य मुनि का मन्दिर और सौरी चट्टी पार हो गई। धीरे-धीरे सन्ध्या घनी हो आई, रास्ते मे और कोई साथी नही दिखाई दिया। आकाश मे चन्द्रमा दिखाई देना चाहिए था, किन्तु देखते-देखते मेघ घिर आये और नमीभरी हवा बहने लगी। मन मे आशा है कि चन्द्रापुरी चट्टी मे ठीक आज पहुँच जाऊँगा। शरीर दुर्बल है, हवा के साथ हिल-डुल रहा है। चारो ओर से अन्धकार घना हो गया, नींद के प्रभाव मे मानो रास्ता चल रहा हूँ। पथ की रेखा कुछ दूर तक दिखाई दे रही है, उसके बाद सब कुछ अदृश्य हो गया है। ब्रह्मचारी कहाँ है ? अब और पर्याप्त साहस नहीं होता, ऊपर मेघाच्छन्न आकाश मे चन्द्रलोक बुझ गया है, इतने अन्धकार मे किसी दिन नही चला, बाईं ओर नीचे वन-वेष्टित नदी कल-कल करती बह रही है, दक्षिण में और सिर के ऊपर पहाड़ के बाद पहाड़ अरण्य क अन्धकार से घिरे हुए हैं—शरीर इस बार काँप उठा। अपने पाँवो के शब्द से ही बार-बार निर्जन मे चकित हो उठता है। लाठी के ऊपर ज़ोर देकर साहस नहीं पा

रहा हूँ। भय से कान के भीतर झनझनाहट होने लगी। पाँव काँप उठे। यह क्या, यह कहाँ? नदी का नष्ट किया हुआ पथ खो गया! मन्दाकिनी और चन्द्रा नदियो का संगम, किन्तु किस दिशा को जाऊँ? भयकर गर्जन से हू-हू करती हुई अतल और विस्तृत नदी बहती चली जा रही है, देखते-देखते पथ का चिह्न भी अदृश्य हो गया। ऐसा बोध हुआ कि मुख से एक शब्द निकल गया। मुख मानो किसी दूसरे का हो। शरीर काँप रहा है, देह का रक्त भय से क्षण-क्षण में कोलाहल कर उठता है, गला सूख कर काठ हो गया है, दोनो घुटनो मे अब कोई शक्ति नहीं रह गई है—नितान्त दस वर्ष के बालक की भाँति निरुपाय होकर इस पथ के किनारे खड़े रहते-रहते आँसुओ से मेरी दृष्टि म्लान हो गई। इस प्रकार हिंसक जतुओ से भरे अरण्य और नदी के गर्भ मे असहाय रूप से मरने की मेरी कभी इच्छा नही थी। विपत्ति में पड़कर भगवान को पुकारने की बात भी मैं भूल-सा गया, उसी तरह भूल गया जीवन की तुच्छता की बात।

वास्तव में जिस दिन मौत आती है उस दिन हम यह देखते हैं कि जीवन को हम कितनी तरफ से प्रगाढ़ आलिंगन में बाँधे हुए हैं। हाय रे संन्यास, हाय रे निष्फल वैराग्य!

'कौन है?'

हठात भय से चौंककर मैं थर-थर काँप उठा। एकाएक किसी की आवाज़ सुनकर हृदय धक-धक करने लगा। एक छायामूर्ति चुपचाप कब से पास में आकर खड़ी हो गई है, लाठी को इच्छानुसार चलाना चाहा, लेकिन हाथ की लाठी शिथिल हो गई। ज़ोर-ज़ोर से साँस चलने की आवाज़ सुनकर यह धारणा हुई कि यह छायामूर्ति मनुष्य मूर्ति है। कम्पित कण्ठ से बोला—तुम कौन हो?

'मैं ज़नाना!'

स्त्री! अन्धकार में उसके मुख के पास जाकर देखा। धीरे-धीरे लाठी के ऊपर ज़ोर आया, सीधा होकर खड़ा हुआ। कौन कहता है मैं 'नर्वस' हूँ! जहाँ तक मै समझ पाया, लड़की पहाड़ी थी, उम्र अधिक नहीं थी, गले में उसके कई रुद्राक्ष की मालाएँ थीं, सिर के ऊपर बालो के ऊपर एक बड़ा पर था, सन्तो की भाँति गेरुआ वस्त्र पहिने थी, दोनो हाथ में फूल और रुद्राक्ष के गहने थे, दायें हाथ में कमण्डल और बायें हाथ में एक शिंगा था। नंगे पाँव। चकित और चचल लड़की।

'क्या देखता है, साधुजी ?'

'तुम जनाना हो ?'

'जी। यहाँ तुम क्यों खड़ा हुआ है ? कहाँ जाओगे ?'

'चन्द्रापुरी जाना है, रास्ता छूट गया।'

'अच्छा, परदेशी ! आओ मेरी साथ, बतलाते हैं।' यह कहकर भैरवी आगे चलने लगी। किन्तु वह भी पथ नही था, मैंने देखा कि एक लीलायितभगी से नदी की विच्छिन्न शाखा को पार कर जल की ओर वह उतरने लगी। आश्चर्य, मानो उसके लिए कोई बाधा-विपत्ति नही है, मानो उसके लिए यह पथ घर के आँगन की तरह ही परिचित है, मुड़ती-झुकती, हिलती-डुलती, हँसती-नाचती आनन्द से वह उतरने लगी। अत्यन्त कष्ट से चुपचाप, सतर्कता से उसका अनुसरण कर नीचे उतरने लगा। बहुत दूर तक उतरने के बाद शेष सारी नदी को ही वह हठात उछलकर पार कर गई—उसके भीतर मानो प्रचड रक्तधारा थी प्राणों की बाढ़ थी, नदी की क्रीड़ा थी ! उसको लगे तीन मिनट और मैं उतरा दस मिनट मे। नदी से उतर कर सतर्कता से-दोनो जने चलकर जल पार कर इस पार आये, वह आगे-आगे और मै पीछे-पीछे। पास ही मे एक झरना नीचे वह रहा था, उसके ऊपर मुझे उठाकर उसने चन्द्रापुरी का पथ दिखाकर विदा चाही। विदा तो उसको देनी ही थी, किन्तु हठात इस क्षण मानो मुझको चेत-सा हुआ। झरने के किनारे खड़ी इस अकस्मात आविर्भूत कपाल-कुण्डला की ओर देखकर बोला—तुम्हारा घर कहाँ ?

'बहुत दूर यहाँ से। चलते हैं—जाओ तुम, आराम करो।' कहते-कहते ही वह नदी के प्रस्तर-पथ पर जल्दी-जल्दी चलने लगी। चारों ओर घनान्धकार काले रग की पर्वत-श्रेणियाँ, उन्ही के भयंकर गह्वर से उन्मादिनी चन्द्रा का प्रवाह अन्ध वेग से छूटता आ रहा है, उसी नदी के द्वार की ओर वह रहस्यमयी लड़की, कुछ दूर जाकर, रात्रि के अञ्चल के नीचे अदृश्य हो गई। उसका वास-स्थान कहाँ है, कितनी दूर, किस गहन-गम्भीर स्थान मे, यह कौन जानता है ? निर्वाक स्तम्भित दृष्टि से केवल उस दिशा की ओर देखता रहा। वह विचित्र घटना भी आज खुद मेरे लिए एक स्वप्न-सी है।

चन्द्रापुरी में पहुँच कर गोपालदा और ब्रह्मचारी को फिर पाया। दीर्घ विरह के बाद मिलन। बच गया। मेरा सब चला जाय लेकिन गोपालदा और ब्रह्मचारी को नही छोड़ सकता ! आहार के बाद गाँजे

के आसरे बैठे हुए और लोगो को यह घटना सुनाई। किन्तु इससे एक और क्षुद्र नाटक की सृष्टि हुई। अब तक मै नास्तिक और अधार्मिक करार दिया जाकर उपेक्षित और परित्यक्त हो गया था। इस कहानी को सुनकर हठात सब बूढ़ियाँ बोल उठी—कौन बाबा, मनुष्य के छद्म वेष मे कौन हो तुम बाबा? हम पापी हैं, अधम हैं, बाबा तुम्ही ने दर्शन पाये हैं उसी मा भगवती के! किस दिशा की ओर वह गई, किस पथ पर, तुमने उसे पकड़ क्यो नही लिया बाबा, उसके चरणो की धूल क्यो नहीं ली? अहा, तुम ब्राह्मण, धार्मिक, तुम्हारे समान महापुरुष—हमारे अपराधो की ओर ध्यान न देना बाबा, तुम कौन हो यह हम इतने दिनो तक

हँसी रोककर तथा आँख मूँद कर बैठा था। इस बार दोनो हाथ बढ़ाकर, अभयदान देकर देवजनोचित कठ से बोला—सम्भवामि युगे युगे!

चारु की मा ने चुपचाप आकर पाँवो की धूल माथे पर लगा ली।

कही मैदान और कही जगल के बीच से चलकर भीरी चट्टी पार हो गई। रुद्रप्रयाग से अलकानन्दा को विदा देकर मन्दाकिनी को पकड़ा। मन्दाकिनी के उस पार भीमसेन और बलराम के मन्दिर पड़े थे उसके बाद आई कुण्ड चट्टी। यहाँ से केदारनाथ का बरफ दृष्टिगोचर हुआ। तुषार-किरीट हिमालय, सूर्य किरण-स्नात, दुग्ध-शुभ्र पर्वतमाला, वर्णों की उज्ज्वलता का रोमांचकर, नयनाभिराम रूप। उसके बाद ही फिर चढाई का पथ, वही अति कष्टदायक पथ-अतिक्रमण, चींटी की तरह मन्दगति। कुछ कदम आगे चलना, फिर थोड़ा खड़ा होना, किसी अर्धचेतन यात्री के मुँह मे थोड़ा जल डालना, शायद खुद भी थोड़ा-सा पीना, फिर कुछ दूर आगे चलना। इस तरह से आ पहुँचे गुप्तकाशी की धर्मशाला मे। छोटा एक शहर। करीब पन्द्रह-बीस धर्मशालाएँ, कई दुकाने, विश्वेश्वर का प्राचीन मन्दिर, दूर एक डाकघर, सामने तुषार से ढका पर्वत। आकाश मेघाच्छन्न, कही-कही थोड़ा कुहरा, नीचे पर्वत के पठार पर चित्रपट की भाँति क्षुद्र एक-एक पहाड़ी गाँव, कहीं-कही सामान्य रूप से आबाद। धर्मशालाएँ काफी सजी हुई और कलापूर्ण। इतने दिनो बाद हमे जाड़े की कँपकपी लगी। इस बार शीत के दरवाजे मे प्रवेश किया है, वसन्तकाल समाप्त हो गया है, बरफ नजदीक है। यहाँ गोमुखी धारा तथा मणिकर्णिका कुण्ड मे स्नान और गुप्तदान का महात्म्य है। पथ के ऊपर से गुप्तकाशी का रूप सुन्दर

दिखाई देता है। दूर उस पार उखीमठ शहर भव्य चित्र की तरह दिखाई देता है। जाडे के दिनो मे यह सारा पथ और शहर वरफ से ढके रहते हैं, मनुष्य और जानवर सब नीचे की ओर चले जाते हैं।

केदारनाथ पहुँचने के लिए हम सब व्यग्र हैं। परस्पर वातचीत हो रही है कि यात्रियो के धैर्य और उसकी शक्ति की अग्नि-परीक्षा नजदीक ही है, इस समय से सबको सजग रहना चाहिये। जो केदारनाथ का दर्शन नहीं करना चाहते, वे इस समय मन्दाकिनी पार होकर उखीमठ से वद्रीनाथ की ओर जा सकते हैं, इसके वाद सिर पटकने से भी कोई उपाय नहीं। सामने भीषण चढ़ाई, प्राणघाती खतरनाक रास्ता, मँहगी खाने-पीने की सामग्री, वर्फीली हवा, प्रकृति का भयावह रूप—अतएव जो दुर्वल है, जो डरपोक है, जिनको धैर्य कम है, प्राणो की ममता जिनको इस समय महा सकोच मे डाल रही है—वे इस वक्त उखीमठ की ओर चले जायँ। कई आदमियो को चलते हुए भी देखा। और एक असुविधा है, गुप्तकाशी से प्रायः तीस मील रास्ता केदारनाथ तक जाकर और फिर सतासी मील एक ही रास्ते पर फिरकर आना होता है, अर्थात् उखीमठ न जाने से वद्रीनाथ नहीं पहुँचा जा सकता। झूठमूठ इस सतासी मील पथ को पार करना वहुत कष्टप्रद मालूम होता है। आज तक हम करीव एक सौ वीस मील चल चुके थे, चलने में हमें कष्ट नही, किन्तु चढ़ाई-उतराईवाले पहाड़ी रास्ते मे एक मील चलना सौगुना हो उठता है। कुछ भी हो, वेला रहते ही हमने गुप्तकाशी से यात्रा की। कुछ दूर जाकर डाकघर देखने से मन एक वार उछल पड़ा, किन्तु किसको पत्र लिखूँ? मन के भीतर सभी अतल तल में चले गये हैं। जाने दो—जय केदारनाथ की जय! एक-दो मील आकर नलाश्रम चट्टी मे पहुँचा। यहाँ चट्टीवाले के पास माल असवाव की रसीद लेकर और उसको जमाकर, केदारनाथ की ओर जाने की व्यवस्था है, लौटने के समय यात्री अपना माल-असवाव वापस लेकर उखीमठ की ओर जाते हैं। झोला रखकर जाने का सुयोग पाकर महा विपत्ति से वचा, सारे रास्ते मे इस झोले और कम्वल ने मुझे भारी तकलीफ दी है।

रसीद तो ली, किन्तु सौभाग्य से चट्टीवाला यदि माल-असबाब वापस न दे, तो मै वच जाऊँ, और मै उसका मुख देखना नहीं चाहता! नलाश्रम से एक मील दूर भेतादेवी चट्टी है, यहाँ एक कुण्ड और प्राचीन मन्दिर हैं। उसके वाद ही फिर चढ़ाई है, चढाई देखते ही सिसकियाँ आने लगती है, हृदय का रक्त सूख जाता है। पूरी दो मील की चढ़ाई

के बाद बुङ्गमला चट्टी मिली। सुनने मे आया कि यहाँ भगवती के मन्दिर में अनेक महात्माओ को देखा जाता है। दिखाई देते हो, इससे क्या, महात्माओ मे मेरी और रुचि नही है। यहॉ काठ के वर्तन सस्ते बिकते हैं। बुङ्गमला के बाद फिर उतराई है, चढ़ाई और उतराई का मतलब है एक पहाड़ को पार करना। यह कहा जाता है कि सब मिलाकर जब तक लाख पहाड़ पार नही हो जायँ, बद्रीनाथ नही पहुँचा जा सकता। दो मील चलने पर मैखडा मिला। यहॉ महिषमर्दिनी देवी का मन्दिर है और नदी के ऊपर रस्सी के भूले का पुल है। उत्तर दिशा की ओर पथ पर मुडते ही दूर हिम-राज्य दिखाई पड़ता है। धूप मे इसका अपूर्व रूप दिखाई देता है। ऊपर उज्ज्वल नील आकाश, उसके नीचे धवल हिम-रेखा, और उसके नीचे ही हरी अरण्यमय पहाडियॉ—पीछे की पटभूमि मे तीन वर्णों का विस्मयकर समावेश। हृदय मे एक ऐसा आनन्द-सा गूॅज उठता है जिसकी पहले कभी अनुभूति नही हुई थी। और एक मील आने पर फाटा चट्टी मिली। यहॉ एक सरकारी धर्म-शाला और पनचक्की हैं। देखते-देखते सध्या का ॲधियारा हो आया। आज यहॉ ही विश्राम होगा। किन्तु आश्चर्य, ब्रह्मचारी आगे चला गया है, कल स ही वह मुझको पीछे छोडकर आगे जाने की चेष्टा कर रहा है, इसका कुछ तात्पर्य समझ मे नही आया, यहॉ से बदलपुर चट्टी साढ़े तीन मील के करीब है। रात्रि सन्निकट है, बदलपुर वह पहुँच पायेगा या नही, यह कौन कह सकता है। चिन्तित मन से गोपालदा और बूढ़ियो को लेकर चट्टी में चला आया। ब्रह्मचारी के मन मे मेरे लिए नाराजी क्यो पैदा हुई, समझ मे नही आया। गोपालदा के साथ भी उसकी अवश्य अधिक नही बनी। भगवान मे उसका पूर्ण विश्वास गोपालदा को मुग्ध नही कर पाया, किन्तु मैंने तो उसको अन्तरग स्वीकार कर लिया है।

दूसरे दिन प्रात·काल जब कि ॲधेरा ही था, यात्रा शुरू हुई। सर्दी होने से रास्ते मे चलने मे सुविधा हुई क्योकि सहज ही मे थकावट नहीं होती। पहले तो शीत मे थोडा कष्ट होता है उसके बाद शरीर थोडा गरम होने से अच्छा लगता है। लॅगड़ाते-लॅगड़ाते आगे-आगे ही चल रहा हूॅ। शून्य मन, ब्रह्मचारी के अभाव का खयाल बार-बार मन मे उठ रहा है, रास्ते मे हमउम्र साथी को छोड़ देना बहुत कष्टकर होता है। हमउम्र होने से दु:ख और आनन्द का अनुभव एक-सा होता है, इसलिए सहज ही मे हम एक दूसरे को समझ सकते हैं। इन दिनो, मन

कई स्थानो मे टूटा-फूटा है, कई स्थानो मे जुड़ा है। थोड़ा गलकर प्रवाहित हुआ है, थोड़ा जमकर पत्थर हुआ है। आवेग सूख गया है, भावुकता दब गई है, दुःख और आनन्द का चेहरा इस समय करीब एक-सा ही है। धीरे-धीरे प्रातःकाल का प्रकाश फूटा, आकाश मे प्रभात का निःशब्द समारोह प्रसारित हुआ, पर्वत-शिखर धूप की लालिमा मे चमकने लगे—हम चले रहे हैं मन्थर गति से। बदलपुर चट्टी मे आकर कुछ मिनट विश्राम लिया। विश्राम लेकर फिर अग्रसर हुए। ऐसा मालूम होता है कि रास्ता कुछ मैदान-सा है, पाँवो को उतना कष्टमय नहीं लग रहा है। हम सिर झुकाकर चल रहे हैं, किसी बात का खयाल नही, केवल चल रहे हैं, चलने के सिवा और हम लोगो का कोई काम नहीं। रास्ते की तरफ कुन्द की झाड़ियाँ,...वे हो तो क्या, चल पैदल चल। गौरीफल, दाड़िम और अखरोट के वन—अच्छे तो हैं, चल, पैदल चल। कही हू-हू शब्द स जल गिर रहा है, कहीं पहाड़ की देह से झरना फूट पड़ा है, फूटता रहे, हमें तो चलना है! चट्टी से एक पहाड़ी कुत्ता साथ-साथ आ रहा है, इसी तरह जैसे कि युधिष्ठिर के साथ छद्मरूपी धर्म कुत्ते के वेष मे चला था, कितनी दूर जाएगा यह कौन बतला सकता है। उस दिन हिसाब लगाकर मैंने यह मालूम किया कि एक कुत्ता आहार के लोभ मे करीब बीस मील तक रास्ते मे हमारे पीछे-पीछे चला। रास्ते मे बहुत से यात्रियो के साथ एक-एक कुत्ता दिखाई देता है। यह पथ महाप्रस्थान का ही पथ है, इसमे ज़रा भी सन्देह नहीं। चलते-चलते पहाड़ की एक खुली जगह मे आ पहुँचे। गोपालदा खडे-खड़े ही घोड़े की तरह हाँफ रहे थे, यात्राश्रम से उनकी दृष्टि धुँधली पड़ गई थी। उस विपुल अवकाश के समय शान्ति से खडे होने पर, उत्तर दिशा की ओर दूर-दूर तक दृष्टि गई। रास्ता अर्द्ध चन्द्राकार होकर मुड़ गया है। बहुत दूर जाने पर पथ दो भागो मे बँट जाता है। एक पगडण्डी के आकार मे ऊपर को उठ गया है और एक नीचे मन्दाकिनी की ओर चला गया है। कुछ ऐसा मालूम हुआ कि दोनो मार्गों के उस सयोग-स्थल पर एक छोटे से बिन्दु के समान ब्रह्मचारी मुड़ रहा है। पीठ पर हरा कम्बल झूल रहा है और मटमैले लाल रग के गेरुए वस्त्र दिखाई दे रहें हैं—ब्रह्मचारी को छोड़कर और कोई नही है!

दो बार ज़ोर से मैं चिल्लाया, हाथ से ठहर जाने का इशारा भी किया, किन्तु सब बेकार, उसके कान मे मेरी आवाज़ नहीं गई, वैसे ही वह नीचे के रास्ते की ओर चलने लगा। यदि दौड़कर उसे पकड़ने का

उपाय होता तो उसे रोक लेता, इस तरह से उसको निष्ठुर नहीं होने देता। मुझे छोड़कर उसके चरित्र मे से और कोई आनन्द नहीं पाता, मै उसको प्यार करने लगा हूँ।

करीव नौ बजे के समय हमने त्रियुगीनाथ की पगडडी का रास्ता पकड़ा। पथ की एक शाखा नीचे मन्दाकिनी के किनारे को चली गई है। पहले विशेष समझ मे नही आया, किन्तु करीव सौ-दो सौ गज चढ़ाई चढ़ने पर मैं और गोपालदा परस्पर एक दूसरे का मुँह ताकने लगे। पथ जिस प्रकार टेढ़ा-मेढ़ा और ऊँचा-नीचा है उसी प्रकार दुरारोह भी है। दोनो ओर घने जगल, कही-कहीं पत्र-पल्लवो के भीतर झरनो की झर-झर, गिरगिट की अविश्रान्त पुकार, छायामय निःशब्दता! दीवार पर जिस तरह छिपकली उठती है, उसी तरह उठ रहे हैं, चढ़ाई का पथ प्रायः सीने को अखरता है। रुकते हैं और फिर रेंगते हैं। यह तो तीर्थयात्रा नही, पूर्व-जन्म के पापो का दड है। मनुष्य के ऊपर यह है नियति का अन्याय, अत्याचार। एक जगह पर खड़ा होकर हठात झुँझला कर कह उठा—त्रियुगीनाथ नही आता तो क्या होता, किसने आने को कहा था? गोपालदा के सिवा और कोई पास मे नहीं था, चार-पाँच स्त्रियाँ पीछे थीं। वे बोलीं हँसी मे ही बोली—दिमाग खराव हो गया होगा, अब नहीं होगा। फिर चल पड़ा। पाँव नहीं फैला सकता, कमर मे दर्द है, सीना कुड़कुड़ा रहा है, इच्छा होती है कि इन सबका खून कर डालूँ—इन पुण्य-लोभियो, इन अन्धो और इन मूर्ख यात्रियो का। आह, आग की तरह गरम निश्वास; नाक, तालू तथा गला सब सूखकर काठ हो गये हैं, दाँत मींचकर भी मुख थरथरा रहा है, सिर के वालो के भीतर और देह मे जूँ कुलवुला रहे हैं, क्लान्त शरीर, मैले वस्त्र, लाठी को पकड़े-पकडे ही हाथ में फफोला हो गया है—अब नही सहा जा सकता, गला सूख गया है मृत्यु और कितनी दूर है?

पीड़ा जिस समय मनुष्य की अनुभूति की सीमा को पार कर जाती है, उस समय उसकी अवस्था कैसी होती है? वह कैसी होती है, उसको नहीं वतला सकता। सीढ़ी पारकर आकाश की ओर उठ रहा हूँ। आकाश छूने की और देरी नही! सोच रहा हूँ कि इससे भी भयकर क्या यत्रणा की कोई कहानी हो सकती है! नाखूनो के भीतर आलपीन घुसाने से मनुष्य कैसी यंत्रणा पाता है? आधा शरीर मट्टी में हो, शेप आधा वुलडाग नोच रहा हो। उस समय अपराधी किस प्रकार रोता है? शरीर की खाल खींचने पर मनुष्य कैसी आवाज़

करता है ? रण-क्षेत्र में बमो व तोपो से घायल सैनिक जिस समय काँटेदार तारो के घेरे में झूलते-झूलते चिल्लाता है उस समय उसको क्या होता है ?—बस, और यत्रणा नही होती ! जोर से चिल्लाकर एक बार हँस उठा। गोपालदा उस समय मुख ढँके बैठे हुए थे।

चार मील विशाल चढ़ाई इस तरह पार कर त्रियुगीनारायण पहुँचे। गाँव का नाम है रायना। गगोत्री होकर और एक पथ यहाँ आकर मिल गया है। मन्दिर के चारो ओर तो गाँव है। सर्द हवा गतिहीन हो गई। मक्खियो से वेहद परेशानी थी। भोजन पकाने की और सामर्थ्य थी नही। मन्दिर दर्शन करने को गया तो देखा कि भीतर अन्धकार है, मन्दिर मे एक बडे पत्थर के खपरे मे धूनी जल रही है। जल रही है त्रेता युग से— कभी भी नहीं बुझती। जाडे के दिनो मे आग मे लकड़ी रखकर पंडे नीचे चले आते हैं, ग्रीष्मकाल मे आकर मन्दिर के दरवाजे खोलकर देखते हैं कि राख से आग ढकी पड़ी है बस यही कथा प्रचलित है। यह कथा कहाँ तक सच अथवा झूठ है इसका निर्णय करने की रुचि भी नही थी, उत्साह भी नही था। जान पड़ा कि सारा महाभारत और रामायण—ये दो ग्रन्थ—चूर्ण-विचूर्ण होकर सारे भारत मे फैल गये हैं। भारत की सभ्यता और शिल्पकला धर्म और आचार, शास्त्र और दर्शन, साहित्य और विज्ञान, इन्ही दोनो महाकाव्यो को केन्द्रित कर वनाये गये हैं—इस वात मे कोई सन्देह नहीं है। मन्दिर का दर्शन कर दुकानदारो के पास से पूरी और तरकारी खरीद कर चट्टी मे आया। करीव तीन वजे होगे। इससे क्या, आज तो पादमेकम् न गच्छामि।

दूसरे दिन प्रातःकाल जाड़े मे सिकुड़कर त्रियुगीनाथ से जल्दी चले। उतराई से पाँवो की व्यथा वढ़ने लगी, वढ़ती है तो वढ़े, जल्दी से नीचे उतरकर चल पड़ा। सभी लोग जल-प्रवाह की तरह पहाड़ो पर ऊपर से नीचे उतर रहे हैं। उतराई मे सभी को थोड़ा आराम है, केवल मुझे ही दुःख है। आज गोपालदा मेरी कष्ट-कहानी को सुनने के लिए तैयार नहीं, मालूम हुआ कि उनका चलने का अभ्यास मुझसे अधिक है। आज व्यवस्था हुई है कि गौरीकुण्ड पहुँचकर मध्याह्न का भोजन किया जाय। मानो चलना ही मुख्य है, भोजन और शयन गौण हैं। दो मील नीचे रास्ता तय कर एक छोटा मन्दिर मिलता है, उसी के किनारे से मन्दाकिनी की ओर रास्ता नीचे चला है। सर्प के आकार की अत्यन्त सकीर्ण पथ-रेखा है, दोनो ओर पहाड़ी वन है। गाँव के कोई-कोई लड़के-लड़-

कियाँ पाई-पैसा की भिक्षा प्राप्त करने के लिए दौड़कर आये, बड़ी-बड़ी लड़कियाँ उनको पीछे से सिखा देती हैं, भिक्षावृत्ति इनका पेशा नही, विलास है। करीब एक मील पगडंडी रास्ता लुढ़कते-पुढ़कते उतरकर मन्दाकिनी का पुल मिला। रुद्रप्रयाग के बाद यही पहली नदी है, इसे पार कर फिर पहाड पर चढ़ना शुरू किया। मील का पत्थर देखा गया, यहाँ से केदारनाथ केवल करीव नौ मील है। पहाड़ पर चढ़ते-चढ़ते दिखाई देता है कि, पीछे की ओर से और एक तेज नदी है, नाम दूध-गगा है, यह मन्दाकिनी की ही शाखा है—आकर मन्दाकिनी से मिली है। हम दूध-गगा के किनारे ऊँचे पर्वतो की देह पर चल रहे हैं। करीब दस वजे का वक्त होगा, सर्द हवा चल रही है; आकाश सूर्य के प्रकाश से उज्वल है, हम पर्वतो के गहन जगलो के भीतर से चल रहे हैं। इस समय मेरी आगे चलने की पारी है, चढ़ाई मे पाँवो में तकलीफ कम मालूम देती है, एक-एक अग्रगामी यात्री को—पीछे छोड़कर आगे-आगे चल रहा हूँ। वन-जगलों के चक्कर मे, छाया-छाया में सभी भिन्न-भिन्न टुकडियो मे तटस्थ भाव से चल रहे हैं। सुना गया कि इस तरफ जानवरो का भय है।

प्रायः दोपहर की वेला तक पहुँच गया गौरीकुण्ड के ग्राम मे। गाँव की गोद में से ही मन्दाकिनी वहती है। नदी छोटी है किन्तु प्रचंड वेगवती है। जल वर्फ से भी ठण्ढा, अभी-अभी वर्फ से पिघला हुआ, स्नान करने का उपाय नहीं। रुद्रप्रयाग से ही हमारा नहाना वन्द हो गया है। गौरीकुण्ड मे, गौरी के मन्दिर के पास ही एक चट्टी में आ पहुँचा। सब कुछ प्राचीनता की साक्षी दे रहा है। केदारखंड मे लिखा हुआ है कि देवी पार्वती के मन्दाकिनी तट पर ऋतु-स्नान करने से इस स्थान का नाम गौरीतीर्थ हुआ है। जिसका नाम गौरीकुण्ड है उसका दर्शन मिला इस क्षण। एक वडा ऊष्ण जल-कुण्ड है। किसी अदृश्य पर्वत शिखर से एक गरम जल-धार फूटकर यहाँ नीचे उतर आई है। यात्री लोगो ने उसी गरम जल के पास वैठकर तर्पण किया। वास्तव में, इस शीत प्रधान देश में जल से धुँए का निकलना देखकर मन उल्लसित हो उठा। जल इतना गरम है कि उसके भीतर हाथ-पाँव नहीं रखे जा सकते। फिर भी कोई-कोई यात्री पुण्य के लोभ से अपनी वहादुरी दिखाने इस गरम जल में उतर कर मिनटों खड़े रहे। पुण्य सचय तो वे करेंगे ही।

इस वेला और विश्राम नही, सभी के शरीरो में उत्साह है, वक्त पर

रामवाड़ा पहुँचकर रात्रि मे विश्राम लिया जाय। कल प्रातःकाल चिर हिमाच्छादित, अनेक आशाओ और आकांक्षाओं, अनेक स्वप्नों और तपस्या की प्रतिमूर्ति केदारनाथ मन्दिर मे पहुँचना होगा। आज सारी रात्रि शक्ति की साधना करूँगा। बरफ स्पर्श करने मे अब और हमे देरी नहीं। सोचा था कि दुकान में आर्डर देकर पूरी लाकर और उन्हे खाकर रामवाड़ा की यात्रा करूँगा, इसी समय एक मस्त भ्रमणकारी दल कही से उड़ता हुआ आकर सबको भय-चकित कर खटाखट-धूमधाम करने लगा। कैसे दुःशील और शृङ्खलाहीन, किसी भी ओर भ्रू-क्षेप नही, जैसे युद्ध के घोड़े हो अथवा शिकारियो का दल हो। दरिद्र और पीड़ित यात्रियो की ओर उन्होने एक वार करुणा-पूर्ण दृष्टि स देखा, मनुष्य कहकर मानो हम पर्वाह ही नही करते। उनकी ओर देखकर सारा मन वितृष्णा से भर उठा। नदी, पर्वत, हिम और अरण्य के वीच मे उनके आधुनिक सभ्यता-सुलभ आचार-व्यवहार और पोपाक-परिच्छद सगत नही लगते थे, हैट-कोट, पैण्ट और बूट की उद्धता, भ्रमण का वैज्ञानिक साज-सरंजाम, सुसज्जित घोड़ा और सईस—सब मिलकर इस श्वेत जटाधारी निमीलित चक्षु महा-तपस्वी हिमाद्रि-देवता का मानो परिहास कर रहे हो।

इस धारणा को लिये ही चला जा रहा था, किन्तु हठात उनके मध्य एक व्यक्ति के साथ वातचीत हुई। केमरा ठीक करके उसने मेरा फोटो ले लिया। मै 'टिपीकल' (अजीब) तीर्थयात्री जो हूँ। फोटो लेनेवाला एक वंगाली युवक था, आँखो पर चश्मा था और भद्र और सम्भ्रान्त घर का लड़का था। नाम धीरेन्द्रनाथ साहा था। लखनऊ रेड-क्रास सोसाइटी के आप प्रधान सिनेमाटोग्राफर है। सरकारी स्वास्थ्य-विभाग के खरचे पर सदलबल हिमालय-भ्रमण को चले है। यही दल के नेता है। वातचीत करने पर जिस परिमाण मे आनन्द पाया, उसी परिमाण मे भूल भी दूर हुई। जनोपकारी कार्य के लिए ये लोग सब तकलीफें उठाकर इतनी दूर आये है। अन्त मे इन्होने केदार और बद्री-नाथ के यात्रा-पथ का फिल्म लिया। भारतवर्ष मे यह जातीय चल-चित्र अपने ढग का सर्व प्रथम है। इसमे हिमालय के मनोरम दृश्य एवं पौरा-णिक तीर्थ-माहात्म्य छोड़कर स्वास्थ्य-सम्बन्धी बहुत-सी विवेचना और उपदेश भी रहेगे। यात्रियो की सुख-सुविधा, रोग-भोग, दुःख और पीड़न, अकाल और मृत्यु—उनका प्रतिकार क्या है, इत्यादि वातें रहेगी। इस चल-चित्र को प्रतिवर्ष केदार-बदरी यात्रा के आरम्भ में हरिद्वार में

दिखाया जायगा। जनहित के लिए लखनऊ रेड-क्रॉस का यह विपुल उत्साह और उद्यम वास्तव मे प्रशंसा के योग्य है। धीरेन्द्रनाथ के साथ वातचीत कर प्रसन्नता प्राप्त हुई। मिष्टभाषी, सदालापी और चरित्र-वान युवक हैं। उन्हीं के उद्योग से और लखनऊ रेड-क्रास के सौजन्य से वाद में मैं केदार-वद्रीनाथ के आलोक-चित्रो को संग्रह कर सका। बाद में यह जानने का सुयोग मिला कि धीरेन्द्रनाथ ही एक मात्र ऐसे चित्र-संग्रहकर्ता हैं जो १४००० फीट की ऊँचाई से अलकानन्दा के चिर-हिमाच्छादित जन्म-स्थल के फोटो अपने जीवन को खतरे में डालकर भी वना लेने में समर्थ हुए हैं।

गौरीकुण्ड छोडकर आगे-आगे चला। वहुत सर्दी है। सारे पथ मे ही चढ़ाई है। लॅगड़ाते चलने मे भी और कष्ट नही, सव कुछ सह लिया है, आकाश मे कहीं-कही वादल घिरे हैं। थोड़ी देर पहले थोड़ी-थोड़ी वारिश हुई है। सर्द हवा वहने लगी है। वीच-वीच मे केदार से लौटते हुए शीत से दु:खी यात्रियो के दल मिल रहे हैं। परस्पर मिलते ही 'जय केदारनाथ' कहकर एक दूसरे का अभिवादन किया जाता है। सभी यथासाध्य गरम वस्त्रो से ढके हुए हैं। सभी यह कहकर जाते हैं—सॅभलकर चलो भाई, वहुत वरफ है, जान वचाके।

जितना आगे जाते हैं उतना ही भय, मानो एक आनेवाली विपत्ति दूर हमारी प्रतीक्षा कर रही है। नाना शंकाऍ और दुश्चिन्ताऍ, किन्तु चाल हमारी ढीली नही है, काफी तेज तथा सतर्क है। कहीं-कही रास्ता बहुत सॅकड़ा है, झुण्ड के झुण्ड वकरियों की पीठ पर खाने-पीने की सामग्री व जलाने के लिए लकड़ी के गट्ठे लेकर, एक के वाद एक पहाड़ी आदमी आ-जा रहे हैं, हर एक के साथ मे चल रहा है गृह-पालित एक वड़ा कुत्ता। रास्ते मे जगली जानवरो से वकरियो को वचाने के लिए एक वड़ा शिकारी कुत्ता ही काफी है।

हम चल रहे हैं वनयुक्त पर्वतीय पथ से। स्थान का नाम चीरवासा भैरव है। चेष्टा करने से हम आज ही केदारनाथ पहुॅच सकते हैं, किन्तु संध्या के पूर्व केदारनाथ का रास्ता विलकुल खतरे से खाली नहीं, आकाश मे भी घने मेघो के छा जाने से इस समय अन्धकार हो आया है, शायद वारिश के साथ-साथ वरफ या ओले भी गिरें, अतएव रामबाड़ा मे ही आज हमारा रात्रिवास होगा। हमारा परम-प्रिय साथी अमरसिंह इस सम्बन्ध में यथेष्ट सद्-विवेचन का परिचय देने लगा। करीव साढ़े चार वजे के समय हम रामवाड़ा चट्टी में चले आये, उस समय वारिश

हो रही थी। इतनी हवा और इतनी सर्दी है कि खुली जगह मे एक मिनट भी खड़ा नही रहा जा सकता। छाती को सर्दी चीरने-सी लगी है, शरीर मे काँटे की तरह चुभ रही है, जल्दी से कम्बल ओढ़कर बैठ गया। दाँत अकड़ गये है।

वृष्टि तो रुक गई किन्तु आसमान साफ नही हुआ। चट्टी की दीवाल और छत काँप रही है, बरफ की प्रचंड हवा बराबर सरसराती हुई बह रही है। गोपालदा चिलम भरकर भय से बराबर बाहर की ओर देखकर न मालूम क्या सोच रहे थे। इस समय कही से तूफान की भाँति एकाएक ब्रह्मचारी का आगमन हुआ। हठात उल्लास से मै प्राय: चिल्ला उठा। हँसते-हँसते वह बोला—केदारनाथ हो आया। और बाप रे, कितना खतरनाक मामला है। बरफ, बरफ और बरफ। खूब सावधानी से चलना जिससे तूफान के शिकार न बनो। यहाँ से इस समय चले जाने से जान बच सकती है।

'तुमने मुझको क्यो छोड़ दिया ब्रह्मचारी ?'

'साथ ही तो हूँ दादा, आगे चला हूँ, इसके बाद फिर बद्रीनाथ मे भेंट होगी। मुझे जल्दी जो है न, लौटकर वृन्दावन जाऊँगा।' यह कहकर वह धूम्रपान करने लगा। उसकी दृष्टि मे नवीन चंचलता थी, हृदय मे आशा थी, मानो उसने कहीं से साहस प्राप्त किया हो। इस बात को उससे पूछने मे लज्जा मालूम देती थी कि कौन उसके आहार का प्रबन्ध करता है, उसका नवीन बन्धु कौन है, मुझसे भी अधिक उसका अपना कौन है—किन्तु उसकी ओर देखकर चुप बैठा रहा। शायद केवल पन्द्रह दिन उसके साथ परिचय हुआ, किन्तु समय का परिमाण ही तो बड़ा नही है, वह मेरी नाड़ी-नाड़ी से बँध गया है; रास्ते में, दु:ख-सुख मे तथा आपत्ति-विपत्ति मे हमारा परिचय दृढ़ हुआ था, बन्धुत्व के प्रथम बन्धन मे ग्रन्थि के बाद ग्रन्थि पड़ती गई। धूम्रपान खत्म करने पर, झोला-कम्बल, लाठी और लोटा लेकर वह उठ बैठा और गोपालदा से हँसकर विदा लेता हुआ बोला—चलता हूँ दादा, समय पर गौरीकुण्ड पहुँचना होगा। ओम नमो नारायण !

उसकी ओर फिर दृष्टि न उठा सका, यदि उसकी ओर देखता तो वह शायद जान जाता कि प्रियजनों से बिछुड़ने के समय मेरी क्या दशा हो जाती है, मुझसे अधिक दुर्बल और क्षण-भंगुर संसार मे कोई नहीं है। केवल एक बार कहना चाहता था, 'मेरा अपराध क्या है ब्रह्मचारी, यह तुम नही बतला गये ?' किन्तु मुख से आवाज न निकली।

हाँ, वह इसी तरह, सभी का सदा से इसी तरह, परम अवज्ञा और अवहेलना के साथ त्याग करता आया है। कहीं कारण था और कहीं बिलकुल भी नहीं। यह भिक्षा माँगता है, कङ्गालपन दिखाता है, अत्यन्त अवांच्छनीय खुशामद करते हुए भी उसे देखा है, फिर भी उसमें मानो इस्पात की-सी दृढ़ता थी। मानव समाज के प्रति उसकी एक भयानक भृकुटी थी और था उसमे निगूढ अभिमान। यही उसका चरित्र, यही उसका सन्यास था। उसके चले जाने के बाद भी उसी प्रकार बैठा रहा, बैठा ही रहा, भीतर अनेक यात्री शीत से कॉपते हुए सी-सीकर रहे हैं, कोई-कोई आग जलाकर उसे घेरे बैठे हैं, किसी ने कम्पित कण्ठ से शुरू की है महाभारत की कथा—मै निर्वाक होकर गौरीकुण्ड के पथ की ओर ताकता हुआ रह गया। सामने शीत-जर्जर अँधेरी रात्रि नीचे उतर रही है, इस समय शायद मेघ और वृष्टि का अर्थ हिमपात का होना है, वह निष्ठुर कहाँ जाकर अदृश्य हो गया, यह कौन जानता है, जीवन मे किसी दिन फिर उसे नहीं देख पाऊँगा यही जानता हूँ—तब भी कङ्गाल की तरह मेरा मन दौड़ पड़ा है उसके पीछे-पीछे। वह दरिद्र और भिक्षा मॉगकर जीवन-निर्वाह करनेवाला है, यह समझकर मै उसे बराबर आहार और आश्रय देता आया हूँ, यह अहंकार अब मुझे नहीं है, मन में यह खयाल आया कि इतने दिनो मै ही उसके अधिकार मे था। मै उससे पराजित हो चुका हूँ, मैं उसके अधीन हूँ!

रात चट्टीवाले को चार आने देकर एक लिहाफ भाड़े पर लेकर ओढ़ा था, इसलिए सुबह नींद नहीं टूटी। नही टूटने की बात ही थी, क्योकि लिहाफ गरम था। आँख खोलकर देखता हूँ कि बूढे चूहे की तरह गोपालदा मेरे लिहाफ के भीतर घुस कर खों-खोकर खरोटे भर रहे हैं। अमरसिंह और कालीचरण की धमकियो से हम सब जल्दी उठ पडे। लिहाफ छोड़ते ही बाहर की सर्दी चाबुक-सा मारने लगी। जल्दी-जल्दी बॉधना-बटोरना सब ठीक कर जिस समय ही-ही करते-करते रास्ते मे आये, उस समय काफी वक्त हो चुका था।

आकाश में घने बादलो और कुहरे से प्राय: अन्धकार हो रहा था। सुनने में आया कि वर्ष में केवल किसी-किसी दिन इस राज्य में सूर्य-किरण दिखाई पड़ती है। सामने सफेद हिमाच्छादित पर्वतो के वक्षस्थल पर मेघ धीरे-धीरे तैरते हुए से चले जा रहे हैं। सर्दी से पॉव ठीक नही पड़ रहे हैं, उन्मत्तो की तरह अस्तव्यस्त रूप मे चल रहे हैं। दाँत के ऊपर दाँत दबाने से दाँती बँध जाती है। इच्छा होती है कि इधर-उधर दौड़

पड़ें। मुख और आँखों पर सुई की भाँति बर्फीली हवा चुभ रही है, लाठी नहीं सँभाली जा रही है। पगडंडीवाला पहाड़ी पथ, बहुत लम्बी चढ़ाई नहीं, भूल-भुलैये मे चलने की तरह घूम-घूमकर ऊपर उठ रहे हैं। सीने में काफी दम है, लेकिन पॉव थक गये हैं। थोड़ा खड़े हो जायें फिर चढ़ेंगे। आज मैं आगे-आगे चल रहा हूँ। व्यथा नहीं, थकावट नहीं, उत्साह-हीनता नहीं, पीछे का मार्ग कुहरे मे छिपा हुआ है, सामने हिमालय की अनन्त धूमिलता, रास्ते के किनारे-किनारे ही वर्फ के स्तूप बने हुए पडे हैं, झरने साबुन के फेन की तरह बह रहे हैं—आज मैं आगे-आगे। आज मेरे शरीर मे लौट आई है पुरातन शक्ति, बल, दुरन्त उद्दीपना तथा अपरिमेय प्राण-लीला। कहॉ खो गई है पीछे की पृथ्वी, कहाँ विलीन हो गया है पिछले जीवन का समाज-ससार और आत्मीय-जनों तथा बन्धुओ का दल—आज मै और विश्राम न लूॅगा, तुच्छ देह के अभाव-अभियोगों की ओर दृष्टि नहीं डालूॅगा, आज बाढ़ की तरह अप्रतिहत गति से दौड़ पड़ूॅगा। समस्त जीवन से इस बार मुक्ति पाई है; सब बन्धन खुल गये हैं; लोभ, मोह व स्वार्थ को सांसारिक पथ पर छोड़ आया हूँ; पाप-पुण्य, दु:ख और आनन्द का कोई प्रश्न नही। इस समय सरिता दौड़ पड़ी है महासागर की ओर, अन्धकार दौड़ा है प्रकाश की ओर, जीवन और मृत्यु भाग रही हैं महानिर्वाण के पथ पर, मनुष्य भाग पड़ा है स्वर्ग को! बाधा-विपत्तियों की अब पर्वाह नही करूॅगा, स्वर्ग-राज्य की प्रतिष्ठा की कल्पना लिये चल रहा हूँ, देह से देहान्तर मे आया हूँ, आत्मा को किया है आविष्कृत।

एक बार खड़ा हुआ। भागते-भागते सब को पीछे छोड़ आया हूँ। चारो ओर के सीमाहीन कुहरे में साथी न मालूम कहाँ गुम हो गये हैं, केवल दोनो ओर की सामान्य पथ-रेखा दिखाई दे रही है। कही भी वृक्षा-लता नहीं, वन-अरण्य नहीं, जीव-जानवरो का चिह्न मात्र नही, केवल हिमाच्छादित पर्वतमाला, असख्य झरने चीत्कार करते-करते रास्ते के किनारे उतर आये हैं। बाऍ-दाऍ, सामने-पीछे बादलों की घन-घोर घटाऍ, विलुप्त आकाश, निश्चिह्न पृथ्वी। इस बार चल रहा हूँ अन्धे की तरह टटोल-टटोलकर गर्जनमत्त वायुवेग से और अपने को नही सॅभाल पाता। धीरे-धीरे प्रकाश प्रखर हो उठा। वह प्रकाश आकाश का प्रकाश नहीं था धूप की उज्ज्वलता नहीं थी, विद्युत-वह्नि का प्रकाश भी नही था,—वह एक नवीन अलौकिक प्रकाश था हिम की शुभ्रता

का तीव्र और तीक्ष्ण प्रकाश था। प्रकाश का प्रवाह, प्रकाश का समुद्र, चारो ओर चमचमाता प्रकाश। आँखो की दृष्टि उग्र यंत्रणा से बन्द हो गई, आँखें ठंडी होकर बन्द हो गई। आँखो को हाथ से बन्द कर अन्धे की तरह सँकड़े रास्ते पर पॉव थपथपाते चल रहा हूँ। प्रकाश की कैसी भयानक संहारकारिणी उग्रता है, तीर की भाँति आँखो में लगती है, यात्री पथभ्रष्ट होकर ठोकर खाकर दूर उछल पड़ते हैं। देखते-देखते और एक अपशकुन दिखाई दिया। तूफान उठा, तूफान के साथ-साथ शेफालिका के फूलो की तरह हिम-वर्षा, उसके साथ ही वर्षा। कितनी भयंकर सर्दी! आह, जान पड़ता है कि अब तो प्राण बचेंगे नही, अभी कितनी दूर और जाना है कौन कह सकता है, मन्दिर अभी कितनी दूर है? सिर के ऊपर बरफ पड़ रही है, कॉधे पर पड़ रही है, कम्बल भी बर्फ से सफेद हो गया, ऑख को हाथ से दबाने पर भी वे नहीं खुल पाती, पागलों की तरह भागने की चेष्टा करने लगा।

'ओफ'।

पाँव फिसलने से बरफ के ऊपर पड़ा, पथ बरफ में डूब गया है। अरे, वास्तव में क्या मेरे शरीर मे अब और शक्ति नही रही? शरीर पत्थर की तरह प्राणहीन क्यो हो गया है? ओ, मैं किधर जा पड़ा हूँ? हाथों से टटोलते-टटोलते कम्बल को ढूँढ़ पाया। अहा, बेचारे ने मेरे लिए कितना कष्ट सहा। कितना नीचे गिर पड़ा हूँ, समझ में नही आया, बहुत चेष्टा करने पर ऑखो की पलकें खोलीं तो देखता हूँ कि पास ही मे एक छोटा तालाब शीत से जमकर आईने के कॉच की तरह सख्त हो गया है। शरीर झाड़कर फिर उठा, मिश्री के ढेर की तरह बरफ के स्तूप मे पॉव डूब गया। लाठी बरफ में खड़ी है। खैर, इस यात्रा में बँच गया। कमर तक सर्दी के कारण पक्षाघात हो गया है, शरीर का ऊपरी भाग ही अब बाकी रह गया है। अपने को खींचते-खींचते आगे चल रहा हूँ, आँखें खुल जाती तो देख सकता कि कितनी दूर चलना और शेष है! ऑख-मुख पर पड़ रही हैं हिम और वर्षा की बूँदें, सिर के बाल भारी हो उठे हैं, देह के गेरुआ-वस्त्र मुलायम बरफ से ढँक गये। एक बार देखने की चेष्टा भी की। सामने हिम की पुष्प-वृष्टि चाँदी के झालर की तरह झलमल कर रही है, सिर के ऊपर हिम का शामियाना। कैसा अनिर्वचनीय सौन्दर्य है। मानो किसी विराट के पद-तल छूने के लिए उठ रहा हूँ, मानो पागल की तरह एक विपुल विश्व के तोरण-द्वार पर कराघात करने के लिए, अन्धे की तरह

टटोलता-टटोलता चल रहा हूँ—मानो स्वर्ग के साथ आज मृत्युलोक का आलिंगन होगा।

शंखध्वनि नही सुन रहा हूँ ? मालूम होता है कि काँसे की घण्टी की आवाज़ आ रही है। कहाँ से ? उत्तर से, नहीं दक्षिण से ? फिर कान लगाकर सुना। किन्तु अब नहीं चला जाता, एक बार सोकर विश्राम लूँगा ? किन्तु सोते ही चुप हो जाऊँगा, सदा के लिए चुप। प्राणो मे धीरे-धीरे नीचे डूबा जा रहा हूँ, सब कुछ डूब रहा है—रूप, प्रकाश, शब्द, चेतना, निश्वास—सब। हाथ-पाँव अब और कुछ सुनना नही चाहते ! एक बार चीत्कार कर रो नहीं सकता ? एक बार तूफान की तरह हँस नही सकता ?

'महाराजजी क्यों खड़ा हुआ है ?'—हाथ के ऊपर प्रचड झकझोर पाकर सजग हो उठा। हाथ पकड़ कर कई कदम खींच ले जाकर उसने कहा—ऐसा होता है ठढे मे जल्दी-जल्दी आना।

'कौन हो तुम, छोड़ो-छोड़ो ..'

'आओ जी, आँख खोलो, मै अमरसिंह हूँ। आओ, पुल आगे है।'

शरीर की सारी शक्ति संचय कर आँखो की पलकें खोलकर एक बार देखा। तब मन्दाकिनी—दूध गगा के पुल के पास आ गया था। काँसे के घण्टे का शब्द नजदीक से आता हुआ फिर सुनाई दिया। दूर पर दो-चार यात्री छाया की तरह झुकते-उठते चल रहे हैं। पुल पार होते ही सामान्य बस्ती, कई पत्थरो के घर, तथा दो-एक दुकानें दिखाई दी। पत्थर-बिछा हुआ पक्का रास्ता है। घर-द्वार दुकान-घाट, पथ-घाट सभी कठोर बर्फ के स्तूप से ढके हैं। उसके ऊपर ही आना-जाना होता है। मालुम पड़ा कि गोपालदा का दल इस समय बहुत पीछे है।

रास्ते मे मुड़ते ही सामने हिमाच्छादित हिमालय की पटभूमि मे केदारनाथ का मन्दिर दिखाई दिया। सामने पत्थरों से ढकी वेदिका के ऊपर पथ की ओर पीछे फिरने पर पत्थर का एक विराट् साँड़ बैठा दिखाई देता है। आँखो ने अभी तक बरफ की चमक को बहुत-कुछ सह लिया है इस बार और कष्ट नही होता। हाथ की ओर देखता हूँ तो अँगुलियो के सिरे ठढ से फट गये है और उनसे लोहू निकल रहा है, पाँवो का चमड़ा फट गया है। खैर जो भी, बाहर पादुका का परित्याग कर, इस परम रूपवान मन्दिर के घने अन्धकार मे अन्दर जल्दी-जल्दी प्रवेश किया। उस समय भीतर कई अर्द्ध-उन्मत्त स्त्री-पुरुष यात्री केदारनाथ की विपुल देह के ऊपर लोट-पोट ले रहे थे। केदारनाथ

मूर्तिमान नहीं हैं, कठोर असमान एक बडे पत्थर के खंड हैं—यही सही, उसी को आलिंगन कर कोई हँस रहा है, कोई रो रहा है, कोई चीत्कार कर रहा है, कोई गा रहा है, कोई आर्तनाद और करुण विनय कर रहा है, कोई शीत-विदीर्ण रक्ताक्त मुख से उसको पागल की तरह चूम रहा है। आवेग, उत्तेजना, उल्लास, आर्तस्वर, पूजा-पाठ, स्तोत्र-मत्र, स्नेह-प्रेम, भक्ति और आनन्द—किन्तु अचचल और वधिर प्रस्तर-स्तूप उसी तरह अपनी स्थिर नीरवता मे पड़ा रहा। भीतर काला अँधेरा और कठिन, असह्य, प्राण-कँपानेवाला शीत है, जमीन पर पाँव रखकर खड़ा नहीं हुआ जाता, सामने यह पथ-भ्रांत पागलो का दल आत्महारा होकर कोलाहल कर रहा है ! न मालूम क्या सोचकर एक बार अन्धकार मे खड़ा रहा।

किन्तु भीतर के हिमगर्भ अन्धकार के बीच स्थिर होकर खड़ा नहीं हुआ जा सकता ठढ से सरासर सारा शरीर संज्ञाहीन-सा होने लगता है, शरीर का ख़ून जमने लगता है, गले के भीतर से एक प्रकार की भग्न, आर्त आवाज विदीर्ण होकर बाहर निकलती है। इस ओर विक्षिप्त और उन्मत्त यात्रियो का प्रलाप—किसी के मुँह के कोने से ख़ून निकल रहा है, किसी के मुँह से फेन, हाथ-पॉव मे हिमक्षत रक्त के दाग हैं, सारे शरीर मे बरफ का चूरा बिखरा पड़ा है, किसी-किसी का गला बैठ गया है—किन्तु क्यों ? दुर्गम के इस वीभत्स पीड़न में से होकर वे किस दुर्लभ को वरण करने आये थे ? मन्दिर के भीतर प्रेत की भाँति कुछ क्षण अकेला इधर-उधर टहला ; भीतर चिर-अन्धकार है, भय का वास तथा रहस्य-सागर है, सुई की नोक के बराबर भी प्रकाश-प्रवेश का कोई रास्ता नहीं है। क्या बोलूँ, क्या प्रार्थना करूँ ? इस निर्बोध प्रस्तर-स्तूप के सामने खड़े होकर अपनी निर्धनता प्रकट करूँ—यह तो भयानक नादानी होगी। हाँ, एक पथभ्रान्त सामान्य तीर्थयात्री, बस यही तो मेरा अन्तिम परिचय नहीं है , मैं क्षुद्र हूँ, मै नगण्य हूँ—इस बात को ही किस सकीर्णता से अनुभव करूँ ? भावुकता देकर, आनन्द देकर, विश्वास और प्रेम देकर इस मिट्टी और पत्थर की प्राण-प्रतिष्ठा की जाती है, इसके पास खड़े होकर यदि अपने को छोटा न समझ सकूँ, तब क्या यह मेरा अहंकार है ? देवता के पास पहुँचकर ही तो मैं अपने देवत्व को अनुभव करता हूँ !

अन्धकार के भीतर पॉवो को सावधानी से आगे बढ़ाकर दरवाजे से बाहर आया। हाथ,पाँव, मुख, ठण्ढ से अकड़े जा रहे हैं, नीचे उतर कर किसी प्रकार जूता पहन कर भाग कर चलने लगा।

हाथ में लाठी है, किन्तु उसको हिलाने-डुलाने की शक्ति नहीं रह गई है, पाँवों के नीचे वरफ के दवने के कारण मच-मच आवाज़ हो रही है, अन्धकार से हिम के प्रकाश मे आने पर फिर आँखे बन्द हो गईं—मुख से एक प्रकार की आवाज़ निकालता हुआ धर्मशाला मे चला आया।

छोटे पत्थरो के घर वरफ के गर्भ में समाधिस्थ हो गये हैं! भीतर हम कई यात्री हैं। गोपालदा और बूढ़ियाँ कम्बल ओढ़कर सिकुड़ कर काँप रहे हैं, किसी के मुँह से कोई शब्द नही निकलता, सभी के आँखों और मुख पर प्राण-भय के चिह्न दिखाई दे रहे हैं। वाहर मेघाच्छादित आकाश, वरावर चुपचाप हिम गिर रहा है—जहाँ तक कुहरे के भीतर देखा जाता है, पत्थरो के घरो की छते, खिड़कियाँ, दरवाजे, पथ-घाट, दुकानो की कच्ची छतें कठोर स्तूपाकर हिम से ढकी पड़ी हैं। कोई-कोई स्थानीय लोग लोहे के हथियारो से वरफ काटकर अपने आने-जाने का रास्ता ठीक कर रहे हैं। प्रत्येक दिन दो वार चार वार उनको हथियार काम में लाने पड़ते हैं। सभी यदि इस देश मे निष्क्रिय होकर वैठ जायँ, तव एक दिन वरफ उनको अपना ग्रास वना ही लेगा।

इस समय अमरसिंह कई कम्वल और लकड़ी ले आया। पडे इस देश मे विना मूल्य केवल उधार देकर यात्रियो की सहायता करते हैं, लकड़ी भी वहुत-कुछ वे इसी तरह दे देते हैं। कम्वल तो अमरसिंह ने दिये किन्तु सहज मे उनका स्पर्श न किया जा सका, वे भी वरफ हो गये थे, छूते ही हाथ सिकुड़ने लगते, शरीर पर चिपकाने से शीत हड्डियो मे घुसने लगता था। अमरसिंह ने लोहे के एक खपरे से लकड़ियो को जलाया। आग को देखकर हमारे आनन्द का क्या ठिकाना! वह मानो मृतसंजीवनी थी, वह मानो हम सभी की लुप्त आयु थी। लकड़ी इतनी ठढी थी कि जल ही नही पाती थी, तव भी उस ज़रा-सी आग के चारो ओर यात्री जाकर उसे घेर कर वैठ गये, कोई उससे अपना हाथ घुसा देता था, कोई पाँव फेक देता था—हाथ-पाँव जल जाँय, झुलस जाँय, कोई परवा नहीं—आग को लेकर रार-तकरार छीना-झपटी तथा मनोमालिन्य होने लगता था। एक का शरीर ज्यादा गरम हो जाता है तो दूसरा ईर्षा से जल उठता है। बूढी ब्राह्मणी के बारे मे यह सन्देह हुआ कि वह शायद इस आग को सवके पास से छीनकर अपने शरीर के ऊपर ही उड़ेल लेगी। इस वीच यात्रियो में से सबको बूढी ब्राह्मणी का पर-पीड़न तथा उसका स्वार्थ विदित हो गये। झुकी हुई कमरवाली

चारू की मा इस समय तक ठंड से कम्बलो के नीचे लुकी पड़ी थी, इस बार हठात एक कम्बल हाथ मे लेकर पागलो की तरह उठकर वह आग की तरफ आई, कम्बल को अँगारो के बीच घुसड़ दिया, एक रोआँ भी उसका नहीं जला, बूढ़ी ब्राह्मणी के हाँ-हाँ करते हुए उठते ही उसने कम्बल को ऊँचा उठाकर कुछ देर तक आग मे तपाया उसके वाद फिर आगे आ गई। काठ की भाँति कठिन और निश्चल होकर अभी तक एक तरफ बैठा हुआ था, चारू की मा ने हठात वह कम्बल खोलकर मेरे शरीर पर ओढ़ा दिया। कहने लगी—सब आग को वह चाटी जा रही है, तुम भी मनुष्य हो तब फिर कम्बल जरा भी गरम नही हुआ. क्यो ब्राह्मण ठाकुर ? यह कहकर वह फिर, कम्बलो के उसी ढेर के नीचे घुस पड़ी।

कृतज्ञता प्रगट करने की भाषा तो शायद थी किन्तु शक्ति नहीं थी। केवल शीत-कातर मुँह से इस स्नेहमयी वृद्धा की ओर देखा। यही मेरु-दंड भग्न चारू की मा कङ्काल शरीर को लेकर बराबर चल रही है, तिस पर भी आश्चर्य तो यह है कि उसके मुख पर सदा हँसी दिखाई देती है और बातचीत में मधुरता। इस बूढ़ी को सभी दुतकारते-फटकारते हैं, सामान्य कारण पर भी धमकाते और उस पर शासन करते हैं, बात-चीत मे खास उक्तियाँ भरने के कारण वह अनेक लोगो के लिए पागल है, पैसा-धाई खर्च करने के बाद वह हिसाब नहीं रखती इससे ब्राह्मणी मा की दृष्टि में वह अभागिनी है, इस पर भी चट्टी-चट्टी मे यह दिखाई देता है कि वह वहुतों के जूठे वर्तन मल देती है, कभी-कभी मसाले पीस देती है, विना कहे सबकी सेवा कर वह सबको स्वस्थ रखने की चेष्टा करती है। यह विलकुल साधारण परिश्रम है, किन्तु थके-माँदे, गतिहीन, यात्रियो के लिए यह महान उपकार ही सिद्ध होता है।

घर चारों ओर से बन्द है, पत्थरो का बना मजबूत घर है, कहीं भी एक छेद नहीं, बाहर की हवा से सभी बाघ की भाँति भय खाते हैं—उसी वायु-लेशहीन घर के भीतर आग जलाकर सभी बैठे रहे। धुँए और आग से जब भीतर थोड़ी गरमी आई तब किसी-किसी के मुँह से आवाज़ निकली। उस समय वक्त काफी गुज़र चुका था, शायद बारह बज गये होगे। एक रात्रि केदारनाथ मे बिताने का रिवाज है। अमर-सिंह की सहायता से उस दिन पूरी और आलू की तरकारी की व्यवस्था हुई। आकाश का दुर्योग कम नहीं हुआ, सूर्य मानो इस देश मे है ही नही, मेघ और कुहरे से यह देश सदा अँधेरे से ढका रहता है, कभी

हिमपात के बदले वर्षा होती है, कभी वर्षा के बदले हिमपात, वही हिम देखते-देखते जम कर सख्त बरफ में परिणत हो जाता है, वर्षाकाल के अन्त तक केदारनाथ में मनुष्यों का समागम रहता है, शरतकाल के प्रारम्भ होते ही सभी नीचे उतर जाते हैं, पशु पक्षी और मनुष्यो का चिन्ह तक नही देखा जाता। घर बरफ के नीचे कई महीनो तक अदृश्य रहते हैं। ये घर और रास्ते अनेक शताब्दी पूर्व के बने है, किन्तु आज भी जिस प्रकार नये से लगते है, उसी तरह साफ-सुथरे भी हैं, कहीं भी टूटने-फूटने का चिह्न नही, बहुत संभव है कि एक ही ऋतु की आबहवा से उनकी आयु इतनी दीर्घ हो गई हो।

सारे दिन आग जलाकर, कम्बल ओढ़कर घर के भीतर अकर्मण्य बैठे रहे। कब दिन का चौथा पहर संध्या मे परिणत हो गया और संध्या कब रात्रि में परिणत हो गई—यह कुछ नहीं मालूम हो सका। आँखें नींद से भारी अवश्य हो रही थी किन्तु ठण्ढ से नींद न आ सकी। हाथ-पाँव हिलाने की शक्ति भी लुप्त हो चुकी। शीत के असह्य क्लेश और पीड़न मे वह भयंकर रात्रि व्यतीत हुइ।

❀ ❀ ❀

उसके बाद और कुछ न कहूँगा। उस दिन प्रातःकाल वही आकाश का अनियन्त्रित दुर्योग, हिमपात, मेघान्धकार तथा ओलो का गिरना इन सबके होते हुए किस प्रकार वहाँ से भाग चले, किस प्रकार उतराई के मार्ग से रामबाड़ा पार होकर सीधे गौरीकुण्ड मे आकर फिर रुके, उसके वर्णन करने की अब जरूरत नही। जहाँ से हम पहले चले थे उसी से लौटे भी, दो दिन का रास्ता पारकर चुकने के बाद एक मध्याह्न को हम उसी नलाश्रम चट्टी में आ पहुँचे। इसी स्थान में हम अपनी कुछ पोटलियाँ-मोटलियाँ छोड़ गये थे। अब और ठंढा नहीं, आकाश नीलम की तरह झलमल कर रहा है, सुन्दर आराम देनेवाली धूप है। फिर दिखाई दी अरण्य की सुस्निग्ध श्यामलता—वसन्तकाल को हमने फिर वरण किया। अब फिर नया रास्ता है। दक्षिण का मार्ग गुप्तकाशी को गया है, सामने का पथ बहुत गहराई मे मन्दाकिनी के तट की ओर चला गया है। फिर वही प्रचड मक्खियो की परेशानी शुरू हुई, पहले की तरह ही सिर से लेकर पैर तक कीड़े-मकोड़ो की परेशानी, देह मे खुजली लगना, घुटनों में बड़ी व्यथा। नलाश्रम चट्टी में खा-पीकर उसी पुराने झोले-झफट को कन्धे पर लटकाकर इस उतराई के रास्ते से फिर यात्रा करने लगे। सुनने मे आया कि मन्दाकिनी पार

होने पर उखीमठ यहाँ से केवल तीन मील दूर है। आज हमको उखी-मठ पहुँचना ही होगा। केदारनाथ से वापस आ गये हैं, इस वार नवीन उत्साह है, अब सीधा बद्रीकाश्रम ही चलेंगे, और कोई बात नही होगी, यही एक लक्ष्य है।

किन्तु हाय रे तीन मील! उलटते-पलटते यात्री उतरते जा रहे हैं, किन्तु तीन मील पूरे ही नहीं होते। यात्रियो के उत्साह को जीवित रखने के लिए किस मिथ्यावादी ने यह बात गढ दी है कि यह दीर्घ पथ केवल तीन मील का है? पगडण्डी के पथ पर घूम-घूमकर जब मन्दाकिनी के पुल पर हम लोग आये तब हम काफी थक गये थे। पुल पार होते ही रास्ते का स्वरूप विलकुल वदल गया। सीधा खड़ा पर्वत, भारी चढ़ाई, ऐसी चढ़ाई कि उसकी भीषणता का अनुमान करना भी कठिन है। एक हाथ मे लाठी और दूसरे हाथ से रास्ते के ऊपर सहारा ले-लेकर चल रहा हूँ। यह तो चलना नहीं, रेंगना है। ऐसी भीषण चढ़ाई को हम गत दो दिनो मे पार नही कर सके। चुपचाप रेंग रहे हैं, बीच-बीच में कोई दुःखी यात्री मुख से एक प्रकार की आवाज़ कर उठता है— फाँसी की रस्सी से लटकने के वक्त अपराधी के मुख के भीतर से किस प्रकार की आवाज़ निकलती है? चलते-चलते देखता हूँ तो पथ की धार पर खिदिरपुर की वही निर्मला बैठकर रो रही है। एक तो वह परिश्रम के भय स भोजन बनाकर खाती नहीं, उसके ऊपर यह चढ़ाई, अहा वेचारी!—वेचारी! अभागिनी को वहुत कष्ट है, वहुत! मरने को क्यो आई? मर तू, जा मर, चूल्हे मे जा!

फिर एक-एक क़दम सावधानी से चल रहा हूँ। कमडल का जल समाप्त हो चुका है, गला सूख गया है, दोनो आँखो मे ज्वाला है— होने दे यह सब, चल, आगे चल! गोपालदा कहाँ हैं? वही जगली भालू की तरह कुत्सित मनुष्य? उनका चेहरा ऐसा हो गया है मानो अध-जला रोए उठा एक कम्वल। पाप, यह सब पाप! मेरे दोनो ओर पाप की शोभा यात्रा, कलुष कालिमा की प्रदर्शनी, असुन्दर और अश्लीलता का मेला। यह कोई आनन्द नही देते, दुःख देते है, इनके चेहरो पर समस्त जीवन के पापो की छाप है, कुकर्मों का दाग है, लिप्सा, लोभ और वासना के श्मशान: संसार इन्होंने घृणा कर छोड़ दिया, तभी तो ये लोग उस पाप के बोझ को हल्का करने के लिए तीर्थों मे घूम रहे हैं। इनके ऊपर देवताओ की दया तथा करुणा होगी? दया और करुणा क्या इतनी सुलभ हैं? उस दिन तुम भाग्यहीन कहाँ

थे—जिस दिन तुम्हारे जीवन में रूप की उज्ज्वलता थी, मन का ऐश्वर्य था; जिस दिन था तुम्हारा यौवन? यौवन में क्या किया?

थोड़ा खड़ा होने को जी चाहता है, प्यास से छाती फटी जा रही है, यह होता रहे—फिर घोंघे की चाल से आगे बढ़ूँ। उस पार दूर पर्वत के शिखर पर गुप्तकाशी का छोटा-सा शहर दिखाई दे रहा है। ऐसा जान पड़ता है कि न जाने कितने समय और कितने दिन आगे उसी शहर को पीछे छोड़ आया, गत जीवन के पृष्ठों में वह मानो सामान्य एक स्मृति की तरह जड़ा रहा। प्रतिदिन हम पूर्व दिन को भूल जाते हैं, प्रति प्रभात को हमारा नव-जन्म होता है। हम मानो चिरकाल के तीर्थयात्री हैं, चिर-तीर्थ-पथिक हैं, जन्म-जन्मान्तर पारकर चिर-सुन्दर के चरणों की ओर चल रहे हैं; इसी तरह चली थी एक दिन श्रीमती विरह के शत वर्ष पार होने पर श्रीकृष्ण के श्रीचरणों में आत्माञ्जलि देने के लिए। प्रेम की तपस्या ही ऐसी है, वेदना में ही उसका रूप खिलता है, उसके हृदय में दुःखलोक है जो चिर-दुर्लभ है, जिसके लिए यह दुर्गम पथ-यात्रा, यह पीड़न है, जिसके लिए यह यन्त्रणादायक पथ की प्राणान्तकर तपस्या है, उसी रूपातीत रूप को मैं चाहता हूँ, वह मेरी आशा की परितृप्ति है, मेरी सबसे बड़ी और अन्तिम प्राप्ति है। आज के इस यात्रा-पथ की ओर देखकर अकस्मात जीवन का रहस्यमय गति-तत्व मानो आँखों के सामने उद्घाटित हो उठा। नारी की गति मिलन के पथ पर, पुरुष की गति विरहलोक में। नारी चल रही है परम पुरुष के चरणों में आत्मदान करने के लिए, पुरुष चलता है परम ज्योतिर्मयी का आविष्कार करने के लिए। मिलन के आनन्द में नारी अपने को अतिक्रम करती है, आविष्कार के आनन्द से पुरुष अतिक्रम करता है जीवन को। नारी सृजन करती है प्रेम का सुकोमल मर्त्यलोक, पुरुष सृष्टि करता है विरह का सुदूर स्वर्गलोक! नारी की तपस्या आनन्दमय बन्धन है, पुरुष की दुःखमय मुक्ति है।

रहने दो स्त्री-पुरुष का गति-तत्व। हृदय का रक्त सूखने पर; दुस्तर पथ पार होने पर, जिस समय उखीमठ की धर्मशाला में आकर पहुँचा, उस समय दिन के समाप्त होने में और देरी नहीं थी। बहुत छोटा शहर नहीं। कई विश्रृङ्खल नागारिक साज-सरंजाम इधर-उधर बिखरा पड़ा है। जैसे, एक बाजार, थाना, छापाखाना, अस्पताल और कम्बलीवाले का सदाव्रत। उखीमठ का संस्कृत नाम उषामठ है। प्राचीन काल में यहाँ बाणासुर की राजधानी थी।

उसकी कन्या उषा को श्रीकृष्ण के पौत्र अनिरुद्ध ने अपहरण किया था। श्रीकृष्ण के ही उपयुक्त वह पौत्र था। हमारी धर्मशाला से बिलकुल जुड़ा हुआ एक भारी मन्दिर था। इसी मन्दिर में केदारनाथ के पुजारी रावल महाशय का वास-स्थान है, शीतकाल मे केदारनाथ के प्रति पूजा यही से निवेदित की जाती है। आज तक हमने कुल अठारह दिनों की यात्रा की है। अठारह दिन पूर्व हमारी मृत्यु हो गई थी, हम सभी प्रेतात्मा हैं, आज यदि कोई आत्मीय हमे देखें, तो हमें न पहचान सकेंगे और मुख फेर कर चले जायँगे। हम भी उन्हे नही पहचानेंगे, पहिचान लेंगे तो वे भयभीत होकर भाग जावेंगे, पूर्वजन्म के परिचय को प्रेत जन्म मे क्यो लाया जाय ? मन्दिर मे कुछ देर टहल कर बाहर आँगन मे आकर बैठ गया। पास ही मे एक दुकान है, दुकान अच्छी है, उसी के नीचे लकड़ी की एक चौकी का आश्रय लिया। मन्दिर के पास ही पुलिस का थाना है, इसलिए जमादार और दारोगा ने चौकी के पास बैठकर बातचीत शुरू कर दी। मालूम हुआ कि थाने मे खर्च तो है किन्तु उससे आमदनी नही है, माहवारी वेतन देकर सबको अब अधिक दिनो तक नहीं पाला जा सकता है। थाने की दरिद्रता का हाल सुनकर यहाँ के जनसमाज के सम्बन्ध मे अच्छी ही धारणा हुई। चोरी, डाके और अन्य सामाजिक अपराध कम होते हैं, गढ़वाल ऐसा ही देश है।

दारोगा बाबू के हाथ में एक पुराना अँग्रेजी समाचार-पत्र देखकर चकित रह गया। तब क्या हम मर्त्यजगत मे वास्तव में जीवित अवस्था मे हैं ? आश्चर्य, आज इतने दिनो के बाद पहली बार कागज का टुकड़ा देखा ; हिमालय मे कही भी कागज नहीं ; कागज मानो बाहर के ससार का प्रतिनिधि बनकर आँखो के सामने खडा हुआ। कंगाल की तरह हाथ फैलाकर एक बार समाचार-पत्र को देख गया। कितनी चाह और कितना आग्रह ! समाचार-पत्र लाहौर का 'ट्रिब्यून' था। पजाब, बगाल विलायत, अमेरिका—सभी मानो आलिंगनबद्ध हो रहे हो। महात्माजी जेल में हैं। पचम जार्ज का स्वास्थ्य अच्छा है। एक लडकी हवाई जहाज मे विलायत से आस्ट्रेलिया तक उड़ी है। मेदिनीपुर मे मजिस्ट्रेट हत्याकांड। मुसोलिनी के मुख पर ऐतिहासिक हँसी देखी गई। गोलमेज कान्फ्रेंस का परिशिष्ट। चीन के शहरो मे जापानी बम-वर्षा। डी वेलरा। सुभाष बोस का कष्ट।—सवादो की ओर देखकर अपनी प्रिय पृथ्वी के देह स्पर्श को अत्यन्त आनन्द के साथ अनुभव करने लगा। मेरी आँखो मे आँसू आ गये !

समाचार-पत्र को लौटाकर चुपचाप बैठा रहा। शरीर बहुत थक गया है, चक्कर-सा आ रहा है, आज इस सामान्य रास्ते को तय करने में अतिरिक्त पीड़ा अनुभव कर रहा हूँ जितने दिन जाते हैं उतने ही अनुपात में सहज मे थक जाता हूँ। कष्ट-सहन करने की शक्ति भी कम हो गई है। शरीर मे असमय मे ही वृद्धावस्था तथा जीर्णता आ गई है। इसी तरह कौतूहल और आकांक्षा लेकर एक जगह आ पहुँचूँगा और ठीक इसी तरह जाने के समय अवहेलना के साथ छोड़कर चला जाऊँगा—मन मे ज़रा भी दाग़ नहीं रहेगा। हम सभी जगह एक दुष्प्राप्य-सी वस्तु को खोजते फिरते हैं, कहीं भी उसको नहीं पाते—हमारी एक आँख मे आशा है तथा दूसरी मे आशा-भंग का मनस्ताप। यह ढूँढ़-खोज एवं व्यर्थता ही जिन्दगी का असली रूप है। जो पथ हमारे जीवन से मृत्यु की ओर चला गया है उसके दोनो तरफ कितना आना-जाना है, कितना जानना-सुनना, कितनी आशा और निराशा; कितना आनन्द और दुःख; कितना सन्यास और कितना भोग है। हम इनको छूते-छूते जाते है; कहीं भी बाधा नहीं, वे हमारी अग्रगति के सहायक हैं, पूजा के उपकरण मात्र हैं। जीवन का जो प्रवाह उत्पत्ति से निवृत्ति की ओर चलता है, उस स्रोत के दोनो किनारों पर कितना हास्य-रुदन है, कितना सुख-दुख, मनुष्य का कितना छोटा-बड़ा, असख्य विचित्र इतिहास! कही हम प्रेम करते हैं, कही स्नेह और ममता के बन्धनो की सृष्टि करते हैं, कही प्रतारणा और पीड़न सहते हैं और कही दैन्य तथा अपमान। तब भी जीवन कही बहकता नहीं, रुकता नहीं, परिपूर्ण आत्म-विकास की प्रेरणा स अपने वेग मे सरपट चला जाता है।

संन्ध्या आई, उसके साथ ही उतर आई अपरूप ज्योत्स्ना। शायद कल पूर्णिमा है। मालूम होता है यह वैशाखी पूर्णिमा है। उसी शुक्ला चतुर्दशी की चन्द्रिका की ओर देखकर आँखो मे नीद आ गई। कही पर चुपचाप थोड़ा बैठते ही ऊँघने लगता हूँ। नीद आने से ही हम बचे हुए हैं, हमारी प्रेरणा तो निस्तेज है, हमारा उत्साह भी गतिहीन है। हम थके हैं, बहुत थके हुए। सर्वनाशिनी पथमाया हमारे गलों मे रस्सी बाँधकर हमे घसीट ले जा रही है—धूल मे, ककड़ों मे, पत्थरो में तथा काँटो में; हम क्षत-विक्षत हो गये है, तब भी न चलने का कोई उपाय नहीं, यही हमारी नियति है। पिछला पथ जिस तरह अतल मे चला गया है, सामने का पथ उसी तरह अनन्त रहस्य मे छिपा हुआ है।

अपने ऊपर हम लोगो का अब कोई हाथ नहीं है, नियति के सम्मुख हमने आत्म-समर्पण किया है, हमारा जीवन और मरण उससे बँधा हुआ है। हम नियति की इच्छा पर खेलनेवाले कठपुतले हैं, उसकी इच्छा के इशारे से उठते-झुकते हैं, हँसते-रोते है और बचते-मरते हैं। हमारे सब काम-काजो के पीछे वह चुपचाप खड़ी रहती है, उसकी अँगुली का इशारा मानना होगा, हमारी स्वतंत्र-सत्ता कुछ नही है।

नीद आने से भी बचना सम्भव है, आँखों को तन्द्रा ने घेर लिया है। रास्ता चलते-चलते आजकल हमारी आँखों मे झपकी आने लगती है। कभी-कभी बहुत दूर चले जाने पर हठात् तन्द्रा भग होती है, यही तो, चलते-चलते मानो सो गया, किन्तु इसका कुछ ध्यान ही नहीं। चलते-चलते अपनी ना+ो के खर्राटो से खुद ही विस्मित होकर परस्पर एक-दूसरे का मुँह देखते हैं। निद्रा से अचेतन होने पर कही किसी दिन पहाड़ से पैर न फिसल जाय, इसी आतक से सतर्क रहता हूँ। नाल ठुकी हुई लाठी को हाथ मे सख्ती स पकड़कर, ठक-ठककर चलता हूँ। रास्ते के एक बाजू पर पहाड़ की देह है और दूसरा बाजू बिलकुल खाली है, इसलिए पहाड़ की देह से ही घिसते हुए चलने हैं। इस क्षण-भंगुर जीवन के सबन्ध मे हम निरन्तर सत्रस्त रहते हैं, इसी के लिए हमारी सतर्कता है, अवश्यम्भावी मृत्यु की ओर हम क्षण-क्षण मे ताकते हैं, हम सभी प्रतिदिन प्रभात स लेकर रात्रि तक मौत का ग्रास होने से अपने को बचाने में थक जाते हैं। लेकिन बावजूद इस कोशिश के वह दिन आयगा जब हम भाग न सकेंगे, हमको आत्म-समर्पण करना ही पड़ेगा। इतना साज-शृगार, इतना विलास, इतना भोग और इतनी सहिष्णुता, इतना दु:ख और प्रेम—सारे आयोजन मृत्यु की ही ओर हैं, सब उपकरणों के साथ एक दिन मृत्यु के चरणो पर आत्मबलि देनी ही होगी। अज्ञानी मनुष्य का स्थायित्व के प्रति तब भी इतना प्रलोभन। किसी ने बनाया है ताजमहल, किसी ने पिरामिड और किसी ने चीन की दीवार। मृत्यु को कोई चैन नहीं, वह मौके पर अपनी प्राप्य वस्तु को निर्दयतापूर्वक बिलकुल पूरी ले लेगी। अस्सी लाख जीवो के साथ मनुष्य भी उसकी दृष्टि मे समान है। मनुष्य होने की हैसियत से कोई विशेष सम्मान अथवा पक्षपात उसके लिए नही है, उसकी ध्वसकारक सम्मार्जिनी झाड़ू देकर सभी को एक-एक करके साफ किये देती है। आज जो नवीन हैं, जिनकी आँखो मे नया प्रकाश है, जिनमें नये उद्यम की भावना और अनुप्रेरणा

है, कल वे सयाने कहलाएँगे और उनके बाल सफेद हो जावेंगे, संसार को उनकी और आवश्यकता नहीं रह जावेगी और वे मृत्यु के गर्भ में समाने के लिए दौड़ पड़ेंगे। भारी उल्लास से वे बार-बार दौड़े आते हैं और दुर्दान्त ताड़ना से बार-बार वापस चले जाते हैं। इसका नाम है जीवन।

आकाश और पृथ्वी को प्लावित कर शुक्ला चतुर्दशी का चन्द्रालोक झलमल करने लगा, पर्वतों के शिखरों पर उज्ज्वल नक्षत्र जाग रहे थे, वासन्ती हवा अपना दुपट्टा उड़ाकर भ्रमण करने लगी—मन्दिर के आँगन के एकान्त में सोने पर मेरी आँखों में नींद आ गई।

दूसरे दिन तड़के ही फिर अपना झोला-झंझट कँधे पर रखकर वही यात्रा शुरू हुई। उखीमठ पहुँचने के लिए इतना आयोजन और आकर्षण था, आज उसके प्रति यात्रियों की निर्दय अवहेलना है। हमारे जीवन से उसका प्रयोजन सदा के लिए समाप्त हो चुका है, वह पीछे से सकरुण दृष्टि से हमारे पथ की ओर देखता रहा। हमारे लिए बुलावा आया है प्रभात की दिशा से, यह संदेश दिया है शुभ्र तारे ने, आह्वान आया है दूर-दूरान्तर से। रात्रि का अन्धकार पीछे रह गया, प्रकाश ने अपना नवीन संदेश भेजा है, हमारी यात्रा शुरू हुई। प्रातःकालीन सलज वायु बह रही है, पक्षियों का कलरव आनन्द-अभिनन्दन की सूचना दे रहा है, रास्ते के आस-पास वसन्तकालीन पुष्पों का समारोह है, आकाश का देवता रंगों की सुरजित डाली सजाकर उषा की वन्दना कर रहा है, उसी के नीचे-नीचे तीर्थयात्रियों का पथ है। रास्ता केवल चढ़ाई का है, ऊपर ही की ओर उठा हुआ है, हम चल रहे हैं धीरे-धीरे। किसी के आगे जाने का उपाय नहीं, छन्दोबद्ध गति ही से हमें चलना होगा; जो दो कदम पीछे है उसको बराबर पीछे ही रहना होगा, यदि वह आगे जाने की चेष्टा करता है, तब दम बाकी न रह जाने पर उसको कभी न कभी बैठना ही पड़ेगा; कोई यदि अपनी बहादुरी दिखाने लगे तो रास्ता उससे उसकी इस बहादुरी की कस-कसकर कीमत ले लेगा। शक्तिमान एवं द्रुतगामी के प्रति बाबा बद्रीनाथ का विशेष पक्षपात ज़रा भी नहीं, दुर्बल और बलवान को वह एक ही श्रेणी में रखकर अपने पास बुलाते हैं।

काँथा चट्टी और गोलिया बगड़ पार होकर और एक मील चढ़ाई चढ़कर, उस दिन मध्याह्न के समय हम अधमरे होकर दोपेड़ा चट्टी में पहुँच गये। न मालूम ये चट्टियाँ कब खत्म होंगी, ये मानो पथ के

किनारे बैठकर यात्रियो को निगल जाती है और ठीक समय पर फिर अपने पेट से बाहर निकाल देती है। खैर, उपमा को उलट दीजिये, इन चट्टियो के समान बन्धु पथ मे और कोई नहीं हैं। जो पथ सनातन और बन्धनो से रहित है, जिस पथ पर मुक्ति का अनावृत अवकाश है, उस पथ पर नहीं चला जाता, पथिक के पैरो को उस पथ मे भयानक बाधा मालूम होती है, उसका नाम मरुभूमि है—उस परिश्रान्त पथिक को सादर बुलाती हैं डाल-पात-लता आदि स निर्मित ये चट्टियाँ। दरिद्रा दु खी माता मानो पथ के किनारे खड़ी होकर अपने थके-माँदे बाल-बच्चों की बाट जो रही है उसके एक हाथ मे झरने का सुशीतल जल है, दूसरे हाथ मे विदुर का-सा रूखा-सूखा अन्न।

भोजन और निद्रा के बाद ठीक तीन बजे फिर रास्ते पर उतर आये। उस समय धूप बहुत तेज थी, बादलो का कही निशान भी नही था, करीब तीन-चार दिन पूर्व वर्फ के गर्भ मे समाधिस्थ होकर हम चले थे, उस बात को आज पसीने से तर-बतर हो जाने पर भूल ही गये हैं। इस वेला रास्ते में शीतकाल, उस वेला चारो ओर से घुमड़-घुमड़ कर वर्षा-ऋतु। ग्रीष्म के बाद ही शायद एक बार दिखाई दिया सुन्दर वसन्त-काल, दोपहर की वेला मे सारा शरीर शायद शीत से थरथर काँप रहा था और रात्रि मे शायद अत्यधिक गर्मी से कपड़े उतार कर चट्टी के दरवाजे के पास सोया पड़ा रहा। एक ही दिन मे कभी तो शरतकाल का-सा नीलोज्ज्वल आकाश दिखाई देता है, मल्लिका और शेफाली का समारोह नजर आता है, कभी श्रावण की तरह सकरुण वर्षा होने लगती है—कदम्ब-चम्पक की शोभा ; कभी ऋतुराज का वसन्त-विलास दिखाई देता है—पूर्णिमा की मधु-यामिनी , अथवा कभी शीत की शीर्णता—प्रकृति का रूखा वैधव्य-वेश आँखो के सामने आता है। प्रतिदिन हमारी आँखे विचित्रतापूर्ण ऋतु-उत्सव देखती है। हमारा उत्पीड़ित जीवन—वैरागियो का दल—निमीलित दृष्टि से इस सबको देखते-देखते उदासीन होकर चला जाता है।

पिछले दिन मन्दाकिनी पार करने पर उखीमठ के पथ में जो चढाई शुरू हुई थी, वही चढाई आज इस समय भी जारी है, इसका अन्त नहीं, विराम नही। हमारा रक्त-शोषण करना और हमे शक्तिहीन बनाना ही इस पथ का उद्देश्य है। आज सुबह रुईदास शुक्ल और पण्डितजी को पीछे की चट्टी में अकर्मण्य होकर पड़े हुए देख आया हूँ। उस वृद्धा और भारी-भरकम मरहठा स्त्री को रास्ते मे बैठ आर्तनाद करते हुए

देखा है। मनसातला की मौसी कुलियों को मनमाने दाम देकर एक काण्डी में चढ़ी है। मक्खियों के काटने के घाव और देह के चुलचुलाने मे पहले तो सभी दुःखी हैं, उस पर यह चढ़ाई, जीवन की आशा अब किसी को नहीं है। निर्मला चलते-चलते कभी रुक जाती है, मालूम होता है कि रोने की चेष्टा कर रही है, किन्तु रो नहीं सकती, जिह्वा के साथ तालू का स्पर्श न हो सकने से, मुख से एक अजीब तरह की आवाज निकालती है, मृत्यु-शैया पर लेटे हुए लोगों की मृत्यु-यन्त्रणा की तरह, चलने-चलते कोई शायद यन्त्रचालित की भाँति उसके मुँह मे थोड़ा पानी डाल जाता है, वह उसको गटक जाने की चेष्टा करती है, खड़े-खड़े निरुपाय होकर देखती है। कोई भी कुछ नहीं बोलता, दाँतो के साथ जिह्वा और तालू जकड़ गये हैं, कुछ भी कहने की शक्ति नहीं; उनकी एक ही बात है—अभी कितना और चलना है? रास्ता कितना और चलना है, इसका पता कैसे चले? एक ही अज्ञान पथ के यात्री हम सब हैं, कैसे यह बतलाया जाय कि उस चिर-ईप्सित दुर्लभ का मन्दिर और कितना दूर है! इच्छा होती है कह दूँ कि तुम और आगे न जाओ, यहीं रुक जाओ, यहीं तुम्हारी सीमा और शेष है: किन्तु कैसे बोलूँ? रुकने की जगह तो यह नहीं है, इस सबको पार करना होगा, नहीं करने से काम नहीं चलेगा, पीछे हिमालय की अनन्त पर्वत-माला के गर्भ मे हम खो गये हैं, रुकने से सदा के लिए रुकना होगा, अग्रगति के सिवा और हमारी कोई गति नहीं। इस पथ मे जिस तरह क्षमा नहीं, सुविधा का भी उसी प्रकार अभाव है। जो पैदल चलते हैं उनकी अवस्था जितनी भी अच्छी हो, विशेष सुविधाएँ पाने का उनके पास कोई भी उपाय नहीं। यही सबसे बड़ी परीक्षा है। यहाँ छोटे-बड़े का सवाल उठने का जरा भी अवकाश नहीं, दरिद्र और धनी के लिए विभिन्न रूप मे चलने का कोई पथ नहीं, अहम्मन्यता, विद्वेष, मनो-मालिन्य, स्वार्थ और संकीर्णता—इन सबको प्रकाशित करने की कोई सुविधा भी नहीं। जातिवर्णनिर्विशेष हम सभी समान हैं। आहार-विहार, विश्राम-शयन और परिश्रम—सभी के लिए समान हैं। इस बात को नहीं कहा जा सकता कि फलाँ आदमी उस आदमी की अपेक्षा अच्छी तरह खाता-पीता है, रहता है, यदि कोई ऐसा कहता है तो वह मिथ्यावादी है।

पोथीवासा और बनिया कुण्ड छोड़कर सन्ध्या के पहले हम चोपता आ पहुँचे। सामने एक बड़ी धर्मशाला, उसी मे थोड़ी-सी खुली जगह

दिखाई देने से हमने ठढी साँस ली। समतल भूमि का बहुत ही अभाव है, जहाँ कहीं भी देखें वहाँ पहाड़-ही-पहाड़ दिखाई देने से दृष्टि प्रतिहत होकर वापस आ जाती है, कहीं भी हमारी मुक्ति नहीं, मन मे केवल यह भावना उठती है कि कहीं भाग चलें, किसी उन्मुक्त समतल प्रान्तर को, कही दूर समुद्र के किनारे। कहाँ है टेढ़ा-मेढ़ा वन-पथ, गाँव से जो पथ धान के खेतो को गया है, वहाँ से नदी के किनारे को, ग्राम-वधुएँ जिस पथ पर कलस लिये फिरती हैं, भार जिस पथ पर गाता जाता है—'मनेर मानुष मनेर माझे कर अन्वेषण।' वह रास्ता कहाँ है ? हम इस हिमालय से अब ऊब गये हैं, पत्थरो के बाद पत्थरो का ढेर नहीं चाहते, पर्वतीय नील नदी भी नही चाहते, नही चाहते उन्मादी अन्ध झरने को।

मनुष्य का जीवन जहाँ एकाकी होता है, जहाँ वह अपने पाँवों के बल पर खड़ा रहता है, जहाँ वह सम्पूर्ण रूप से स्वाधीन होकर अपना काम खुद ही करता है, वहाँ वह अतिरिक्त रूप में असहाय रहता है। सब स अलग होकर अपने दिन अपने ही बल पर काटना, वह तो व्यक्तिगत स्वाधीनता नहीं, उसका नाम है उच्छृङ्खल आत्मपरता। जो दुकान मे रहकर खाते हैं, धर्मशाला मे जाकर सोते हैं, प्रमोदागारो में जाकर भोग-विलास करते हैं, जहाँ चाहे वहाँ घूमते हैं, रोगी की हालत मे अस्पताल में जाकर भर्ती होते हैं, वे स्वाधीन हो सकते हैं, किन्तु वे अभागे हैं। प्रत्येक मनुष्य के साथ पृथ्वी का कुछ लेना-देना होता है। दो बंधन तो हमको स्वीकार करने ही होंगे—स्नेह का और सेवा का। सब महापुरुषो के जीवन के इतिहास मे इस स्नेह और सेवा की लीला स्पष्ट दिखाई देती है। मनुष्य के लिए दूसरे को प्रेम करना और दूसरे से प्रेम पाना, सेवा करना और सेवा लेना जरूरी है। मनुष्य की सेवा को जिसने अस्वीकार किया, जिसने स्नेह का बंधन नही माना, उस हतभागी ने मानव-समाज को विपाक्त कर दिया। उसको हम बोहेमियन कहेंगे, किन्तु मनुष्य नहीं बतलावेंगे। आज यदि सभी व्यक्तिगत स्वाधीनता पाकर उन्मत्त हो उठे, यदि समाज की किसी एक व्यवस्था को प्रत्येक व्यक्ति नही माने, तब सारा ससार मरुभूमि में परिणत हो जावेगा, यदि पृथ्वी में स्नेह और सेवा नहीं हो, प्रेम और मोह नही, व्यक्ति के साथ व्यक्ति का ससर्ग नहीं—तब उसका कैसा रूप होगा ? जो सभ्यता आज चारों ओर फैली हुई है, उसके मर्ममूल में सेवा और स्नेह का यह रस ही तो सिंचित हुआ है,

इसको छोड़कर मनुष्य समाज जायगा किस दिशा को? यह जो तीर्थ-यात्रियों का दल चल रहा है, इससे अधिक स्वाधीन और कौन है! ये तीर्थयात्री प्रेम करते हैं केवल अपने को, सेवा करते हैं सिर्फ अपनी ही। जिस तरह आज इनके पीछे बंधन नहीं, सम्मुख भी उसी तरह बाधा नहीं। ये सब अपनी पोटली सँभालते हैं, खुद ही लक्कड़-पत्तड़ संग्रह कर लाते हैं, अपनी ही विपत्ति और अपनी ही क्षेम-कुशल मे व्यस्त रहते है, अपनी-अपनी स्वतन्त्रता ही इनका मूलमंत्र है। खुशी की बात यह है कि यही इनका असली रूप नहीं है। इनकी ओर देखने से डर लगता है, ये मानव-जीवन के स्नेहहीन कंकाल हैं, इनकी तीर्थ-यात्रा जिस दिन पूरी हो जायेगी उस दिन ये दौड़ पड़ेंगे ममता और दाक्षिण्य की स्निग्ध छाया की ओर, उस दिन ये गृह और समाज के पथ पर चलेंगे—इनको मैं जानता हूँ। इनके जीवन की सारी भूख मिटी नहीं है, भूख को रोककर, अस्वाभाविक संयम के रूप मे परिग्रह कर मोह और प्रेम का कारोबार स्थगित रखकर ये आये हैं इस महा-तीर्थ के पथ पर आत्मशुद्धि की आकांक्षा से। मन्दिर के कोने-कोने मे यदि कूड़ा-करकट का ढेर जमा है, तब उस स्थान मे देवता का आसन प्रतिष्ठित नहीं हो सकता। जो तीर्थ के बाद तीर्थ भ्रमण करते रहते हैं, उनमें होती है केवल आत्म-ताड़ना, वे देवताओ के पीछे-पीछे तो दौड़ते हैं किन्तु देवत्व का स्पर्श भी नहीं कर पाते।

धर्मशाला की देख-भाल करनेवाला एक पंजाबी ब्राह्मण है। ठंडी हवा से हमें दु:खी और काँपते हुए देखकर उन्होने कई कम्बल कहीं से ला दिये। विनयी और मीठा बोलनेवाले यह ब्राह्मण पाजामा पहिने हुए थे। यात्रियो से सामान्य दो-चार पैसे जो उनको मिल जाते हैं उसी से उनकी गुजर-बसर होती है। दूध पीने और तम्बाकू का कश लेने के बाद जब गोपालदा थोड़े स्वस्थ होकर बैठे तो उन्होने थोड़ी देर धर्म-चर्चा की और फिर प्रणाम कर चले गये। सारे दिन गर्मी के बाद अकस्मात सध्या के समय बर्फीली हवा को पाकर हम सभी सजीव और उत्साहित हो उठे। गोपलदा प्रति पन्द्रह मिनट मे चिलम पीने लगे। बन्द धर्मशाला के बाहर वैशाखी पूर्णिमा की ज्योत्स्ना चारो दिशाओ मे प्लावित होने लगी—तुहिन-शीतल निभृत रात्रि।

दूसरे दिन सुबह सर्दी मे काँपते-काँपते हम भूलोकना चट्टी की धार पर पहुँच गये। आकाश मे बादल छाये हुए हैं, कभी-कभी थोड़ी बूँदा-बाँदी हो जाती है। कभी-कभी विदीर्ण मेघो के खंडों में से धूप

से प्रकाशित आकाश हँस उठता है। शायद आज मार्ग मे घटाटोप अन्धकार में बारिश होने लगेगी, भूलोकना पार कर कुछ दूर आगे जाते ही, बाएँ हाथ की ओर श्री तुङ्गनाथ का रास्ता मिला। दक्षिण का मार्ग सीधा चला गया है लालसांगा अथवा चमोली की ओर। रास्ते के किनारे कई कांडीवाले दिखाई दिये। तुङ्गनाथ के पथ में भयानक चढ़ाई है, वहुत-कुछ तो त्रियुगीनारायण की तरह है, यदि कोई चल कर दर्शन कर आना चाहता है तो वह यहाँ छोटी-सी कांडी किराये पर ले सकता है। कई गये, कोई पैदल गया और कोई कांडी से। हिमालय में सब मिला कर चार धाम हैं—बद्रीनाथ, केदारनाथ, त्रियुगीनाथ और तुङ्गनाथ। तुङ्गनाथ से चौबीस मील उत्तर मान्धाता का क्षेत्र है। यात्री यहाँ आकाशगगा में स्नान करते हैं, प्राचीन मन्दिर मे केवल एक पुजारी है, नीरव और एकान्त पर्वत-शिखर, आस-पास में कहीं भी गाँव अथवा चट्टी नही दिखाई देती, सामान्य एक मात्र दुकान एक ओर टिमटिमा रही है। तुङ्गनाथ के ऊपर खडे होने से दूर उत्तर मे धवल हिमाच्छादित हिमालय का नयनाभिराम रूप दिखाई देता है। इस प्रकार के अलौकिक रूप की छटा तुङ्गनाथ के सिवा और किसी जगह से इतने भव्य-रूप मे नहीं दिखाई देती। ऐसा जान पड़ता है कि महा-योगी केदार और बद्रीनाथ की श्वेत पुष्प-शैया बिछी हुई है और उसके नीचे पास ही इन एकात्म हरिहर की सेवा के लिए बैठी हुई हैं श्यामलशोभामयी महासती।

दक्षिण का पथ तुङ्गनाथ की कमर के चारों ओर पूर्व दिशा से घूम कर पश्चिम दिशा को चला गया है, तुङ्गनाथ का दर्शन कर इसी पथ मे उतर आना पड़ता है। यहाँ रास्ता अरण्यमय और निस्तब्ध है, सामान्य चढ़ाई और सामान्य उतराई है, समुद्र की लहरो की तरह हम कभी उठते हैं, कभी झुकते हैं, यह कहा जा सकता है कि रास्ते का बहुत-कुछ भाग समतल है। रास्ते मे जितना ही आगे चलते हैं उतना ही जगल घना होता जाता है और अन्धकार होता जाता है। इस समय यहाँ वसन्तकाल है, झड़ी हुई सूखी पत्तियो से रास्ता ढका हुआ है। अकेला ही वन पथ पर चल रहा हूँ, उतराई के मिलने पर हाँफना जरूर बन्द हो जाता है; किन्तु पाँव का दर्द फिर जाग उठा है। शरीर में मानो किसी स्थान मे मौका पाकर पजा मारने के लिए, व्यथा छिपी पड़ी है और सुयोग पाते ही अपना काम करने लगती है। पत्र-पल्लवो के भीतर से सर-सर शब्द करती हुई वासन्ती वायु वह रही है। इस

बार बाईं और दाहिनी ओर फिर बहुत दूर तक दृष्टि दौड़ गई। जिस समय अन्तरिक्ष सुविस्तृत हो जाता है, उस समय यह समझ लेना चाहिये कि हम बहुत ऊँचाई तक चढ़ गये हैं। चारों ओर तक दृष्टि फैलाने में जो बाधाएँ थीं, वे मानो हट गईं। जीवन भी ऐसा ही है। जब संकीर्ण चेतना में हम वास करते हैं, तब हमारे मन के आकाश का घेरा भी छोटा होता है, उसका आयतन स्वल्प होता है; मनुष्य जिस समय उदारता और महत्व के शिखर पर खड़ा होता है उस समय वह जान सकता है कि उसके हृदय और उसकी दृष्टि का प्रसार और उनकी परिव्याप्ति कहाँ तक है। जो केवल अपने ही नोन-तेल की फिक्र मे व्यस्त हैं, वे समाजबद्ध जीव है, जो इससे थोड़ा ऊँचा उठ गये हैं उनको देशमान्य कहा जाता है, वे राष्ट्रपति है। समाज और राष्ट्र की निर्दिष्ट सीमा को पार कर जो लोग और ऊपर उठ गये हैं उनको हम विश्व के कल्याणकामी महामानव, महात्मा कहते हैं। काव्य और साहित्य मे भी ऐसा ही है। सुविस्तृत कल्पना, अनन्त सौन्दर्यलोक। कथा को अतिक्रम करता है सुर, छन्द को अतिक्रम करती है व्यञ्जना। जिस समय कहानी लिखी जाती है उस समय कई चरित्र सामने आकर घूमते हैं, उनकी इच्छाएँ स्वाधीन होती है, गति सहज होती है, वे खुद ही घटना की सृष्टि करते हैं, अपने चरित्र को इङ्गित करते हैं। किन्तु केवल चरित्र ही नहीं, केवल घटना ही नही—उनको साहित्य मे खींच लाने का वास्तविक प्रयोजन क्या है? हमारे वास्तविक जीवन मे भी तो कितने विचित्र चरित्र और घटनाओं का संस्पर्श है, किन्तु प्रत्येक का स्थान तो साहित्य में नही है। जो बड़े कलाकार है उनमे होती है यह निर्वाचन-शक्ति और होती है चरित्र और घटना के पर्यवेक्षण की विशेष भंगी। जो चरित्र की सृष्टि करते हैं वे द्रष्टा हैं, जो रस की सृष्टि करते हैं वे स्रष्टा हैं। शिल्पी द्रष्टा और स्रष्टा दोनो होता है। उसके स्पर्श से साधारण वस्तु असाधारण हो उठती है, वह हमे लोक से लोकान्तर को ले जाता है, संकीर्णता से परिव्याप्ति की ओर और जीवन से महाजीवन को।

पाङ्गरवासा चट्टी मे आ पहुँचे। धूप इस समय कम है, आकाश आज प्रातःकाल से ही मेघ-मलिन है। ऊपर और नीचे अरण्यमय पर्वत है, उसी अरण्य के गम्भीर गह्वर से झरने इधर-उधर गिर रहे हैं। पास मे कहीं भी झरना हो तो हम जान जाते हैं—इस वक्त गिरगिट की पुकार बहुत तेज हो उठी है। सर्दी उतनी नहीं है, प्रभात का शीत

मध्याह्न के वसन्त में बदल गया है। अभी तक नहीं ख़याल किया था, इस वार देखा कि सारे शरीर पर मक्खियों का दल टूट पड़ा है, इसी तरह जैसे कि शहद के छत्ते पर मधु-मक्खियाँ चिपटी हुई हो। फूँकने से भी मक्खियाँ हटती नही, हाथ से उन्हें हटाना पड़ता है। बीच-बीच में किसी-किसी चट्टी में लाखों मक्खियो का ऐसा एक गम्भीर गुञ्जन होता है कि कान लगाकर सुनने में भला मालूम होता है। कहीं मधुर स्वर सुनाई दे रहा है तो किसी मंडली मे उदासीन। रात्रि के अन्धकार मे, अर्द्ध-जागृत तन्द्रा में, कानो के पास जिन्होने मच्छर का गाना सुना है, वे जानते हैं कि कैसे एक करुण अवसाद के साथ मानवात्मा सब वन्धनो को पारकर भटकता चला जाता है।

भोजन और शयन के बाद फिर बोरिया-बिस्तर कन्धे पर लेकर रास्ते पर चले आये। जूता थोड़ा फट गया है, भोजन बनाते-बनाते दोनो हाथो मे आँच लगने से वे काले पड गये हैं, हाथ में और रोम नहीं, बर्तन मलने-मलते अँगुलियाँ रूखी और कुरूप हो गई हैं, खाने-पीने में वहुत कड़ी साधना करने से शरीर रक्तहीन हो गया है—जब बैठता हूँ तो फिर उठ नहीं सकता, जब चलता हूँ तब बैठ नहीं सकता। रास्ते मे आकर यन्त्र की भाँति चल रहे हैं, रास्ता पाते ही इच्छा या अनिच्छा से दोनो पाँव अपने-आप चलते हैं। अपनी ओर देखकर हम आँखो मे आँसू भरकर निश्वास छोड़ते हैं, नीद के जोर मे मुख के भीतर से एक प्रकार का आर्त स्वर निकल पड़ता है, उसके शब्द से हम खुद ही चौंक पडते हैं, उस समय समझ में आता है कि मनुष्य की पीड़ित आत्मा कितने दुःख से मनुष्य के भीतर रोती रहती है।

ऊपर से नीचे अरण्य के भीतर उतरे चले जा रहे हैं। अभी साँझ होने मे वहुत देर है, तब भी धीरे-धीरे अन्धकार हो उठा है। सुनने में आया कि इस अञ्चल में हिंसक जानवरो का उत्पात कभी-कभी वहुत प्रबल हो उठता है, साँप यहाँ पाँवों की आहट से भागता नहीं, मनुष्य को देखने पर गर्दन उठाकर ताकता है, पेड़ो की शाखाओ पर वह घूमता है, रास्ते के किनारे-किनारे चलता है। कभी इस स्थान मे दावानल भड़का था, उसी के जलाने के दाग हर एक पेड़ पर लगे हुए हैं। भयभीत होकर हम सदल-बल चल रहे हैं। यदि कोई आगे जाता है तब दोनो ओर जगल का चेहरा देखकर शंकित होकर रुक जाता है, अकारण गोलमाल से रास्ते मे सरगर्मी हो जाती है—पीछे रहना कोई नही चाहता। कहीं-कहीं रास्ता फिसलनवाला है, काई पड़ी हुई है, कहीं-

कहीं रास्ते के ऊपर ही झरने का अविरल स्रोत बह रहा है। देखते-देखते आकाश मेघाच्छादित हो गया, बादल गरजने लगे, बिजली चमकने लगी—यहाँ वज्रपात के घोर शब्द से पत्थर फट जाते हैं, शिला-खंड स्थान-च्युत होकर नीचे लुढ़क आते हैं, वह एक भयावह विभीषिका है। देखते-देखते घना अन्धकार हो गया, सप-सपकर वृष्टि गिरने लगी। अब और कोई चारा नही, बारिश बन्द होने तक कही भी खड़े होने को स्थान नही, इस गहन वन मे कहीं भी ज़रा-सी देर के लिए आश्रय नही लिया जा सकता। बारिश से भीगने में कोई नुकसान नही, इस अरण्य के ग्रास से अपने को छुड़ाकर चले जाने से हम आज बच जायेंगे। भयार्त दृष्टि से बार-बार वृक्ष-लताओ के बीच की खुली जगह से आकाश की ओर देखकर चले जा रहे हैं, शरीर काँप रहा है, रोंगटे क्षण-क्षण मे खड़े हो जाते है। टेढ़ा-मेढ़ा रास्ता है, एक व्यक्ति के मोड़ पर घूमते ही दूसरा व्यक्ति नहीं दिखाई देता, सभी पास-पास हैं, किन्तु प्रत्येक ही खो गया है। अभी तक बातचीत कर रहा था, किन्तु रास्ते के नज़दीक ही एक जानवर का सूखा कंकाल देखकर मेरी घिग्घी बँध गई। कभी-कभी अन्धकार मे पक्षियो के पंखों की फड़फड़ाहट सुनाई दे रही है, शायद अब तो वास्तव मे साँझ हो गई है। वायु और वृष्टि के वेग मे हमे उस अन्धकार में प्रायः दिशा-ज्ञान नही रह गया।

चारू की मा जो कुबड़ी होकर चल रही थी, हठात सीधी खड़ी हो गई, बुढ़िया ब्राह्मणी कुलियों की पीठ पर काण्डी मे चल रही है, उसकी ओर देखकर-चारू की मा भयार्त कण्ठ स बोली—तुम्हें नही मालूम देती मा? बूढी ब्राह्मणी धीरे से बोली—क्या री?

चारू की मा चलते-चलते इधर-उधर देखकर बोली—कैसी बुरी गन्ध आ रही है। इसी के पास ही कही है, मा।

'दुग्गा-दुग्गा—ओ तुलसीराम, चल भाई आगे।' कहकर बूढ़ी ब्राह्मणी हठात जोर से रो उठी—पंचानन को किसी भी तरह साथ नही ला सकी मधुसूदन, नारायण! तुलसीराम जैसे ही उस बूढी को आगे ले गया वह ककाल-शरीर वृद्धा चारू की मा मेरे पास आकर हँसकर बोली—ठाकुर कैसा डराया है ब्राह्मणी को—मरने के नाम पर इतना भय।—यह कहते-कहते अस्सी वर्ष से भी अधिक उम्र की वह मृत्युभय-हीन बुढ़िया खिलखिलाकर हँस पड़ी।—मै यदि मर जाऊँ तब चारू रह जायगी, और मैं छोड़ ही आई हूँ सरस्वती, भादू, हाबली, और कितनी ही गायें—तीस सेर दूध रोज होगा ही, चारू का

एक पेट, वह ग्यारह वर्ष की उम्र से विधवा है चलेगा नहीं काम बाबा ठाकुर ?

'जरूर चलेगा।'

उस भयावह पथ में चारू की मा ने चलते-चलते कितनी ही बातें की। अपने दूध के कारोबार का इतिहास, अपने भतीजे की कहानी, सेतुबन्ध-रामेश्वर और नैपाल मे पशुपतिनाथ के अपने रोमांचकर साहस-पूर्ण अनुभव इनमे से कुछ भी कानो में नहीं, घुसा, बीच-बीच में केवल 'हाँ-हाँ' कहकर उसको उत्साहित कर रहा था। मालूम होता था चारू की मा किसी विपत्ति या दु ख से ज़रा भी नहीं डरती।

जैसे मूसलाधार पानी बरस रहा हो और उसके साथ-साथ कोई नाविक अनन्त समुद्र मे रास्ता भूल जाय पर इतने ही में उसे एक द्वीप मिल जाय तो वह इस घटना से जितना उल्लसित हो उठेगा उतने ही हम दूर अन्धकार मे एक चिराग़ देखकर हुए। तब तो आज हमने मृत्यु को टाल दिया। जगल का रास्ता तब खत्म हो चुका था। आः, बच गये !

अन्धकार में खोजते-खोजते चट्टी मिल गई। पास में बालखिल्य नदी की क्षीण धारा नहीं दिखाई दी, केवल नदी की एक रेखा दिखाई दी। एक छोटा मन्दिर है किन्तु उसके दर्शन करने की और शक्ति नहीं रही। धर्मशाला मे स्थान का अभाव था, हमने डाल-पत्तो से बनी हुई चट्टी ही मे आश्रय लिया। इसका नाम मण्डल चट्टी है। अनेक इसको जगल चट्टी भी कहते हैं। आज की यात्रा यहीं शेष हुई। गोपालदा ने बड़े समारोह के साथ गाँजे की चिलम तैयार की।

थोड़ी रात्रि हो चुकी थी, जब कि हम सोने की तैयारी कर रहे थे, उस समय दो हिन्दी भाषा-भाषी स्त्रियाँ तथा एक पुरुष रोते-रोते आकर चट्टी के किनारे खड़े हो गये। कितनी सिसकियाँ, कितनी आकुलता-व्याकुलता ! वे बोले—महाराज जी, तुम्हारे गोड़ छूते हैं, एक लालटेन हमको दो, एक आदमी हमारा जंगल मे रह गये, देखो बाबा, देखो।

इस मेघाच्छन्न रात्रि में कहाँ किस जगल में उनका आदमी रह गया ? वह क्या अभी जीवित है ? मालूम हुआ कि वह स्त्री है ! साथ आते-आते पीछे रह गई है, इतनी देर प्रतीक्षा करने पर भी वह नहीं पहुँच पाई। हाथ में प्रकाश लेकर उसको उस दुर्गम और प्राणघातक पथ मे खोजने जाना होगा, किन्तु हरीकेन लालटेन उसके लिए नहीं है। निर्मला थी नहीं, उसका लालटेन उनके हाथ मे दे दिया, वे पागल

की तरह उसी रात में फिर उसी रास्ते पर चलने लगे—यह निश्चय हुआ कि लालसांगा पहुँचने पर वे लालटेन लौटा देंगे।

वे तो गये किन्तु साथ में ले गये मेरी इस नीरव रात्रि की नींद को भी। मेरा व्याकुल मन और सजग दृष्टि दोनो उन लोगो के साथ-साथ उसी निरुद्दिष्ट का संधान करते हुए इधर-उधर फिरने लगे। शायद, कौन जानता है, अपने आदमी को वे कभी ढूँढ़ ले, किन्तु मैं खोजने पर न पा सकूँगा, मेरी लक्ष्यहीन कल्पना मे वह मनुष्य चिर-निरुद्देश्य है और चिरकाल से मार्ग मे भटकता आ रहा है; वह कभी नही लौटेगा।

सब सो गये किन्तु मुझको विधाता ने कठोर दण्ड दिया। शरीर में कम्बल चुभ रहा है, सारे शरीर में यन्त्रणा है बुरी हालत है—सारी रात नदी की ओर मौन दृष्टि फैलाकर जगा रहा, नींद न आ सकी।

कल की बात भूल गया हूँ। जितने दिन बीतते जाते हैं, स्मृति शिथिल होती जाती है। पिछली रात्रि की दुर्घटना? वह स्वप्न थी, वह माया थी! आज का यह प्रातःकाल ही सत्य है—यह नील आकाश, यह निर्मल प्रकाश - वसन्त के दिनो का यह अलौकिक ऐश्वर्य-संभार। गत दिन का प्रकृति का आलोड़न, प्रलयान्धकार, तूफान और वज्रपात—वे अतीतकाल के हैं, पिछले जन्म की घटनाएँ हैं। हमारे सब अगो पर उनकी छाप है, किन्तु मन में उनका ज़रा भी दाग नहीं। हम लोगो की स्मरण-शक्ति का क्षेत्र बहुत संकीर्ण हो गया है, इस वेला का इतिहास उस वेला मे उपन्यास हो जाता है। जब हम खुद अपनी आपबीती को दूसरो के मुँह से सुनते हैं तो अवाक रह जाते हैं। फिर चल पड़े हैं। सुबह से ही चढ़ाई शुरू हो गई है, दीवाल पार कर यात्री-गण कीड़ों की तरह उठ रहे हैं। कीड़ो की तरह अक्लान्त. कीड़ो की तरह निर्वाक।

सूटाना चट्टी धीरे-धीरे पार की। और नही चला जा सकता। शरीर अतिरिक्त यन्त्रणा से थरथर काँप रहा है। आँखों से आग-सी बरस रही है, और हाथ की लाठी मजबूती स नही पकड़ी जा रही है। झोला और कम्बल कन्धे पर प्रबल शत्रु की तरह दबा कर रखे हैं, इनका भार और इनका पीड़न अब नहीं सहा जा सकता। इस तरह से करीब डेढ़ मील रास्ता और तै कर चुके। धूप अत्यन्त तेज हो उठी है, इतनी तेज कि शरीर जला जा रहा है। पास ही मे गोपेश्वर मिला, सामने गोपेश्वर का प्रकांड प्रस्तरमय मन्दिर। अति नगण्य एक शहर का अनु-

करण, दो-एक दूकानें, पास ही मे एक छोटा-सा गाँव . गाँव के बाल-बच्चे पाई-पैसा माँगने यात्रियो के पास दौड़ आये। शिव मन्दिर के सामने एक विराट त्रिशूल खड़ा है, उसी पर बारहवीं सदी के महाराजा अनेकमल्ल की विजय-वार्ता एक दुर्बोध्य भाषा में खुदी हुई है। यात्री यहाँ वैतरणी कुण्ड में स्नान करते हैं। वे करते रहे, मै तो एक दुकान के पास एक बड़े पत्थर के सहारे बैठ गया। माथा घूम रहा है, तबियत ठीक नहीं है। हठात छाती के भीतर से एक ऐंठन होते ही उसी रास्ते के पास कै कर डाली। भगवान, यह क्या हुआ? दम लेने से पहले ही और एक बार कै। लोग पास से चले जा रहे हैं, मुख फिराकर वे मेरी ओर क्यो देखें, ऐसा तो बराबर होता ही रहता है।

कोई एक आदमी जो वहाँ से गुजर रहा था, कह गया एक डांडी कर लो यार—जय बदरीविशाललाल की!

नहीं, नही, समय नहीं, सभी आगे चले गये। अरे शान्त, अरे भ्रान्त, अरे भग्न, और एक बार उठ खड़ा हो, कधे पर रख ले झोला कम्बल, लाठी और लोटा उठाकर चल अपनी पहली शक्ति को फिर वापस ले आ, विदीर्ण कण्ठ से जोर से पुकार उठ—

'व्याघात आशूक नव नव,
आघात खेये अचल र'व,
वक्षे आमार दु.खे वाजे
तोमार जयडक;
देवो सकल शक्ति, ल'व
अभय तव शख *

जल्दी-जल्दी भाग चला। मृत्यु मानो पीछे से मुझे मार-मारकर आगे को धकेल रही है। दिन का उज्ज्वल प्रकाश मिट गया है, केवल नील अन्धकार है, आकाश हिल रहा है, बिलकुल भीतर धँसी हुई आधी मुँदी आँखो से गरम आँसू गिर रहे हैं। मैं क्या पागल हो गया हूँ? मैं क्या नशे में उन्मत्त हूँ? इस प्रकार पाँव क्यों काँप रहे हैं? सारा

---

* घातें, दुख आवें नित नव-नव,
उन्हें सहूँगा अविचल, नीरव,
दुख में मेरे उर-स्पन्दन में
बजता है जय-डंक तुम्हारा,
मैं अपनी सब शक्ति लगाकर
प्राप्त करूँगा अभय-शंख तव!

मन प्रचंड प्रतिवाद कर, इस तरह बेचैन क्यों हो उठा है ? न मालूम किस आशा को लेकर चल रहा हूँ और वहाँ जाकर क्या पाऊँगा ! क्या वहाँ मेरी सब आशाएँ पूरी हो जावेंगी, सब इच्छाओं का अन्त हो जायगा ? ऐसा जान पड़ता है कि उसके पास से मै अपना लेना ले लूँगा जिसकी आशा से मै इस अकाल-मृत्यु के हाथ को हटाकर चल रहा हूँ, जो मेरी ही प्रतीक्षा कर रहा है। वह मेरे कंठ को देगा परम वाणी, कान मे भर देगा आत्म-प्रकाश का मूल-मत्र, सौन्दर्य-सृष्टि के स्रोत का मुख खोल देगा, देगा शक्ति और साहस से पूर्ण विशाल हृदय अनन्त प्रेम और अकृपण दाक्षिण्य देगा, आँखों को देगा अनिर्वाण स्वप्नालोक और हृदय में अनन्त वह्नि-क्षुधा प्रज्वलित कर देगा !

वालू-पत्थर के पहाड़, सूर्य की किरणे नाना रंगों मे प्रतिविम्बित हो उठती हैं, पास में वन-गुलाव का जगल है, दाड़िम और अखरोट के वन हैं। उसी के वाद वाईं ओर को रास्ता जाता है। पथ पर मुड़ते ही देखा कि वहुत नीचे चमोली शहर तथा लालसांगा हैं। उसी के नीचे अलकानन्दा नदी के उस पार पतले सूत की तरह महाप्रस्थान का वही पुरातन शीर्ण पथ कर्णप्रयाग होकर लालसांगा मे आकर मिला है, उसी पथ से यात्री वापस लौट जाते हैं। करीव एक घंटा चलने के वाद, अलकानन्दा का पुल पार करने पर लालसांगा की धर्म-शाला मे आ गये।

केदार, वदरी और कर्णप्रयाग का चमोली केन्द्रस्थल है। शहर है विलकुल छोटा लेकिन है समृद्ध। यहाँ गढ़वाल जिले की एक अदालत महकमा जंगलात का दफ्तर, कलक्टरी, पुलिस, कुली-एजेन्सी, अस्पताल, विद्यालय, वाज़ार, सदाव्रत और डाकघर आदि शहर की नित्य प्रयोजनीय वस्तुएँ दिखाई दी। अकर्मण्य यात्री यहाँ से वद्रीनाथ तक भाड़े पर घोड़ा ले सकते है।

धर्मशाला मे गोपालदा और वूढ़ियाँ दिखाई दी किन्तु वातचीत करने को तवीयत नही हुई। वे लोग केवल एक वार मेरी ओर ताक कर वोले—अरे दादा तुम्हे क्या हुआ ?

कुछ न कह सका, केवल वड़ी मुश्किल से कम्वल विछा कर सो गया। आँखे मूँद कर चुपचाप पड़ा रहा। मानो मिट्टी के अन्दर घुसता जा रहा हूँ। गोपालदा मेरे पास चले आये, भयभीत होकर शरीर और माथे को कुछ देर हाथ से सहलाकर वोले—हाँ, जो कुछ सोच रहा

था वही हुआ है, यह धूप की गर्मी नहीं है, तुम्हारा शरीर तो बुखार से जला जा रहा है। क्या होगा ?

क्या होगा, वह सभी जानते हैं, गोपालदा को भी यह बात मालूम ही है ; उनकी सस्नेह उक्ति भी विद्रूप की तरह कानो में गूँज उठी। किन्तु उस समय उत्तर देने की और सामर्थ्य नहीं थी, ज्वर से मैं बेहोश था। माथा ऊँचा कर खड़ा होने की अब मुझमें शक्ति नही। हमारा जो बहुत बड़ा दल एक दिन ऋषिकेश से चल कर देवप्रयाग पहुँचा था, छिन्न-विछिन्न हो गया है। कोई लौट गया है, कोई रुक गया है, कोई अकर्मण्य होकर कहीं पीछे निरुद्देश्य हो गया है, कोई मृत्युमुख में जा पड़ा है। हमारे दल मे तीन व्यक्ति नही हैं, आज मुझको भी रुक जाना पड़ा। बाईस दिनो में मैंने सारा रास्ता खत्म किया, केवल थोड़ा-सा पथ शेष रह गया है, बहुत ही थोड़ा, सिर्फ अड़तालीस मील, शायद एक बार ही तेज भाग कर इसे खत्म कर देता, किन्तु वह नहीं हो सका। ज्वर से पीडित, पंगु होकर इस पथ के किनारे अनिश्चित काल के लिए पड़ा रहा। गोपालदा ने केवल अस्पताल की दिशा दिखा दी।

किसी प्रकार सामान्य रूप से खा-पीकर हमारे इस परम प्रिय दल ने यात्रा का आयोजन किया। मुझमें साँस लेने की भी शक्ति नही थी, बोलने की ताकत नही थी, उनको विदा देने के लिए उत्साह भी नहीं था, केवल चुपचाप पड़ा रहा। जाने के समय चारू की मा ने दिया थोड़ा जल, गोपालदा दे गये सहानुभूति और शुभकामना। कह गये— फिक्र मत करना, सब बाबा (बद्रीनाथ) की इच्छा है। लौटते समय इसी रास्ते से आना होगा, ईश्वर करे हमारे लौटने तक तुम चगे होकर यहाँ से चले जाओ। ज्वर कम होने पर कुछ खाने की कोशिश करना।

इतना पाने की आशा भी मैंने नहीं की थी, इस सामान्य ममत्व के स्पर्श से हृदय उद्वेलित हो उठा। इन लोगों को मैंने कभी नहीं चाहा था, आज यह जान पड़ने लगा कि ये मेरे कल्याणकामी हैं। कम्बल के भीतर से मुख बाहर निकाल कर सोया ही रहा, उन्होने, धीरे-धीरे विदा ली और जाते समय फिर एक बार कह गये—तीन-चार दिन से तुम्हारा मिजाज जिस तरह रूखा हो गया था, उसी से यह साफ जान पड़ता था कि तुम्हारी तबीयत अच्छी नही है।

निर्जन धर्मशाला, सिर की ओर नीचे अलकानन्दा का कलकल सुनाई दे रहा है। पास ही में कहीं से एक-आध मनुष्य के गले की

आवाज कानों मे आ रही है। देखने-देखने सिर के पास अपराह्न की धूप पड़ने लगी। वसन्त की सरसराती हवा वही जा रही है। सामने लाल और सफेद पत्थरो के दो पहाड़ सूर्य की किरणों मे एक आश्चर्य-जनक रूप धारण किये हुए हैं। नदी के उस पार जिस पथ से हम आये हैं वह पथ-रेखा स्वप्नलोक की तरह दिखाई दे रही है। धीरे-धीरे मेरी रुग्ण और गतिहीन दृष्टि फिर वन्द हो गई। सारे शरीर को ज्वर की असह्य यंत्रणा और ज्वाला ने घेर लिया, और अव मेरी कोई आशा नही। मन ही मन मे सभी से होश-हवाश मे विदा ले ली। जन्मभूमि की ओर देखकर उसका अभिवादन किया।

कितनी देर तक पड़ा रहा, इसका पता नही : लेकिन एक बार उठकर पागल की तरह भाग चला और धर्मशाला के पीछे के मार्ग मे उतर आया। उस समय अपराह्न की वेला ढलकर संध्या की ओर जा रही थी, अधिक वक्त नही था। वालू और पत्थरो से भरे कठिन मार्ग से चलकर सीधे नदी के किनारे पहुँच गया। दो-चार साधू-संन्यासियो की मंडलियाँ इधर-उधर वैठी थीं। अपनी भलाई-वुराई का जरा भी खयाल न कर गहरे जल मे उतर आया, धारा वहुत तेज थी, कुछ दूर जल के वीच मे जाकर एक वड़े पत्थर को वॉहो मे भरकर डुवकी लगाई।

करीव आध घण्टे तक वेपरवाही से स्नान कर जव धर्मशाला मे आया तव शरीर थोड़ा स्वस्थ हो गया था। विष से ही विष दूर हुआ। और कही न देखकर झोला-झफ्फट और लाठी लेकर अकेला रास्ते पर चला आया। उस समय सॉझ हो चली थी। होने दो, इस समय थोडा रास्ता पार किया जा सकता है। मै उस दिन वेचैन होने के कारण अति साहसिक वन बैठा था।

किस तरह कई चट्टियॉ पार हो गईं, आज उनकी स्पष्ट याद नही है। रात मे एक जगह आश्रय लिया। दूसरे दिन पीपलकुठी पार की। रास्ते के पास तर सब्ज़ फूलो के कई छोटे पेड़ पाये गये। लाल फूलो के समारोह के ऊपर नवीन सूर्य की किरण-घटा फैल रही है। यहॉ बाघ व भालू की खालें खूब सस्ते दामो मे वेची जाती हैं। पीपलकुठी में गढ़वाली लड़कियॉ कम्बल का व्यापार करने आती हैं। मध्याह्न में आकर गरुड़गंगा की चट्टी मे पहुँचा। यहाँ गरुड़गंगा और अलकानन्दा का संगम है। गरुड़ का मन्दिर और साधारण शहर मिले। यह वात प्रचलित है कि लौटने के समय गरुड़गंगा मे एक डुवकी लगाकर पत्थर का एक छोटा-सा टुकड़ा तोड़ कर कोई घर ले जाकर उसकी पूजा करे

तो साँपों का भय नहीं रहता। गरुड़गंगा से पातालगंगा तक चार मील की चढ़ाई का रास्ता है। रास्ता चौड़ और देवदार के पेड़ो से घिरा हुआ है, निकुञ्ज की तरह। संध्या को पातालगंगा की चट्टी मे पहुँच कर विश्राम लिया। पास ही में गणेश का मन्दिर है, पातालगंगा अलकानन्दा में मिली है।

दूसरे दिन सुबह से ही चलना प्रारम्भ हुआ। साथ में कई अपरिचित यात्री चल रहे हैं। गोपालकुठी को पारकर मध्याह्न मे कुमार चट्टी में आ पहुँचे। मैदान रास्ता है, चट्टी की प्राकृतिक शोभा दर्शनीय है। पास ही मँ कर्मनाशा नदी है। भोजन करने के बाद कुछ देर आराम कर चल पड़ा। कही अकारण अधिक समय तक ठहरना अच्छा नहीं लगता, बल्कि रास्ते में जगह-ब-जगह बैठकर आराम करना ही मेरे उपयुक्त है, रास्ता ही मेरा सब-कुछ है।

झड़कुला और सिंहद्वार पार करने के बाद सन्ध्या के कुछ पहले जिस स्थान मे आ पहुँचा वह मेरे बचपन से अब तक का स्वप्न जोशीमठ था, थोड़ी-थोड़ी बारिश हो रही है। फिर अधिक सर्दी लगने लगी है, जोशीमठ नामक यह छोटा-सा शहर प्रसिद्ध है, इसका सस्कृत नाम ज्योतिर्मठ है। इसी स्थान से ही शंकराचार्य का उत्तर धाम शुरू हुआ। बद्रीनाथ के पुजारी रावल महाशय यहाँ रहते हैं, जाडे के दिनों में वे यहीं से बद्रीनाथ की पूजा करते हैं। नृसिंहदेव तथा अनेक देवताओं के मन्दिर यहाँ हैं, सभी मन्दिर एक आँगन के चारो ओर स्थित हैं। यहाँ नभोगंगा में स्नान करने की अपेक्षा दडधारा मे स्नान करना उत्तम है। असल में तो दोनो ही अव्यवहार्य हैं—इन ताल-पोखरो मे घडा भी नहीं डूब पाता। जोशीमठ छोटा शहर तो है लेकिन उखीमठ की अपेक्षा बड़ा है। बाजार, डाकघर, छापाखाना, सदाव्रत, रहने के मकान—क्या नही है? पास ही मे तिब्बत और मानसरोवर जाने का पथ है। अनेक लोग यहाँ से कैलाश और मानसरोवर को जाते हैं। करीब तीन मील आगे जाने ही भविष्यबदरी के दर्शन होते हैं। धर्मशाला मे जाकर कुछ देर आराम करते ही जाड़े स शरीर काँपने लगा, पास ही में पहाड़ों की चोटियो पर थोड़ा-थोड़ा सफेद बर्फ दिखाई दिया। हिम के सम्बन्ध में भय की एक भावना उत्पन्न हो गई है। जोशीमठ का प्राकृतिक दृश्य अत्यन्त सुन्दर है।

रात्रि के शेष-काल में जाड़े से थर-थर काँपते हुए अकेला ही जोशीमठ से विदा लेकर उतराई के मार्ग में उतरने लगा। तीन मील रास्ता

उतराई का है ; पाँवों की व्यथा जाग उठी। तीन मील रास्ता तय कर नदी के पुल को पार कर जिस समय श्रीविष्णुप्रयाग पहुँचा उस समय साँझ हो गई थी। यहाँ विष्णुगंगा अथवा अलकानन्दा तथा धवलीगगा का संगम है। प्राचीन काल मे यहाँ विष्णु की आराधना कर नारदमुनि ने सर्वज्ञ होने का वर प्राप्त किया था। नीलवसना अलकानन्दा की गोद में गैरिकवसना गंगा का आत्मसमर्पण इस स्थान में एक रोमांचकर तथा नयनाभिराम दृश्य उपस्थित कर देता है। यहाँ से वद्रीनाथ केवल सोलह-सत्रह मील रह जाता है।

धवली गंगा के किनारे-किनारे रास्ता बहुत सँकड़ा तथा खतरनाक है, थोड़ा मैदान तथा थोड़ा चढ़ाई का। खड़े दीवाल की तरह चढ़ाई नही है, साधारण है। कही सारा रास्ता टूट कर नदी के मध्य में विलुप्त हो गया है। कही पत्थर पडे हुए हैं, उनको पार करना एक दुस्साध्य कार्य है। कहीं रास्ता ही नही, झरने के जल के ऊपर से ही चलना पड़ता है। कहीं स्तूपाकार वालू और पत्थरो के टुकड़े है, अत्यन्त सावधानी से पॉव रखकर आगे चलना पड़ता है। कल से संगमरमर पत्थर के पहाड़ दिखाई दे रहे हैं, कोई हंस के पंखो की तरह सफेद हैं, कोई गुलाबी हैं, और किन्ही मे नीले रंग और हलदी के से रग का समावेश है। दोनो ओर सफेद पत्थर, वीच मे कल-कल करती गगा वह रही है। थोड़ी-थोडी चढ़ाईवाले पथ पर केवल मै ऊपर की ओर उठता चला जा रहा हूँ; निश्चय ही आज की चढ़ाई से छाती मे दर्द नही होता किन्तु थकावट उत्पन्न हो जाती है—पॉव कॉप रहे है। वुखार नही है, किन्तु शरीर स्वस्थ नही हुआ है। अधपेट खाने तथा उपवास करने से शरीर वेंत की भाँति हिल रहा है। घाटचट्टी पार कर दो मील चढ़ाई चढ़ने के वाद वहुत देर मे थके-माँदे शरीर को लेकर पांडुकेश्वर गॉव मे आ पहुँचा।

गॉव बुरा नहीं है, नदी के ऊपर ही है। ग्राम का ऊँचा-नीचा रास्ता शाखा-पत्तियो तथा पेड़-पौदो के तनो से तैयार की गई कई चट्टियाँ छोटी एक धर्मशाला, पास ही योगवदरी का मन्दिर। एक औषधालय दिखाई दिया, वहाँ झाड़-फूँक, मंतर-जंतर आदि का कारवार था। सामने पर्वत शिखर पर पांडुराजा वास करते थे, मन्दिर मे ताम्र शासन-पत्र मौजूद है। स्थानीय लोगो ने यह समझाने की कोशिश की कि इसी रास्ते स एक दिन पंच पांडव तथा द्रौपदी ने स्वर्गारोहण किया था, इसके प्रमाण-स्वरूप उन्होने कितने ही चिन्ह तक दिखाये। हम स्वर्गद्वार तक जायेंगे या नहीं इस सवध मे अनेको ने प्रश्न किये। शीत

प्रधान देश है, इसी लिए यहाँ के साधारण निवासी सुन्दर तथा हृष्ट-पुष्ट हैं। आज के रास्ते के आस-पास भोज-पत्र के बहुत पेड़ हैं, बीच-बीच मे किसी-किसी चट्टी की छत तो मोटे-मोटे भोज-पत्रो से तैयार की गई है। कही-कही जवाफूलो की तरह पहाड़ है, कोई पहाड़ उज्ज्वल काले रंग का है, कोई नीले आकाश की तरह और कोई पहाड़ दूध की तरह सफेद रंग का है—निर्वाक तथा चकित होकर देखते-देखते हम लोग चले जाते हैं। खाने-पीने के बाद फिर चलना शुरू किया है। पानी से भरे बादल बीच-बीच में सूर्य-लोक को ढककर आकाश में तैरते हुए-से चले जा रहे हैं और हम नदी के किनारे चल रहे हैं। गंगा की धारा अब नीले रंग की नहीं है, कोमल मटमैले रंग की है। नदी इस समय हमारे दक्षिण की ओर है। पथ के निर्देश पर अनेकों बार एक ही नदी के इस पार उस पार जाना होता है। जितनी दूर भी दृष्टि जाती है केवल ऋजु-कुटिल अनन्त कंकड़-पत्थरों से भरी हुई गंगा गर्जन-तर्जन करती भागती दिखाई देती है। पथ से उतर कर पत्थरो का ढेर पार कर नदी के जल को छूना असाध्य कार्य है, यह असभव है। फिर नदी की समतल भूमि को छोड़कर ऊपर की ओर रास्ता गया है, थोडी-थोड़ी घृणोत्पादक चढ़ाई है, घुटनो मे दर्द होने लगता है। कभी-कभी बद्रीनाथ से लौटते हुए दो-चार प्रसन्नमुख यात्री दिखाई दे रहे हैं। सभी के मुख पर खुशी है, आनन्द है और बदरीनाथ का कीर्तन है। कगलो की तरह उनकी ओर देखकर फिर आगे चलता हूँ।

लामबगड़ चट्टी पार हुई। रास्ता आहिस्ता-आहिस्ता ऊपर को उठा है, सिर्फ उठता जा रहा है। इस बार नदी भी उठ आई है, उसका प्रवाह मुखर है, भीम गर्जन करती हुई नीचे को दौड़ रही है। पत्थरो के साथ नदी का खेल देखने पर फिर आँखें नही फिराई जा सकती। कितनी ही बार जाते-जाते रुक जाते हैं, आँखें भरकर देखते-देखते मन मे उस छवि को अंकित कर लेते हैं फिर एक निश्वास छोड़कर आगे बढते हैं। नदी की अविश्रान्त गति की ओर देखकर मनुष्य का मन क्यों बोझिल हो उठता है, यह तो नहीं बतला सकता, किन्तु जल की प्रखर धारा धमनियो के रक्त को जिस तरह हिला देती है वह मै जानता हूँ। एक जगह आकर रुकना पड़ा, इस तरह का ढालू और रपटदार रास्ता है कि बैठे-बैठे नीचे उतरने के सिवा और कोई चारा नही। बैठे ही बैठे नीचे की ओर लाठी टिकाकर नदी के किनारे उतर आये। इस

पार से उस पार जाना है, बीच में रस्सी का पुल है। यह रस्सी का पुल अत्यन्त स्वदेशी, प्राचीन और अकृतिम है। इस पार के पहाड़ के साथ उस पार के पहाड़ के पत्थरों से बँधे दो जोड़े मोटे रस्से, उन्हीं रस्सों के साथ बँधे हुए कई तख्ते—यही पुल है। इसी के ऊपर भयार्त महाप्राणी को पार जाना होता है। और कोई उपाय नहीं, मरने का तो क्षण-क्षण में डर है आँखें मूँदकर, कम्पित देह से, भय और सावधानी के साथ पुल पार कर लिया। पार हो जाने पर जिस पथ को स्पर्श किया उसका रूप देखकर तो आँखें स्थिर हो गई। एक खड़ा स्मृति-स्तम्भ-सा जिस पर चढ़ने के लिए सीढ़ियाँ नहीं। बाबा बद्रीनाथ और कितनी बाधाएँ तथा कितने विघ्न उपस्थित करेंगे? किन्तु बाबा अभी आठ-नौ मील दूर हैं, इस पथ को सुगम कर देना उनके बाप के लिए भी साध्य नहीं है। तब क्या हो, पत्थर और मिट्टी की दीवाल खुरचते-खुरचते, नाक घिसते-घिसते, लेटकर, चित होकर, बद्रीनाथ के पुरखाओं की चौदह पीढ़ियों का श्राद्ध करते हुए, लाठी को दाँतों से मजबूत पकड़ कर, भारी परिश्रम से अन्त में एक समय ऊपर उठ गया। धन्य तीर्थ! लेकिन, यही तो बाबाजी के मन्दिर में जाने के लिए राजपथ है, नान्यः पन्थाः। इतना धैर्य धारण कर और इतना कष्ट सहनकर जा रहा हूँ, पहुँचने पर दिखाई देगा शायद एक पत्थर का स्तूप अथवा किम्भूतकिमाकार एक तथ्यहीन गोलमाल। तीर्थकामियों की श्राप-युक्त कातरता से बद्रीनाथ चिरगौरवान्वित हैं। नीरोग, युवा, आनन्दोज्ज्वल, सुगठित देहवाले तथा बलिष्ठ यात्रियों के ऊपर बद्रीनाथ की दृष्टि नहीं है; मुमूर्ष, असमय में ही वृद्धावस्था को प्राप्त हुए, पीड़ित देह-धारी, चलने-फिरने की शक्ति से भी हीन—इनके बिना उनका काम नहीं चल सकता। इनके कारण ही उनकी इतनी महिमा और इतना गौरव है जो पथ उनके भक्तों के आने का पथ है उसमें उन्होंने दुर्भिक्ष, महामारी का भय, महासंकट, अकालमृत्यु और भयंकर व्याधियाँ फैला रखी हैं। आर्त का आर्तनाद ही उनकी पूजा का मन्त्र है, मनुष्य के बाह्य कलुष और मालिन्य से ही उनका आनन्द आयोजन है। दुःख, दुर्योग और पीड़न के द्वारा ही तीर्थ-यात्री अपनी आन्तरिकता की परीक्षा देते हैं, इसी लिए यह जान पड़ता है कि उनकी शारीरिक गन्दगी से बद्रीनाथ का पथ और मन्दिर अपवित्र नहीं होते।

हनुमान चट्टी में पहुँचकर उस दिन की यात्रा खत्म की। भारी सर्द हवा से सारा शरीर थर-थर काँप रहा है, फिर बर्फ के किनारे पहुँच

गये हैं। आकाश मे बादल छाये हैं, बारिश हो रही है, चारों दिशाओं में अँधेरा छा गया है। कल सुबह चलकर बद्रीनाथ पहुँचेंगे, यात्रा ख़त्म होगी। पास ही मे हनुमाजी का प्राचीन मन्दिर है, किन्तु भीतर घुस कर दर्शन करने की सामर्थ्य नहीं है। बाएँ हाथ की ओर एक पक्के धर्मशाला की दूसरी मंजिल मे चला आया। उस समय भीतर-बाहर बहुत यात्री वहाँ पर जमा थे।

'ओहो, यह बाबा ठाकुर! आ गये?'

फिर कर देखता हूँ तो चारू की मा। मैंने कहा—हाँ आ गया। सब अच्छे तो हैं? गोपालदा कहाँ हैं?

भीतर से शीतार्त कण्ठ से सानन्द उत्तर मिला—भाई आओ, तम्बाकू पी रहा हूँ, सारे रास्ते में तुम्हारी याद करते-करते सौभाग्य से इस वक्त हम लोग यहाँ से चले नहीं गये!

और सभी बोले—तुम बाबा सन्यासी नहीं हो, संन्यासी होते तो मनुष्य के ऊपर इतना आकर्षण नही होता!

'तथास्तु' कहकर गोपालदा के पास जाकर कम्बल बिछाया। उस समय भयंकर सर्दी से हाथ-पाँव ठिठुर रहे थे। चारो ओर से शीत-जर्जर संध्या धरती पर उतर रही थी।

❀ ❀ ❀

यात्रा करो, यात्रा करो, यात्रीदल,
मिला है आदेश,
अब नहीं समय विश्राम का।

पौ फटने के समय के तरल अन्धकार में काँपते-काँपते सभी रास्ते मे उतर आये। चारों दिशाओ मे बादलो के ऊपर बादल छाये रहने से घोर अन्धकार से घिरे हुए है, बारिश की बूँदे चाबुक की तरह सपासप शरीर पर चोट कर रही है। बाई ओर नदी की एक धारा के मोड़ पर अर्द्धचन्द्रकार रास्ता उत्तर दिशा को चला गया है। हिम-कणयुक्त तीक्ष्ण हवा से दिल का रक्त तक ठंढा हो जाता है, दाँत भी किटकिटाने लगे हैं। फिर केदारनाथ की तरह वैसा ही भयावह प्राकृतिक दुर्योग। वन-बालिकाओ की तरह लता-पुष्पालंकार-शोभित झरने यात्रियो का सादर स्वागत करने के लिए रास्ते के ऊपर ही उतर आये है। कहीं अब जंगल नहीं दिखाई देते, यहाँ अब उनका कोई ठिकाना नहीं, यह तो बर्फ का मुल्क है—कही-कही दरिद्रवेशधारी कई पेड़-पौदे स्वदेशी नेताओ की तरह इकट्ठा होकर हिम के अत्याचार के विरुद्ध

दबी जबान से प्रतिवाद कर रहे हैं। उनके ऊपर से गुजर रहा है दुर्योग का तूफान। नदी का प्रवाह कहीं लुप्त हो गया है, ऊपर जमे हुए वर्फ की शैया-सी बन गई है। दोनो ओर के काले पर्वतो की देह से सफेद वर्फ की धाराएँ नीचे वह रही हैं, मानो घनश्याम वनमाली के गले में मल्लिका की मालाएँ हिल-डुल रही हों।

प्रभात हो गया है, सूर्य के आलोक से रहित प्रभात। प्रभात है अथवा गोधूली ठीक नही कहा जा सकता। सृष्टि का आदि युग जब प्रारम्भ हुआ था, उस समय सूर्य-चन्द्र, गृह-नक्षत्र नही थे, इसी प्रकार के एक अनैसर्गिक अनुज्ज्वल प्रकाश मे बैठकर विधाता अपना काम करते थे। यह प्रकाश जीवन की अन्तिम घड़ियों को तरह गतिहीन और क्लान्त है, अन्तिम दिन की तरह धुँधला और अनन्दहीन जान पड़ता है कि स्थविरत्व का रूप ऐसा ही होता है। आज हमारी शेष यात्रा है और शेष पथ का हिसाब। जिस भारी दल के साथ एक दिन यात्रा शुरू की थी, उनके विषय मे सोच रहा हूँ—उनमे से कितने ही इस समय नहीं हैं, अनेक रुक गये हैं, एक वधा-घोड पर जाते-जाते पाँव फिसलने पर एक मील नीचे नदी के गर्भ मे सदा के लिए अदृश्य हो गया। जो आज साथ मे हैं, उनकी ओर देखकर रोना आ जाता है। किसी को पेट की कोई बीमारी हो गई है, किसी को बुखार है, किसी के कान सुन्न पड़ गये हैं, किसी की आँखें खराब हो गई हैं, कोई अब बातचीत ही नहीं करता, किसी में दिमाग खराब हो जाने के चिह्न दिखाई दे रहे हैं, कोई पहनने के वस्त्रों को फाड़कर पाँवो के तले मे उनकी मोटी पट्टी बाँधकर लँगड़ाते-लँगड़ाते चल रहा है। कुछ दूर जाते हैं, कुछ देर बैठते हैं, पीछे के पथ की ओर बार-बार ताकने है; किन्तु कुछ सोचने से माथे में दर्द होता है, मस्तिष्क-विकृति के भय से जल्दी-जल्दी उठ पड़ते हैं, फिर आगे चलते हैं। अब गर्दन सीधी नही होती, सिर ऊँचा नही होता, अपने पाँवो के चिह्नो की ओर देखते हैं और चलते हैं।

'मेरे लाल ?'

उदासीन दृष्टि से मुख फेर कर देखा, कई बार इस प्रकार गतिहीन यात्रियों के कातरकंठ से सुना है, कुछ जवाब न देकर फिर मुँह फेरकर चला गया।

'और कितना रास्ता बा, मेरे लाल ?'—एक स्त्री निःश्वास छोड़कर रो पड़ी। उसके मुख से झाग निकल रहा था, साथ मे खून के छींटे भी। हाथ मे रिवाल्वर होता तो उसकी यन्त्रणा का अन्त कर देता!

'थोड़ा ही है माई।' कहकर फिर आगे चल दिया। रास्ते की ठीक दूरी नही बतलाई क्योकि बतला देता तो शायद उसके दिल की धड़कन इसी समय बन्द हो जाती। रास्ते की दूरी के सम्बन्ध में किसी थके-माँदे यात्री को नही बतलाया जाता, उससे उसकी शक्ति और उसका उत्साह नष्ट हो जाते हैं।

कई यात्री पंक्तिबद्ध होकर चल रहे हैं। रास्ता आज अत्यन्त सकटापन्न है, कहीं-कही बालूमय किनारा, रास्ता नदी के बीच मे धँस गया है,—अगाध नीचे नदी। भय से पॉव काप रहे हैं। कहीं कुछ इंच मात्र किनारा है, एक ओर को झुक कर, पहाड़ की देह से पीठ घिसकर, आँखें बन्द कर पार चल रहे हैं, कोई पीछे से कभी-कभी प्राणभय से आर्तनाद कर उठते हैं, केवल एक बार पॉव फिसलने से—बस, फिर दुर्घटना नहीं रुक सकेगी, हिम से ढकी नदी के गर्भ में विलीन हो जाना पडेगा।

कुछ देर इसी तरह अन्धे की भाँति दीवाल के सहारे टटोलते-टटोलते फिर एक अच्छी जगह में आ पहुँचे। पास में एक सामान्य पहाडी बस्ती है। लड़कियाँ पीठ पर लकडी का बोझा लेकर बद्रीनाथ की ओर जा रही हैं। केदारनाथ की भाँति बद्रीनाथ में भी जलाने के लिए लकड़ी नहीं मिलती, दक्षिण के जगलो से लकड़ी बटोर कर स्त्री-पुरुप पीठ मे बॉध ले जाते हैं, एक आने में एक छोटी आँटी देते हैं। उनकी गति-विधि की ओर देखकर ऐसा जान पड़ा कि रास्ता खत्म हो गया है।

जब भूत किसी को छोड़ता है तो अन्तिम बार उसका पीड़न फिर दिखाई देता है। फिर प्रारम्भ हुई प्राणघाती चढ़ाई। चढ़ाई, चढ़ाई और चढाई। चलते-चलते एक बार खड़ा होता हूँ, हृदय में एक प्रकार का अजीब कुत्सित शब्द हो रहा है, कानो मे जलतरग की तरह एक अस्वाभाविक कोलाहल गूँज रहा है।

उसके बाद ?

उसके बाद स्वप्न देख रहा था। अर्द्ध-निद्रा के आवेश में एक रूप-लोक जाग उठा, मायामय विचित्र अमरावती—सामने दूर पर एक विपुल विस्तृत हिमाच्छादित प्रांतर, उसी के पास कुहरे स ढका एक ग्राम का अस्पष्ट चित्र, बीच में स्वर्ण-मंडित-शिखरवाला एक मन्दिर, चरणो में प्रवाहित होती हुई जाह्नवी वाला !

निश्चय, निश्चय बच गया हूँ। हृदय में इस समय प्राण चिन्ह

है, इस समय धमनियों में है शेष रक्त-विन्दु, आँखें अभी तक विलकुल अधी नहीं हो पाई है; यही पक्षाघातग्रस्त हाथ, ये पीड़ा-जर्जर पाँव यह शुष्क नीरस देह, यह भग्न अवसन्न हृदय—ये मेरे हैं, यह मैं ही हूँ!

दुर्जय की जयमाला
भर दे मेरे फूलों की डाली

जय वदरी विशाल की जय।

१२ जेठ १३३९

आज का दिन महाकाल की जप माला में शामिल नहीं है, आज का यह हिमकणमय कुहरा भरा प्रभात हमारे जीवन से अलग है, मृत्यु का अंधकार ठेलते-ठेलते हम एक नवीन लोक में आ गये हैं। पहले मन मे यही खयाल हुआ; हम समझते थे कि वचेंगे नहीं। एक निर्दय प्रलोभन, अमर्त्य मरीचिका।

दूर से वद्रीनाथ का छोटा गॉव जव प्रथम वार दृष्टिगोचर हुआ तव इसी वात को विचार कर निर्वाक हो गया। आनन्द व उल्लास प्रगट करने के लिए शारीरिक व मानसिक संगति नहीं। कैसे प्रगट किया जाय? हम इस प्रकार निर्वल हो गये हैं और हमारी शक्ति इस प्रकार शेष हो चुकी है जैसे तेल के खतम हो जाने पर दीपक की दशा हो जाती है दीर्घ पच्चीस दिन का जो दु:खमय इतिहास हमारे पीछे पड़ा है, उसको तो हम भूल ही गये है, आज हमारी यात्रा का शेष है, दु:ख-दहन की निवृत्ति है। जिस पद-चिन्हमय पथ ने एक दिन गॉव की सीमा को पार किया था, जो नदी और जगलो के पार गया था, देश-महादेश जिसने लाँघे थे, आज वही पथ विश्व की ओर प्रसारित हुआ है; हमारी उस दिन की सामान्य तीर्थ-यात्रा आज विराट के चरणों को छू रही है। मन ने पूछा, तुम यही हो? तुम्हारा यही रूप है?—जिसके लिए आया वह तो मन्दिर मे नही, मेरा वह तो सारे पथ मे है। सामान्य मन्दिर मे तो तुम वन्दी नही हो।

गंगा का पुल पार कर गाँव मे प्रवेश किया। गॉव का नाम भी वद्रिकाश्रम है। कोई वदरी-विशाल तथा कोई नारायणाश्रम भी कहते है। पहले वाऍ हाथ की ओर एक छोटा डाकघर मिलता है। उसके वाद ही रास्ते के दोनो ओर छोटी-छोटी दुकानें नजर आती हैं। आकाश मे वादल छाये हैं, वारिश हो रही है, हवा के जोर तथा असह्य

ठंढ के कारण कही भी इधर-उधर नहीं देखा जा सकता। जल्दी-जल्दी अपने नियत डेरे में चला आया।

डेरे की शान-शौकत कम नहीं है, अच्छे पक्के पत्थरों का दो मंजिला मकान है दरवाजा, खिड़कियाँ, ऊपर जाने के लिए सीढ़ियाँ, सामने पत्थरों से पटा हुआ बड़ा आँगन। यह हमारे पण्डे का घर है। जिस पण्डे के यहाँ हमने आश्रय लिया है वह यहाँ काफी समृद्धिशाली है। ये पाँच भाई हैं। सूर्यप्रसाद, रामप्रसाद आदि। पुत्र का नाम प्यारेलाल है। देवप्रयाग मे भी इनके प्रतिनिधि के तत्वावधान मे हम रहे। पहिले ही इनके आतिथ्य-सत्कार ने हममे इनके प्रति कृतज्ञता की भावना भर दी। नीचे के घर में इन्होने कई कम्वल लाकर हमारे लिए विछा दिये, लकड़ी लाकर आग सुलगाई। इसी आग तथा कम्वल ने उस दुर्योग मे हमें जीवन-दान दिया। सूर्यप्रसाद और रामप्रसाद की तरह इतने भद्र और मिष्टभाषी पण्डे तीर्थों मे वहुत ही कम देखने मे आते हैं। प्रत्येक वंगाली तथा अन्य प्रान्तो के यात्री लोग इनके डेरे मे चले आये।

दुर्योग और ठण्ढ के कारण अकर्मण्य होकर सारे दिन घर के भीतर वैठकर बहुत वेचैनी से वक्त गुजारने लगा। मक्खियाँ तो नहीं हैं, किन्तु कपड़े-लत्ते और कंम्वल में कीड़ों का भयानक उत्पात है। आहारादि तथैवच। चूल्हे-चौके के लिए जगह भी नही है और सुविधा भी नहीं है। इसके अतिरिक्त शक्ति भी नहीं है—अतएव अमरसिंह के मार्फत पूरी मॅंगवाई। धन्य पूरियाँ! पूरी ही सब जगह अगति की गति है।

कैसे अपरान्ह कटा; किस पथ से आई सन्ध्या! बाहर टप-टप करके उस समय बारिश हो रही थी, हवा से वार-वार दरवाजे व खिड़कियाँ कॉप उठते हैं, वन्द घर के भीतर आग के चारो ओर वैठकर हम कई लोग वातचीत कर रहे हैं, गोपालदा धीरे-धीरे तम्बाकू पी रहे हैं। बूढ़ी ब्राह्मणी रास्ते से रोग अपने ऊपर चिपटा कर एक जगह कुण्डली-सी वनकर निर्जीव पड़ी है; पर उन्हीं सुविधाओ के साथ कंकाल देहवाली चारू की मा ने जिसमें दुर्दम शक्ति है, अपने घर में पलनेवाली गायो की वार्ता शुरू कर दी है। धीरे-धीरे रात्रि की निद्रा शान्त हो गई।

दूसरे दिन सुवह उठकर, आकाश की ओर देखकर हम सवको वहुत विस्मय हुआ। रॅगीली धूप मे चारों दिशाएँ हॅस रही हैं। आकाश स्वच्छ नील है। आसपास के पर्वतो के शिखरों पर स्तूपाकार वरफ

सूर्य के प्रकाश मे चमक रहा है। नदी के उस पार समतल मैदान मे खेती-बाड़ी का काम हो रहा है, कहीं-कहीं सामान्य वृक्ष-लताएँ बार-बार हवा से हिलने-डुलने लगती हैं, हम परम तृप्ति स चारों ओर निर्निमेप दृष्टि से देखते रह गये। इस सुहावनी धूपवाले अलस दिन को आनन्द उपभोग करने का हमे सौभाग्य प्राप्त होगा, यह हमने स्वप्न में भी नहीं सोचा था। मनुष्य के भाग्य-विपर्यय के बाद जिस तरह सुदिन आता है, आज का यह सुनिर्मल तथा प्रकाश से उद्भासित दिन भी विधाता के आशीर्वाद की तरह हमारे ऊपर उतर आया है। आज सुबह उठकर चलना नहीं हुआ, सारे शरीर ने विश्राम पाया है। कोमल ऊष्ण धूप मे आँखें बन्द कर बैठा रहा।

मन्दिर और देवता के दर्शन की मुझे विशेप लालसा नहीं है, यह सुनकर आश्चर्य से अनेको की आँखे माथे पर चढ़ गईं और वे नाना प्रकार की रायें मेरे बारे मे कायम करने लगे और जब उन्होने यह सुना कि देवमूर्ति के सम्बन्ध मे मेरा ज़रा भी मोह तथा कौतूहल नहीं है, पूजा भी नही करनेवाला हूँ, मुक्ति भी नही चाहता—उस समय तो उनका सारा चेहरा ही बदल गया।

'कुछ मत करो, लेकिन एक बार प्रणाम तो करोगे, बेटा ?'

'किसको ?'

'किसको ! बेटा तुम्हारी बात सुनने से तो देह जली जाती है। खैर, यह तो बतलाओ कि बाप-दादाओ के मुख मे थोड़ा जल भी दोगे या नही ?'

यहाँ ब्रह्मकपाली मे पितरो के लिए पिंडदान करने का विधान है। यह कहा जाता है कि स्वर्गीय पितर स्वर्गद्वार से अञ्जलि फैलाकर अपने वंशजों से इस स्थान मे पिण्ड ग्रहण करते है। गौरीकुण्ड की तरह यहाँ भी एक उष्ण जलधारा है, यात्री बहुत आराम से उसी जल मे स्नान करते हैं। पथ के किनारे एक और स्थान मे भी थोडे गरम जल का एक झरना है, इस जल मे स्नान करने से शरीर मे फुर्ती आ जाती है, अतएव सबकी अपेक्षा यात्रियो का आग्रह इसके प्रति ही अधिक होता है। गगा मे एक भी आदमी को स्नान करते अथवा जल-व्यवहार करते नही देखा गया। हिम से आच्छादित गैरिक वेशधारी गगा को छूने का साहस किसी मे नहीं।

स्खलित देह, नंगे पाँव, मैले वस्त्र, वीतराग उदासीन मन—इस रूप मे धीरे-धीरे मन्दिर की सीढ़ियाँ पार कर भीतर प्रवेश किया।

जाति-वर्ण के विचार से रहित यात्रियों की भीड़ भीतर कोलाहल कर रही है। आज सभी अपने परम लक्ष्य के पास आ पहुँचे हैं, मुखो पर तृप्ति की हँसी फूट पडी है। किसी का शरीर रोगी है, कोई क्षत-विक्षत है, कोई लँगड़ाते चल रहा है, किसी का गला बैठ गया है—ख़ैर ये सब बाते होती रहे, अपने-अपने ललाटो पर उन्होने जय का टीका तो लगाया है। मन्दिर के भीतर अन्धकार है, नाना अलकार और आभरणो स आवृत बद्रीनाथ का स्पष्ट दर्शन करना एक भारी कठिन कार्य है। शंख-चक्र-गदा-पद्मधारी विष्णु की मूर्ति और आस-पास मे छोटे-छोटे देवी-देवता हैं। मूर्ति छोटी है। सामने अन्धकार में घी का दीया जल रहा है, पास ही में अन्नभोग कतारो मे सजाया हुआ है। श्रीक्षेत्र की तरह यहाँ भी अन्न के बारे मे छूत-अछूत का कोई विचार नही।

इतने दिनों का पथश्रम आज इस सामान्य में ही समाप्त हो गया। दुःख, पीड़ा, कातरता, उपवास और पथश्रम, इतना कौतूहल, व्यथा-वेदना और आयोजन सब आकर रुक गये एक प्रस्तर मूर्ति के चरणो पर! कितनी मृत्यु-महामारी, कितना क्लेश और उत्पीडन, कितने रास्तो की कितनी घटनाएँ और संघात—आज क्या उनका कोई मूल्य नहीं?

कौन कहता है मूल्य नहीं! कितने युग-युगान्तर तथा कितने काल-कालान्तर व्यापी लोक-प्रवाह अविश्रान्त रूप से इस विराट के तीर बहता आया है, प्यास से आर्त कोटि-कोटि हृदय मुक्ति-वासना में विगलित अश्रुओ से टूट पड़े हैं इसके चरणो के पास—आज मेरी तरह नगण्य मनुष्य के शिथिल सन्देह और अविश्वास से क्या उसका मूल्य कम हो जायगा? इतना बड़ा अहकार तो मुझमें नहीं!

चारो ओर एक बार देखा, मेरी समस्त नस-नाड़ियो के भीतर एक अजीब आन्दोलन जाग उठा है। क्या इसी का नाम नास्तिक की आत्म-ग्लानि है? क्या इसी को अविश्वासवादियो की अवचेतन प्रतिक्रिया कहा जाय? किन्तु, मेरा स्वाभाविक अहकार नष्ट हो जाय, मिट जाय व्यक्ति-स्वातन्त्र्य का मेरा निष्फल दम्भ—मैं इन्ही में स एक जन हूँ, इनकी ही भाँति भक्ति-रस की बाढ़ मे मैं भी बहता चला जाना चाहता हूँ। उन सबकी सम्मिलित प्रार्थना के भीतर अपने कठ को मिलाकर मेरी भी यह कहने की इच्छा हुई, हे देवाधिदेव, मेरा सन्देह और अविश्वास दूर करो, जो कुछ झाड़-झंखाड़ है उस दूर कर दो। हे पारस-मणि, जितना मालिन्य, जितनी कुरूपता, जितनी विरूपता, जितना

कुछ आवरण है—तुम्हारे स्पर्श मे वे सब सुन्दर हो उठे ! सुदूर प्राचीन-काल से जो तुम्हारी दर्शन-कामना लिये इस दुर्योगदुर्गम पथ से, दलों के बाद दलों मे चले आ रहे हैं, महाकाल के प्रखर प्रवाह की चोट से जो दल के दल अदृश्य हो गये हैं, हे देव युग-युगान्तर से कोटि-कोटि अगण्य नर-नारियो की मोक्षलाभ की वही अतृप्त वासना इस तृषातुर हृदय मे आश्रय किये हुए है—तुम इसको मुक्ति दो ! अविश्वास नहीं, सन्देह नहीं, मोह नहीं—मैं उसी सनातन काल का हिन्दू हूँ, उसी चिरन्तन हिन्दूकुल में मेरा जन्म हुआ है, मेरी धमनियो के खून में पवित्रता की वही पुरानी भावना है—तुम्हारे चरणों के नीचे मैं पद-दलित होना चाहता हूँ, धन्य होना चाहता हूँ, कृतार्थ होना चाहता हूँ !

बोझल मन से फिर पथ के पार जाकर डेरे के किनारे बैठ गया। नील अकाश में सूर्य चमक रहा है, दोनो ओर फेन के समान शुभ्र हिमाच्छादित पर्वत-शिखरो पर सूर्य किरणें प्रतिबिम्बित होकर अद्भुत सौन्दर्य विकीर्ण कर रही हैं, महायोगी की लम्बी जटाओ की तरह बरफ की धाराएँ झरनों के रूप में नीचे उतर आई हैं। दूर समय-समय पर मन्दिर में काँसे का घंटा बज उठता है। उस पार पहाड़ के नीचे एक सरकारी बँगला है. उसी के पास खेती की कोमल हरी भूमि है। तीन-चार महीनों के भीतर ही जो-कुछ फसल तैयार हो सकती है, की जाती है—उसी के बाद शरद काल से फिर यह राज्य धीरे-धीरे वर्फ के गर्भ मे समाधिस्थ हो जाता है, गाँववालों को नीचे चला जाना पड़ता है। बद्रीनाथ का मन्दिर अदृश्य हो जाता है, पुजारी रावल महाशय जाकर जोशीमठ में वास करते हैं, जाड़ो मे वे उसी स्थान से बद्रीनाथ को पूजा अर्पण करते हैं।

'दादा ?'—मेरे कान के पास एक करुण कण्ठ काँप उठा।

मुख फिराकर देखा। वह कंठ-स्वर मैं आज भी नही भूल पाया।

'आप आ गये हैं ! अच्छे तो है ?'

ब्रह्मचारी को सहसा पहचान न पाया। पहिचानने की बात भी नही थी। रूखा, दुबला-पतला शरीर, जाड़े से सूखा तथा फटा मुख दोनो पाँव वीभत्स रूप मे गलित-क्षत, हाथ-पाँवो मे भयानक सूजन ! हाँ कहकर निःश्वास लेते-लेते वह पास आकर बैठ गया। बोला—कई दिन ज्वर से पीडित रहा। फिर यह पाँव ..कितनी यन्त्रणा है, जो दिन कट जायँ ! उसकी आँखों मे आँसू आ गये।

'पाँवो में यह सब कैसे हुआ ?'

'मक्खियो के काटने का घाव ..दादा, आपके प्रति मैंने सौ अपराध किये हैं, आपको छोड़ने से ही मुझे यह दड मिला है, मुझे क्षमा कीजिये !'

उसके दाएँ पाँव मे बाल तथा कौडी बँधे हुए थे, उस ओर देखकर मै वोला -क्षमा करने जैसी वात तो कुछ है नहीं। तुम मुझको एक दिन छोड़कर चले आये उस वात को भूल गया हूँ।

मेरी यह वात झूठी नहीं है। जिस ब्रह्मचारी के प्रति उस दिन ममता और स्नेह मे अन्धा हो गया था, जिसको छोड़ जाने मे छाती फटी जाती थी, आज उसके वारे में मुझे कुछ ख़याल ही नही, मेरे मन का मन्दिर धुल-पुँछकर साफ हो गया है। ब्रह्मचारी के सवंध में आज मेरा हृदय बिलकुल उदासीन है।

'सोचता हूँ, इस पाँव से अब फिर हिमालय कैस पार किया जाय ऐसा जान पड़ता है कि अव नही वचूँगा !'

मैंने कहा—मरेंगे तो सभी एक दिन ब्रह्मचारी !

ब्रह्मचारी कुछ देर चुप रहा, उसके बाद बोला—आपके ऊपर ही आशा लगाये मैं यहाँ चार दिन से हूँ, रोज दो-एक बार आपको खोजने निकल जाता था कि आप आये हैं या नही। यह जानता हूँ कि मेरी सब आवश्यकताओ की आप पूर्ति कर देंगे।

वह फिर बोला—उपवास करते-करते आया हूँ, उपवास करते-करते ही जाऊँगा, किन्तु रामनगर से वृन्दावन तक रेल का किराया न होने से काम कैसे चलेगा मैं केवल आपके ही भरोसे पर हूँ

मुख उठाकर देखते ही वह फिर बोला—यदि कुछ भिक्षा दें।

एक दिन खुद अपने आग्रह से ब्रह्मचारी का खर्चा उठाया था, किन्तु वह हृदय आज मुझमें नही रहा। उसकी करुण प्रार्थना के प्रति हठात निर्दय होकर बोल उठा—साथ में मै जमीदारी तो वाँध नहीं लाया हूँ !

देखते-देखते उसका मुख अपमान, भय और निस्सहायावस्था से सफेद हो गया। उसका दुर्वल और रोगी शरीर इस आघात को नही सह सका, वह एक पत्थर के सहारे पीठ रख कर बैठ गया।

मैंने कहा—मै दान करने के लिए नही आया हूँ, पुण्य करने के लिए भी नहीं, भिक्षा मेरे पास से न मिल सकेगी।

'थोड़ा वहुत . आठ आना पैसा ही ..?'

कठोर कंठ से मैंने उत्तर दिया—नही।

ब्रह्मचारी और कुछ नहीं बोला, केवल चुपचाव अपने दो अकर्मण्य पाँव सावधानी से ठीक कर झुककर उसने नमस्कार किया, उसके बाद बहुत कष्ट से उठकर धीरे-धीरे वह चल दिया। ब्रह्मचारी की कहानी का यही परिशिष्ट है।

जीवन का और एक पहलू है। जिससे आघात मिलता है, जो अवहेलना और अनादर करता है, उस पर विजय प्राप्त कर उसको करतलगत करने के लिए मन छूट पड़ता है, और जहाँ मुझे ही कोई पूरा आत्म-समर्पण कर रहा हो, मेरा ही सहारा लेकर जो बचना चाहता है उसके प्रति मेरी निर्दय अवहेलना, निष्ठुर उदासीनता जीवन का दूसरा पहलू है। जीवन की गति सीधी नहीं है। ईश्वर को उदासीन बतलाकर उसको पाने के लिए हमारी इतनी उत्कंठा और इतनी व्याकुलता है। देवता बातों ही बातों मे हमारे करतलगत होने से उनका मूल्य कम होता जाता है, हमारी कामना और हमारा कौतूहल भी थमते जाते हैं।

प्रेम दोनो ओर से होता है। एक ओर किसी को अवलम्ब करने से हृदय रंग और रस से सिक्त हो जाता है, प्रेम को केन्द्रित कर मनुष्य का आत्मविकास होता है; दूसरी ओर हम दौड़ पड़ते हैं उसकी ओर जिसको नही प्राप्त करने, जिसको प्राप्त किया ही नहीं जा सकता। अनेक मनुष्यो के बीच में हम चिर-ईप्सित मन के अनुरूप मनुष्य को खोजते-खोजते चले आते हैं, अनेक जीवनों के घाट-घाट मे उसको अन्धो की तरह टटोलने-टटोलते जाते हैं, निष्फल होकर घूमते-फिरते हैं।

ग्राम की अपेक्षा बद्रीनाथ को क्षुद्र शहर कहा जाय तो कोई हानि नहीं। केवल वही पत्थरो से पटा हुआ करीब दो सौ गज लम्बा रास्ता है, किन्तु उसी के ऊपर दोनो ओर दुकानो की पंक्तियाँ हैं। कपड़े-लत्ते, मिरच-मसाला, चाल-दावल, खिलौने-आभूषण, पूरी-कचौरी—अनेक दुकानें हैं। जब एक जगह पुस्तको व तस्वीर की दुकान देखी तो बड़ा आश्चर्य हुआ। कैसा भाग्य नाटक—उपन्यास नही—धर्मग्रन्थ! इससे भी अधिक ताज्जुब तो तब हुआ जब चाय व पान की दो दुकानें देखीं। प्रसन्न होकर चाय पी।

जाड़े की हवा के कारण शरीर को कम्बल में लपेट कर अनाथ बालको की तरह इधर-उधर फिर रहा था, उस समय सन्ध्या होने में कुछ देर थी। रास्ते के दक्षिण ओर शिलाजीत तथा चँवरो की कई दुकानें देखते-देखते चला जा रहा था। ये दोनो वस्तुएँ दुष्प्राप्य हैं।

शिलाजीत तो पहाड़ों की चट्टानो पर धूप मे पिघलता है। किसी-किसी खास पहाड़ क एक अलक्ष्य शिखर पर कोलतार की तरह यह वस्तु मधु के समान एक जगह में प्रकृति की इच्छानुसार जमा होती है। कभी एक बार इस चीज़ को जीभ से चख कर मनुष्य ने सोचा कि खाने मे तो यह बुरी नही है। चखते-चखते उसने पेट मे डाल लिया। मालूम हुआ कि शरीर के लिए यह स्वदेशी सैनेटोजन की तरह पुष्टि-कारक तथा बल-वर्द्धक है। इस तरह उसने तमाम पहाड़ो को छान डाला, हिमालय की धूप का शोषण कर इसे ले आया और तोले के हिसाब से इसे वेचने लगा। एक तोला अच्छी शिलाजीत का दाम आठ आना होता है। इसके बाद चँवर। हिमालय के बर्फीले प्रदेश मे सुरा गाय पाई जाती है। कोई इसको चँवर गाय भी कहते हैं। कठोर बर्फ मे वह घूमती-फिरती है। बर्फ की तरह सफेद देह होती है। उसके बाल भी सुन्दर होते हैं। बस फिर क्या था, उसी गाय की पूँछ के बालों को काट कर लाने लगे। हिन्दू-सन्तान गाय को काटने लगी, उसके बालों के गुच्छो को एक मूँठ से बाँधकर, गृह-पालित पशुपति के ऊपर पखा झलने लगी।

एक बड़ी दुकान में जाकर चँवर तथा शिलाजीत की परीक्षा कर रहा था। गोपालदा पास ही मे थे, इन दोनो वस्तुओ के प्रति उनका भारी मोह है। मोल-तोल करने के लिए उन्होने मुझ ही को आगे ठेल दिया, मैंने एकाएक अन्धे की तरह अनर्गल उर्दू मिश्रित हिन्दी बोलना शुरू कर दिया। दुकान मे काफी भीड़ थी, स्त्री-पुरुषो की भीड़ से दुकानदार हकबका-सा गया। उसकी वस्तुओ को उलटा-पलटा कर अपने मन के अनुरूप एक छोटे चँवर को खोज रहा था।

हाथ बढाकर एक चँवर पकड़ते ही दूसरी ओर से एक और हाथ आकर उसके ऊपर पड़ गया। जो हिन्दुस्तानी लड़की अब तक जोर-जोर से बोलती हुई सब दुकानों को अपनी बातचीत, हँसी, तर्क तथा मोल-तोल से मुखरित कर रही थी, यह हाथ उसी का था। स्त्रियो को मैं अधिक सुविधा देने के लिए राजी नहीं, इसलिए चँवर को हाथ में ले लिया।

'ओइटी किन्तु आमार पछन्द, दिन आमाके।' *

चकित होकर चँवर उसके आगे रख दिया। भीड़ के भीतर गर्दन झुकाकर बोला—आप बंगालिन हैं?

---

* किन्तु वह मुझे पसन्द है, मुझे दे दीजिये'।

वह भद्र महिला हँस कर बोली—क्या देख कर सन्देह होता है? हिन्दी सुन कर?—क्यो, नानी कहाँ गई? हमारे चौधरी महाशय? ओ भगवान, ऐसा मालूम होता है कि वे वहाँ से दुकान समेत सारा सामान उठा ले जायँगे। यह चँवर आपको कैसा लगता है?

मैंने उत्तर दिया—चीज़ अच्छी है, छोटा-सा है, दाम भी कम है, केवल दस आने है।

उन्होंने कहा—यदि मन के अनुकूल हो तो दाम ज्यादा भी दिये जा सकते हैं। ठीक, इसी को मैंने लिया, किन्तु मन को नहीं भाया। मेरे घर में हैं नारायण, उन्ही के लिए..यह कहकर उन्होंने फिर दुकानदार के साथ शिलाजीत के सम्बन्ध मे बातचीत छेड़ दी।

अपनी हिन्दी भाषा को मैंने संयत किया, इनके साथ नही चल सकूँगा, शायद कुछ कहना चाहता हूँ और कुछ और ही कह जाऊँ—ज़रूरत नहीं।

'आप यहाँ क्या करने आये हैं?' उन्होंने सिर से पैर तक एक बार मेरी ओर देखा।

'तीर्थ के लिए आया हूँ—जिसके लिए सभी आये हैं।'

'तीर्थ के लिए!'—होठ उलट कर वे एक ऐसी अवज्ञापूर्ण हँसी हँसी कि मैं अत्यन्त कुण्ठित हो गया, ज़रा-सी देर मे ही मेरी छब्बीस दिन की यह सारी तीर्थ-यात्रा मानो मिथ्या हो गई। बोलीं—मालूम होता है कि तीर्थ करने के लिए आपकी यही उम्र है? ओ भगवान, आपकी वेश-भूषा भी आधे-संन्यासियों की-सी है।

उनकी बातचीत तिरस्कार की तरह सुनाई दी। गोपालदा के पास सटकर बैठ गया। उनकी चमकती आँखो के सामने मैं ज़रा देर मे ही संकुचित हो जाता हूँ। देखते-देखते नानी और चौधरी महाशय आकर खड़े हो गये। सहज ही मे परिचय हो गया। माल-असबाब, ख़रीदने सभी उठ पड़े। साथ मे सूर्यप्रसाद पण्डा था। स्वर्गद्वार के सम्बन्ध मे बातचीत छिड़ी। स्वर्गद्वार जाने के लिए बरफ के भीतर दो दिन चलना पड़ता है—मनुष्य के लिए यह पथ अगम्य है। स्वर्गद्वार के रास्ते से जाने पर 'शतपंथ' मिलता है—इसी पथ के प्रथम प्रान्त मे पाण्डव पत्नी देवी द्रौपदी भूतलशायिनी हुई थी—महापुरुष तथा प्रकृत संन्यासियो को छोड़ कर साधारण मनुष्य वहाँ जाने मे असमर्थ है। यहाँ से छः मील रास्ता बरफ के भीतर चलने से वसुधारा का दृश्य दिखाई देता है। वसुधारा हिम का एक प्रपात है। बरफ के उच्च शिखर

से वायु-प्रताड़ित एक जलधारा असंख्य विन्दुओं में चारों ओर छिटक पड़ती है, अनेक निम्नगामी फुहारों की तरह—उसी का नाम वसुधारा है। रास्ने में खडे-खडे बातचीत हो रही थी, इस समय ज्ञानानन्द स्वामी जिनके साथ पहले हरिद्वार में मुलाकात हुई थी, सदलबल आ गये; हमारी बातचीत में उन्होने भी हिस्सा लिया। यहाँ से लौटने के वक्त जोशीमठ से होकर कैलाश जाने की इच्छा मेरे मन में थी, अतएव कैलाश की चर्चा छिडी। सारी बातचीत मे, सारे तर्क और सारी आलोचना मे तथा सारी समस्याओ के ऊपर जो अनर्गल रूप से अपने मतामत को प्रगट करती जा रही थी वह थी नानी की नातिन। उसकी रुचि परिमार्जित थी, उसकी बातचीत में उसकी बुद्धि का आभास मिलता था, उसके व्यवहार मे कोई सकोच न था और सहज ही मे सबको लाँघकर उसका व्यक्ति-स्वातंत्र्य हम सभी के ऊपर प्रतिष्ठित हो गया। चौधरी महाशय ने कहा कि वे औसतन प्रतिदिन दोनो वेलाओ मे दस मील से अधिक न चलेंगे थोड़ा-थोड़ा चलना ही अच्छा है। उनको यहाँ आज तीन दिन हुए हैं, कल सुबह देश की ओर रवाना हो जायँगे।

मैंने कहा—हम तो रोज बारह-चौदह मील तक चलते हैं।

नातिन बोली—तब तो हमें रास्ने मे ज़रूर पकड़ लोगे—चलो नानी तुम्हारे लिए कुछ लेकर डेरे में लौट चलें, चौधरी महाशय जाड़े मे कष्ट पा रहे हैं। हमारे चौधरी महाशय कैसे मनुष्य हैं, जानते हैं?—शान्त, शिष्ट, सीधे-सादे, क्रोधहीन। पूजा-अर्चना कर चलते हैं, इनके शिष्य-सेवक हैं—और क्या कहूँ चौधरी महाशय?

चौधरी महाशय स्नेह की हँसी हँस कर बोले—अब अपनी नानी की बात भी कह दो? मेरी गैरहाजिरी में ..

सभी हँस पड़े। मैंने कहा—चाहे जो कुछ कहिये, एक बात देखकर तो ईर्ष्या होती है, वह है आपके साफ-सुथरे चमकते कपड़े-लत्ते।

नातिनी एकाएक सबकी ओर देखकर बोली—हम बैरागी होकर तो यहाँ आये नही हैं, साज-सरंजाम लेकर आये हैं।

यह बात क्या थी, चाबुक की एक चोट थी। ठीक ही तो है, पाँवो में उनके मोजे हैं, सफेद जूते हैं, शरीर पर पशम की एक बैंजनी चादर ओढ़े हुए हैं, ऐश्वर्य में ही वह पली हैं। उनकी बातचीत से बहुत आसानी से ही यह बात मालूम हो जाती थी कि वह एक सम्भ्रान्त परिवार की हैं।

गोपालदा को लेकर चलने ही को था कि नातिन ने पास से एक

और अलक्ष्य उक्ति की—आप सभी तीर्थ-यात्रा के लिए आये हैं, मैं आई हूँ घूमने के लिए।

जल्दी-जल्दी पाँव उठाकर बोला—घूमने के लिए तो यह देश है ही। आइये गोपालदा, और एक प्याला चाय पी जाय।

चाय पीने के बाद गरम पूरी लेकर जाड़े की हवा में काँपते-काँपते डेरे में चले आये। पर्वतों पर संध्या का अन्धकार उतर रहा है। सूर्य की गरमी सूर्य के साथ ही चली गई है, फिर बर्फीली ठंढी हवा चलने लगी है। भीतर आग जल रही है; उसी के चारों ओर वृद्धाओं की मंडली नितान्त गँवारू बातचीत में निमग्न है। थोड़ी देर पहले रास्ते के ऊपर खड़े-खड़े सभ्य व संस्कृत लोगों की जिस उच्च भावना व स्वर का संचय किया था उसके साथ तुलना करने से हृदय एकाएक घृणा से भर उठा। यह जानता हूँ कि यह मेरा पक्षपात न्यायानुकूल नहीं है, किन्तु यह क्या बिलकुल अस्वाभाविक है? मन में आया कि इस कुत्सित, कुरुचिपूर्ण ग्राम्य-संसर्ग को छोड़कर कहीं भाग जाऊँ, इनका बोझा और वहन नहीं कर सकता।

पार्टीबन्दी की भावना तो नहीं, लेकिन दलों की विभिन्नता की ओर मन आकर्षित होता है। वैचित्र्य अथवा विभिन्नता की क्षुधा मनुष्य में स्वाभाविक है। वैचित्र्य में ही उसको आन्तरिक आनन्द मिलता है। प्रति क्षण वह नूतनतर जीवन, अभिनव चरित्र तथा विस्मयकर घटनाओं के घात-प्रतिघात की कामना करता है। शिल्पी का मन भी इसी प्रकार होता है। कहीं भी वह बन्धनों को नहीं मानता। स्नेह के लिए नहीं, प्रेम के लिए नहीं, अवस्था के लिए भी नहीं। सब किसी को वह स्पर्श करता है और सब कुछ अतिक्रम कर वह चला जाता है। सामाजिक विधि-निषेध, नीति और धर्म की बाधा-विपत्ति, मनुष्यत्व का नाप-दण्ड—ये सब उसके लिए नहीं हैं। शिल्पी वास करता है एक विचित्र जगत में, मानव-समाज में वह एक अमर देवदूत है।

देखते-देखते बुढ़ियों की बातचीत बन्द हो गई, एक-एक करके सो गईं। घर के कोने में हरीकेन लालटेन मन्दा किया हुआ है, एक ओर लकड़ियाँ जल रही हैं, भीतर काफी गरम हो गया है। पास में गोपालदा कम्बल के नीचे न जाने कहाँ छिप गये हैं, उनकी साँस चलने का भी शब्द नहीं सुनाई देता। उनका खयाल है कि इस बन्द घर के भीतर भी कम्बल से मुँह बाहर निकालते ही वह डबल निमोनिया के शिकार हो जायँगे। हमारी आँखों में तन्द्रा आ गई थी।

बाहर शोर-गुल सुनाई दिया और साथ ही यह भी समझ गया कि कोलाहल बंगालियो की एक मडली का है।

'कौन हो भाई, थोड़ा प्रकाश तो दिखाओ बाबा, रास्ता मालूम नही है ? बेटा, ज़रा दया कर रोशनी तो दिखाओ, भारी अन्धकार है।'

'किसी दिशा में कुछ भी नहीं सूझता, वे सीढ़ियॉ कहॉ गईं ?'

'बुआ फिर यह रतौंधी, इस तरफ़ ओ इस तरफ़, बक की तरह मत चलो बुआ, अभी मरोगी, ख़ैर जो भी हो, खूब रुक-रुककर। हम सभी ठीक तो हैं, हाराधन के दस लड़के ? कोई खो तो नहीं गया ?'

'कानी तो थी, इस बार प्रकाश के बिना लॅगड़ी भी हो गई। अरे भलेमानसो, बोलो तो, कोई कही है बाबा, रोशनी लेकर ज़रा बाहर तो आओ, हम तो अब बाघ के पेट मे नही जा सकते।'

कम्बल छोड़कर उठा और रोशनी तेज कर लालटेन को हाथ मे लिये बाहर आया।—'अहा, आओ बाबा आओ, छोटी उम्र लेकिन गुण कितने हैं !'

एक व्यक्ति ने कहा—मालूम हो गया कि तुम्हारे शरीर पर मनुष्य का चमड़ा है, इतनी जोर से बुला रहे हैं, इस शीत में

'इस ओर को करना ज़रा यह लालटेन, हॉ, ठीक है, थैंक यू !'

'ओहो, बाबा तुम्ही उठकर आये हो, अहा जीते रहो।'

'जान पडता है अब नानी ने उनको पहिचान पाया है ?—खूब सावधानी से चौधरी महाशय, सीढ़ियो मे ठोकर मत खाना, उधर शायद विजयादीदी वगैरह सोच रही हैं कि हम खो गये हैं, सच है बापू, किताब खरीदने जाने से हमें बहुत देर हो गई, धर्म-धर्म मे ही तुम सब अस्थिर हो जाते हो।'

एक ने कहा—हॉ बाबा, क्या तुम्हारा कैलाश जाना निश्चित है ?

नानी सीढ़ियो पर चढ़ रही थी, लालटेन उठाकर बोला—अभी ठीक नही कह सकता। वह सिर्फ एक खयाल है।

सबके अन्त मे नातिन लाठी लेकर उठी। मुख फिराकर थोड़ा गला झुकाकर बोली—ख़याल नहीं, बदख़याल ! क्या होगा कैलाश जाकर, देश के लड़के अपने देश को चले जायँ।

बहुत दूर जाकर वह फिर बोली—अब अपना डेरा पहिचानने मे आ गया है, आप जा सकते हैं—ओफ़ कितनी सर्दी है, बाबा रे बाबा !

भीतर आकर दरवाजा बन्द कर फिर कम्बल के अन्दर जा पैठा।

गोपालदा चुपचाप बोले—मालूम होता है वही वाचाल लड़कीवाला दल है ? उस लड़की को चैन नही, बैठे-बैठे पाँव नचाती है, . .खून की तेज़ी ऐसी ही होती है।

कुछ देर चुप रहकर बोला—कल चला जाता हूँ गोपालदा।

गोपालदा हाथ पकड़ कर बोले—इस अस्वस्थ शरीर को लेकर ? तीन रातें यही वितानी पड़ती हैं भाई !

मन में मानो एक रुद्ध रोप और अभिमान जाग उठा। मैने कहा—इस समय कैलाश की ओर ही जाऊँगा, आप स्वदेश लौटकर घर से समाचार भेज दीजिये, पता दे जाऊँगा।

'ठहरो, एक चिलम तम्बाकू भरता हूँ।' कहकर गोपालदा उठ बैठे।

रात मे जो तूफान उठा था, दूसरे दिन सूर्य के प्रकाश मे देखा तो सब शान्त हो गया है। आकाश में और कोई मलिनता नहीं है, चारों दिशाएँ स्वच्छ नील-आभा मे चमक रही हैं। यात्रियो को आज अपने-अपने घरो का ध्यान आने लगा है, परिवार तथा आत्मीयजनों की कुशल का खयाल आने लगा है। घोर नींद से आज सभी जाग उठे हैं। अब संचय करने की वारी है। कोई ले रहा है तीर्थ का सुफल, कोई ठाकुर का प्रसाद और कोई तस्वीर तथा पुस्तक। कइयो ने रास्ते से कच्चे सिद्धि के पौदो को तोड़कर उन्हे धूप मे सुखाने रख दिया है। जिनको अधिक धैर्य नहीं है, वे चिट्ठी लिखने बैठ गये हैं। यहाँ के डाकघर की मुहर लगवा कर वे चिट्ठियाँ अपने-अपने घरो को भेजेंगे। आज कोई जल्दी नही, सभी विश्राम ले रहे हैं, इधर-उधर की बातचीत हो रही है, कोई दवा-दारू संग्रह कर रहा है, कोई काँडी खोज रहा है—पैदल लौट चलने की उसमें सामर्थ्य नही है। बीच-बीच में सूर्यप्रसाद और रामप्रसाद अपने मधुर आलाप-व्यवहार से यात्रियो को खुश कर जाते हैं। इस प्रकार के सहृदय तथा भद्र पंडे भारतवर्ष के किसी भी तीर्थ मे बहुत कम मिलने है।

यात्रा संपूर्ण।

पुनरागमन

पथेर साथी, नमि बारम्बार।
पथिक जनेर लह नमस्कार।
ओगो विदाय, ओगो क्षति, ओगो दिन शेषेर पति,
भागा बासार (गृहहीन) लह नमस्कार
ओगो नव-प्रभात ज्योति
ओगो चिर दिनेर गति,
नूतन आशार लह नमस्कार!
जीवन रथेर हे सारथी, आमि नित्य पथेर पथी
पथेर चलार लह नमस्कार!

तीन दिन ठहर कर पन्द्रहवीं जेठ की सुबह हम आखिरी विदा और अभिवादन प्रगट कर तथा अखंड पुण्य संचय कर परितृप्त मन से रवाना हो गये। जादू की तरह नष्ट स्वास्थ्य और लुप्त शक्ति फिर लौट आये। नवीन उत्साह, नई प्रेरणा, सतेज प्राणधारा—इस तरह से स्वस्थ और फुर्तीला पहले कभी अपने को महसूस नहीं किया था। सारे अस्वास्थ्य और क्लेद-कालिमा को बद्रीनाथ रख आया। शरीर में बल, हृदय में उल्लास, पाँवों में दौड़ने की तेजी, खून में गरमी और एक अपरिमेय प्राणशक्ति लेकर सबके साथ चल रहा हूँ। हमारा नया जन्म हुआ है। सुबह अपना सामान कन्धे पर रखकर, लाठी को हिलाता-हिलाता प्रायः भागते-भागते चला। दो घण्टे में हनुमान चट्टी आ पहुँचे और दोपहर को पांडुकेश्वर पहुँच गये। साँझ के बाद जाकर पहुँचे विष्णुप्रयाग और जोशीमठ पार कर तुरन्त सिंहद्वार ही मिला। रात को सोते समय हिसाब लगाकर मालूम हुआ कि आज हम लोग उन्नीस मील चले हैं। इस समय हमारे पाँवों में असीम शक्ति है।

रास्ता हमारा पहिचाना हुआ है, कहाँ क्या है, यह हमें ज्ञात है। हमें लालसांगा वापस जाना होगा, वहाँ से नवीन रास्ते से कर्णप्रयाग की ओर जायेंगे। सभी को इस समय जल्दी है। तीर्थ पूरा हो गया है, पहाड़ी देश असहनीय हो उठा है, अन्दाज़ है कि करीब दस-ग्यारह दिन चलकर ट्रेन में बैठ जायेंगे—मैदान देखने के लिए सभी बहुत उत्सुक हैं। अब हम प्रत्येक दिन यह समझ सकते हैं कि कहाँ दोपहर का भोजन करेंगे और रात्रि में कहाँ ठहरेंगे। दूसरे दिन हमने गरुड़गगा

में रात काटी। सिंहद्वार से गरुड़गंगा सोलह मील है। दूसरे दिन दोपहर को वावला चट्टी पहुँचे। भोजनोपरान्त फिर रवाना होकर शाम को लालसांगा पहुँच गये। तीन दिन चलकर इस वार हम थक गये। चलते-चलते फिर कान सुन्न पड़ गये हैं। मन उदासीन हो उठा है, याददाश्त कम हो गई है। कुछ भी हो, खोज-खवर कर निर्मला ने अपना वही हरीकेन लालटेन वापस ले लिया। साँझ होने मे उस समय कुछ देर थी, लालसांगा में खड़े न रहकर हमने फिर चलना प्रारम्भ किया। इस वार नवीन रास्ता पाया है, हरिद्वार से यह रास्ता कर्णप्रयाग होकर आया है। नवीन पथ मे दो मील चलकर उस दिन हम कुवेर चट्टी मे पहुँचे और रात्रि मे वहाँ विश्राम किया। तीन दिन मे हम पचास मील चले।

सुवह फिर यात्रा। रास्ते मे कही-कही आराम करते जाते है, गोपालदा तम्वाकू का कश लगा लेते हैं, अफीम निगली जाती है, फिर चलना शुरू करत हैं। दो-एक जनो को छोड़कर सभी वूढ़ियाँ कांडी मे चल रही हैं, पक्तिवद्ध होकर कांडीवाले चल रहे हैं। सुवह हम श्री नन्दप्रयाग पार होकर चले। यहाँ नन्दा और अलकानन्दा का संगम दिखाई दिया। यह आख्यायिका प्रचलित है कि पूर्वकाल मे राजा नन्द ने यहाँ यज्ञ किया था। यह एक छोटा शहर है। यहाँ से गरुड़ जाने का नया रास्ता शुरू हुआ है। नन्दप्रयाग मे महेशानन्द शर्मा की दुकान से हिमालय के कई फोटो संग्रह किये। शुद्ध शिलाजीत के लिए यही दुकान प्रसिद्ध है। सर्दी कम हो गई है, धूप तेज हो गई है। एक पहाड़ के वाद दूसरे पहाड़ पर उतर रहे हैं। अभी वहुत रास्ता वाकी है; दोपहर मे सोनला चट्टी पहुँच गये और साँझ को जयकंडी चले गये। वीच मे लगासू चट्टी रह गई।

दूसरे दिन करीव नौ वजे के समय कर्णप्रयाग के किनारे पहुँच गये। सामने पत्थरो के टुकड़ो से भरी हुई वड़ी विस्तृत नदी है, पिंडर गंगा और आलकानन्दा का सगम है। यह वात प्रचलित है कि नदी के किनारे पर्वत के समीप एक वार कुन्ती-पुत्र कर्ण ने अपने पिता सूर्यदेव का दर्शन पाकर अभेद्य कवच आदि को वर रूप मे प्राप्त किया था। नदी के उस पार दक्षिण का पथ गया है रुद्रप्रयाग की ओर, वाईं ओर का रास्ता सीधा गया है मेहलचौरी को। आज हम इसी स्थान से अलकानन्दा से विदा लेगे। यात्री यहाँ नदी के सगम पर पितरो का

नदी का पुल पार करने पर सामने एक बड़ी चढ़ाई मिली। लौटते समय चढ़ाई का रास्ता बहुत ही अखरता है। कोई उपाय नही, हाँफते-हाँफते शहर में चले आये।। शहर काफ़ी बड़ा है। बडे-बड़े पहाड़ी रास्ते हैं, सरकारी बॅगले हैं, अस्पताल है, दुकान-बाजार हैं—एकान्त मे एक मान्य-गरण्य डाकघर है, पुलिस का थाना है। जल-वायु चमत्कारपूर्ण है। अनेक ढूँढ़-खोज के बाद एक धर्मशाला की दूसरी मजिल मे चले आये। शुद्ध गरम दूध और सुस्वादु जलेबी कर्णप्रयाग की दो उपादेय वस्तु हैं।

ठीक तरह से खाया-पिया। यहाँ बिछुड़ने का वक्त आया। हमारे सुख-दुःख का साथी, दुर्योग और दुर्दिन का अन्तरङ्ग बन्धु, पथ-निर्देशक, अमरसिंह यहाँ हमसे विदा लेगा। आज यह जान पड़ा कि वह हमारा आत्मीय नही, वह पराया है, उसको चला जाना होगा।

देवप्रयाग की ओर किसी एक दुर्गम पर्वत के शिखर पर उसका एक छोटा गाँव है। घर मे उसके पिता-माता, भाई-बहिन तथा नव-विवाहिता पत्नी हैं—यात्रियो को मेहलचौरी के रास्ते पर छोड़ कर उसे चला ही जाना होगा। मनुष्य के परिचय-व्यवहार से घनिष्ट आत्मीयता हो जाती है। दुःख के दिन तथा दुर्योग की रातें उसके साथ हमने काटी हैं, वह बन्धु है, वह परम आत्मीयजन है, उससे बिछुड़ने में हृदय मे बहुत दुःख होता है, मन के भीतर से मानो किसी ने जोर से जड़-मूल से उखाड़ कर दूर फेंक दिया हो। अमरसिंह ने यात्रियो के हृदय पर विजय प्राप्त की है—वह विजयी है, भाग्यवान है।

जिससे जो कुछ बन पड़ा—कपड़ा, चादर, कोट, तौलिया, कम्बल और रुपए—उदार हाथो से सब-कुछ उसकी झोली मे भर दिया। बद्रीनाथ ने जिस चीज को नही पाया, उसको पाया अमरसिंह ने। देवता पाते हैं पूजा, मनुष्य पाता है प्रेम। अमरसिंह हमारा बडा आत्मीय-जन है, बहुत ही अधिक आत्मीय।

इस बार मेरे ऊपर यह भार आया कि मैं यात्रियो की देख-भालकर उन्हे ले जाऊँ। साथ मे चल रहा है ज्ञानानन्द का दल। अमरसिंह से पथ के सम्बन्ध मे नाना उपदेश ग्रहण कर तीन बजे हमने फिर यात्रा शुरू की। यह बात तय हुई कि मैं सबके पीछे-पीछे चलूँगा। उस समय रास्ते मे धूप काफी तेज थी।

इस बार गाड़ नदी के किनारे-किनारे रास्ता थोड़ा समतल है, नदी तक उतर कर इस बार सहज ही में प्यास बुझाई जा सकती है।

आहिस्ता-आहिस्ता चल रहा हूँ, सबके पीछे-पीछे। नदी के उस पार कहीं-कहीं गाँव के चिह्न दिखाई देते हैं। नदी के जल मे इस समय सूर्य चमक रहा है। समतल रास्ता होने से चलने की सुविधा हो गई है। गोपालदा को आज आगे चलना होगा, आगे जाकर यदि चट्टी पर दखल नहीं किया जाय तो रात मे बड़ी दिक्कत होती है। अमरसिंह नही है, इसलिए अब से हमे ही सब देखना-भालना होगा।

चलने से पहले गोपालदा तम्बाकू पीने के लिए बैठे; पास से ज्ञानानन्द के दल की लड़कियाँ धीरे-धीरे चली जा रही थीं। सभी दलों मे औरतो की संख्या अधिक है।

'सारा रास्ता तय कर चुके लेकिन ऐसी ओछी चटक-मटक, ऐसे नाज़-नखरे कही नही देखे।'

'बड़े आदमी की लड़की है, उसका ढंग ही निराला है।'

'यदि नही चल सकती थी तो कांडी क्या डाँडी कर लेती? गृहस्थ की लड़की होकर 'हट-हट' करती घोड़े पर सवारी कर रही है, कोई लोकलज्जा ही नही? जब सेंदुर ही मिट कर हाथो मे आ गया तब प्राणो का इतना मोह क्यो?'

'पाँचू की मा ठीक कह रही हो, ऐसी जवान लड़की का इस तरह घूमना!'

बूढ़ियाँ तरह-तरह की बातें करती हुई चली जा रही थी।

मैंने कहा—ये किसके ऊपर इस तरह टूट पड़ी है?

गोपालदा ने कहा—तुमसे कहना भूल गया भाई, मेरा ख़याल है कि उसी लड़की के बारे में यह सब बातचीत हो रही है, वही जो वहाँ बाबा के . ?

उनकी ओर कुछ देर तक मैं देखता रहा, उसके बाद बोला किसके बारे मे कह रहे है?

'समझे नही क्या, वही जो चश्मा पहिने हुए नानी और उनकी विधवा नातिन ..'

'वे तो चले गये है!'

'नहीं, आज कर्णप्रयाग में मुझे वे मिले। लड़की एक घोडे पर चल रही है, उसके शरीर मे दर्द जो है। उनका दल आ रहा है पीछे। अच्छा, मै यहाँ से आगे चलता हूँ।' यह कहकर गोपालदा अपनी मोटी लाठी लेकर ठिगने और मोटे भालू की तरह आगे चले गये। तम्बाकू पीकर वे रास्ते मे तैर सकते है।

कई कदम पीछे चलकर, रास्ते के एक मोड़ पर मुख फिराकर देखते ही चौधरी महाशय का दल दिखलाई दिया। एक भीड़ है। नातिन पहाड के एक कटाव में पाँव रखकर घोड़े पर चढ़ने की कोशिश कर रही है। हँसी का कहकहा उठ रहा है। दूर से दिखाई दे जाने पर हँसकर बोलीं—आप मुँह फिराकर आगे चले जाइये नही तो मै घोड़े पर न चढ़ सकूँगी।

तथास्तु। फिर चलना शुरू किया। खूब तेजी से पाँव बढ़ा दिये। करीब एक मील अकेला चला हूँगा कि खटाखट शब्द सुनाई दिया, पीछे देखा तो अश्वारोहिणी पास ही आ गई है। साथ मे एक साईस है। रास्ता छोड़कर अलग खड़ा हो गया। घोडे की चाल मन्दी हुई। रस्सी की लगाम दोनो हाथो से पकड़कर वह बोलीं—नमस्कार!

'नमस्कार।'

'अच्छे तो हैं? यह सोच रही थी कि अब तो आपसे मुलाकात होगी नही—रास्ता तो करीब समाप्त होने को है। खैर तब भी, आपके साथ वह जो वृद्ध-जन थे, उनको देखकर मुझे थोड़ा धैर्य हुआ। जान पड़ा कि, जाड़े के बाद ही वसन्त आता है। कुछ भी हो बहुत जल्दी आये हैं।'

'आप लोग सब अच्छे हैं?'

'सकुचित होकर बातचीत करने की जरूरत नही। नानी बहुत पीछे हैं, घोड़े के पाँवो के साथ मनुष्य के पाँव नहीं चल सकते। हाँ, सब कुशल-पूर्वक नही हैं। मेरे पाँवो के तले में दर्द है, नानी ने कुछ सुना ही नहीं, एक घोड़ा लिवा दिया। आप इस बार अपने घर को लौटेंगे?'

'यही सोच रहा हूँ।'

उन्होने हँसकर कहा—अब भी सोच रहे हैं? आपकी भावुकता को धन्य है, मालूम होता है कि आपके मुख और आपके मन मे साम्य नहीं है। इतना क्या सोच रहे हैं? हाथ-पाँव छोड़कर बहते जाइये।

मानो प्राणो का तूफान बह रहा हो, जीवन का प्राचुर्य है। निर्वाक होकर चल रहा हूँ।

'आप सब लोग घर से निकले हैं पुण्य-सञ्चय के लिए, में उसके लिए नही आई हूँ। अनेक तीर्थों में गई हूँ, किन्तु तीर्थ करने के लिए नही, योही।' हँसकर फिर बोली—मुझे घूमना-फिरना बहुत अच्छा लगता है। यहाँ मेरा आना कुछ निश्चित नहीं था, चलने के तीन-चार दिन पहले कलकत्ता से काशी मे नानी के पास आई थी; नानी तीर्थ-

यात्रा करनेवाली थीं। मैंने कहा, मै भी जाऊँगी। जाने देने के लिए कोई राजी ही नहीं हुआ। मैंने कहा, मै तो जाऊँगी ही! ये वंधन किस लिए? देश-विदेश के नाम पर मेरा मन पागल हो उठता है, मै आपसे सच कह रही हूँ।

मैंने कहा—इस तरह की हिन्दी और उर्दू आप कैसे सीख गई?

उन्होने कहा—यह ठीक है कि मैं वंगाली की लड़की हूँ, किन्तु वंगाल मे रहती नहीं। वंगाल के साथ केवल पत्र-पुस्तक का सम्वन्ध है। अनेक दिनो तक पंजाव मे रही हूँ। आजकल सारे वर्ष यू० पी० के शहरो मे मैं उन्हे केवल छूती हुई-सी घूमती रहती हूँ। कुछ भी अच्छा नही लगता।

लाल धूप पहाड़ो के माथे पर चली गई है, दिन वीतने को है। किसी किसी पहाड के गर्भ मे अभी से अन्धकार हो चला है। नदी के एक ओर सफेद सरसब्ज फूलो का जगल है और एक ओर काँटो का जंगल। नदी की ओर देखते हुए वीच-वीच म वातचीत हो रही है।

'लेकिन यह मुझे वुरा लग रहा है, मैं तो घोड़े पर जाऊँ और आप पैदल चलें—छुः छुः, क्यो रे, जल नही पीयेगा?—मेरे शरीर का भार कम तो है नहीं, क्षण-क्षण मे वेचारे का गला सूख जाता है..घोड़े की गर्दन को उन्होंने एक वार हाथ से थपथपाया।

रास्ते के ऊपर एक झरना उतर आया है, घोड़े ने गला झुकाकर उसके ऊपर मुँह डाला। घोड़ा नितान्त निरीह एवं निस्तेज है रोगी और दुवला-पतला है। ये घोड़े साधारणतः पहाड़ो मे वोझ लेकर इधर-उधर आते-जाते हैं। माल भी ढोते हैं और मनुष्यो को भी ले जाते हैं।

सेमली चट्टी के वाद सिरोली चट्टी के पास आ गये हैं। वातचीत करते हुए करीव पाँच मील रास्ता पार हो चुका है। उन्होने एक वार पीछे मुड़कर अपनी मडली के रास्ते की ओर देखा।

'मेरे घोड़े का नाम क्या है, जानते है?—विन्दू! इसके लड़के को लेकर इसी कारण से तो शरत् चटर्जी ने गल्प नही लिखी! और देखिये, एक दूसरी समस्या है! मेरे साईस का नाम सभ्य-समाज मे अचल है। नाम क्या है, जानते हैं?—प्रेमवल्लभ। काटकर दो कर दो फिर भी नही सुनेगा वहरा है।'

हम दोनो की हँसी से पथ गूँज उठा। मोड़ को पार करते ही चट्टी मिली। सिरोली चट्टी फलों के वाग मे वृक्षो की घनी छाया मे है। घोडे

से उतरकर वह रास्ते के उस पार की चट्टी मे चली गई और मैं आया इस पार गोपालदा के आश्रम मे।

रात मे नानी के साथ परिचय हुआ। औरतें सुविधा पाते ही सहज ही मे पारिवारिक चर्चा छेड़ देती हैं। उनका घर काशी में है। परिवार-परिजन के सम्बन्ध मे नाना प्रकार की बातचीत होने लगी। उन्होने नातिन का जो पितृ-परिचय दिया उससे मैं सहज ही मे उन्हें पहचान गया। नातिन का नाम रानी है।

'मा-बाप नही हैं, स्वामी की अकाल-मृत्यु हो गई, लड़का सरकारी नौकरी करता था। इस समय प्रायः यात्रा के घर में ही रहती है। छोटी उम्र में यह हालत हो गई . कैसा भाग्य! जो कुछ माहवारी पाती है . .।'

परिचयादि के बाद उठकर चला आया। चौधरी महाशय आदि के रात्रि-आहार के लिए भी व्यवस्था करने का भार मेरे ऊपर आया। थोड़ी देर बाद जब करीब तीन पाव पूरी लेकर उनकी चट्टी के पास जाकर खड़ा हुआ तो देखा कि नातिन और नानी जप मे बैठी हुई है। खड़ा ही रहा। बहुत देर बाद उनका जप पूरा हुआ। मैंने कहा—दाम इसी समय चुका दीजिये, तीन पाव पूरियो के साढ़े सात आने होते हैं।

रानी ने एक रुपया निकाला, खिरीच तो मेरे साथ थी ही, बाकी पैसे लौटा दिये। पैसो को उलटते-पलटते उन्होने हँसकर कहा—यह छोटी दवन्नी, यह क्या चलेगी ?

मैंने कहा—चलाने से तो अचल भी चलता है।—यह कहकर वापस चला आया।

वसन्त के शेष काल मे नदी का रूप गेरुआवस्त्र-धारी तथा तपःशीर्ण वैरागिनी का-सा दिखाई देता है, उसके बालुमय किनारे-किनारे पिंगल-जटाधारी रुद्र संन्यासी आते-जाते हैं ; उसके बाद एक दिन उसी नदी के सर्वाङ्ग में वर्षा उतर आती है, ज्वार का वेग उठ पड़ता है, उसके दोनो किनारे प्राणों के ऐश्वर्य से आन्दोलित हो उठते हैं। जीवन भी ऐसा ही है।

सुबह की धूप में चारो दिशाएँ आलोकित हो रही हैं। आज का रास्ता फिर पर्वतो के गव्हर मे चला गया है। धीरे-धीरे भटोली चट्टी पार हुई है। यह तय हुआ था कि रास्ते में हम मिलेंगे। मैं दो मील आगे चलूँगा, उसके बाद वह अपनी मंडली को छोड़कर, पीछे से घोड़े को हाँककर मुझसे मिल जायँगी। अर्थात्, इस बात का अनुमान हम दोनो ने लगा लिया है, यही ठीक है कि हमारी बातचीत और कोई न सुने।

सभी बातें तो सबके लिए नहीं होती हैं। भटोली चट्टी पार कर बहुत दूर आ पड़ा। गोपालदा थोड़ा बैठकर तम्बाकू पीकर चले गये हैं। मेहलचौरी तक रास्ता खत्म करने की सभी को जल्दी रहती है। पहले पथ पार करना एक कठिन साधना थी, इस बार वह साधना भी नहीं है, दृढ़ इच्छा-शक्ति भी नहीं है, आजकल पथ के प्रति सभी की घृणा है। किन्तु उनमें एक मनुष्य है जो पथ को अब पीड़ादायक नहीं समझता, उसके पाँवो मे चलने का अथक नशा आ गया है तथा अनन्त उत्साह। उसने एक सहज और सबल गति पा ली है। वह कह रहा है—

पथेर आनन्दवेगे अबाधे पाथेय कर क्षय।

घोड़े के खुरो की आवाज को सुनकर पीछे फिरकर देखा तो दूर से अश्वारोहिणी आ रही है। पीछे नदी और पर्वतों की पट-भूमिका में वह ऐतिहासिक युग की दुर्गावती अथवा लक्ष्मीबाई की तरह दिखाई दे रही है। घोडे की पीठ पर बैठने की उसकी भाव-भगी भी तेजस्विनी है। एक स्वच्छ सफेद चादर ओढ़े हुए है, छोटा-सा घूँघट निकाले है, शरीर पर वही गाढ़ी बैंजनी रंग की चादर है। पास ही प्रेमवल्लभ बीड़ी पीता-पीता आ रहा है।

पास मे आकर बोली—भाग्य बड़ा कि आप कैलाश नही गये।

मैंने कहा—कितना अच्छा भाग्य, आप बद्रीनाथ आई।

बोलीं—कल रात खाया था?

हा विधाता, यह क्या घोडे पर सवार लड़की के योग्य प्रश्न है? मैंने हँसकर कहा—यह तो बिलकुल अंतरग की बात है।

वह हँसती हुई चुपचाप बोली—नानी वगैरह आ रहे हैं, आप तेज कदम बढ़ाकर और थोड़ा आगे चले जाइये।

मैंने कहा—नहीं, नानी के सामने ही मै आपसे बातें करूँगा।

'आप क्या स्वराज्य पा गये हैं, कहती हूँ आगे चले जाइये।'—सस्नेह उन्होने धमकी दी।

अतएव आगे ही चला। जाते-जाते आदिबद्री पहुँच गया। सामने ही आँगन के ऊपर नारायण का एक पुराना मन्दिर है, मन्दिर मे अनेक दरारें आ गई हैं—उसी के पीछे नजदीक मे एक अत्यन्त जीर्ण-शीर्ण गाँव है। पास ही साफ पानी का एक झरना है। लोगो की धारणा है कि यह जल स्वास्थ्य के लिए बहुत उपयोगी है। ठढे-ठंढे में आज काफी रास्ता तय हो चुका है। इस बार और भी चला जा सकता है। यदि बिलकुल थक न गये तो किसी चट्टी में इस वेला नहीं

टिकेंगे। देखता हूँ कि आदिबद्री के देव-दर्शन के लिए सब लोग आकर एक स्थान पर इकट्ठा हुए हैं। मालूम हुआ कि सामने की दुकान से कुछ जल-पान कर फिर सब चलना शुरू करेंगे। अतएव फिर आगे चला।

आगे तो ज़रूर चला, किन्तु आज प्रातःकाल से ही इस नदी, आकाश, पर्वत और दूर के गाँवों से इंगित पाकर भीतर से महाकवि की कविता की कई पंक्तियाँ स्वतः उठने लगीं—

> दाओ आमादेर अभय मंत्र, अशोक मंत्र तव,
> दाओ आमादेर अमृत मंत्र, दाओगो जीवन नव,
> जे जीवन छिल तव तपोवने
> जे जीवन छिल तव राजासने,
> मुक्त दीप्त से, महाजीवने चित्त भरिया लव
> मृत्यु-तरण शंका-हरण दाओ से मंत्र तव!

पिछले तीस दिनों के साथ आजकल के दिन मेल नहीं खाते, फिर नवीन प्रकाश और नये अध्यवसाय में आ पहुँचे हैं। जीवन की गति ऐसी ही है। फिर उसने एक नया जोश प्राप्त किया है। आज समझ रहा हूँ कि चित्त-धर्म की कोई निर्दिष्ट नीति नहीं है, चित्तलोक की कामनाओं की कोई नियत पद्धति नहीं है, अपने आनन्द का पथ चित्त स्वयं चुन लेता है; संस्कारों की बाधा से वह अपने स्रोत को रुद्ध कर देने के लिए राजी नहीं। आज वह अपने मुक्त पंखों को फैलाकर अनन्त आकाश में उड़ रहा है।

'क्या सोच रहे हैं?'

मुख फेरकर बोला—यही तो, आइये। सोच रहा हूँ कि आपके चादर का रंग बैंगनी न होकर हरा होता तो कैसा होता!

'क्या कहा?'

'कह रहा हूँ कि आपका घोड़ा चलता है किन्तु दौड़ता नहीं।'

'नहीं दौड़ने से ही कुशल है। दौड़ता तो मेरी कहानी दूसरे ढंग से लिखी गई होती।'

'किस तरह?' मैंने पूछा।

उन्होंने उत्तर दिया—नानी कह रही थी, रानी घोड़े पर तो तू चढ़ रही है, किन्तु ऐसा न हो कि घोड़ा सरपट ले भागे। अर्थात् जिससे घोड़ा मुझे निरुद्देश्य न ले जाकर ठीक स्थान में पहुँचा दे। मैं सवार थोड़े ही हूँ, मैं तो इसका बोझा हूँ।

'ठीक ही है।' मैंने कहा—इस वक्त कितनी दूर जायँगी?

'चलिये ना जितना दूर भी चला जाय। नानी के पाँव में फिर तकलीफ हो गई है, अधिक रास्ता चलने से पाँव फूल जाते हैं। चौधरी महाशय का शरीर भी खराब है।'

नाना प्रकार की बातचीत होने लगी। एक बार वह बोलीं - तीर्थ-यात्रा तो सब हो गई, उसके बाद? आकर क्या लाभ हुआ?

'पुण्य!'

'वह तो आपके लिए है, किन्तु मेरा क्या हुआ?'

'आपके पाप भी तो थोड़े-बहुत कटे ही होंगे।'

'वही तो नही! स्वदेश मे यदि आप ऐसा कहते तो आपके विरुद्ध मानहानि का दावा करती। पाप तो मैंने किये ही नही हैं!'

विस्मित होकर मैंने कहा—यह क्या, हिन्दू कुल की लड़की के पाप नहीं! हमारे देश की प्रत्येक स्त्री की यह धारणा है कि वह पापी है, अधम है।

'वह हिन्दू कुल की लड़की है, किन्तु हिन्दू नहीं। मैं तो देख रही हूँ कि मुझे लाभ ही हुआ है, कुछ दिन कोल्हू के जुए से छुट्टी मिली है, पहाडो व वनो मे घूमने का मौका मिला है, और इस घोड़े पर सवारी करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है।'

बातों ही बातो में एक समय उनसे पूछ बैठा—अच्छा, आपके स्वामी कब मरे?

'दुहाई आपकी।' कहकर वह थोड़ी अशान्त हो उठीं—कृपाकर सहानुभूति न दिखाइये। छोटी उम्र की विधवाओ के लिए रो उठना आजकल के युवको की बुरी आदत हो गई है। देश मे विधुरों के लिए तो कहीं स्त्रियाँ रोती नही? मुझे कोई दुःख नहीं, फिर भी दुनिया भर के लोग मेरी ओर देखकर कहते हैं, आहा! आहा कहते ही मानो मेरी पीठ पर चाबुक पड़ता है!

'ठीक है।'

क्षेती चट्टी पार होते ही सूर्य प्रायः सिर के ऊपर आ गया। इस बार रास्ता चढ़ाई का है तथा सँकड़ा है। मनुष्यो का समागम अब कही नही दिखाई देता, दोनो ओर का अरण्य घना हो गया है। दोनो ओर घने वृक्ष-लताओ से यह स्पष्ट दिखाई देनेवाला दिवालोक बीच-बीच में छाया के अन्धकार से घिर जाता है। झिल्ली की झंकार सुनाई दे रही है। जंगल के फूलो की मिली हुई गंध से रास्ते की हवा कहीं-

कही असहनीय हो जाती है। लतावितान के छिद्रों से वासन्ती वायु रह-रहकर अपने उच्छ्वास से मर्मरित हो उठती है।

चढ़ाई पार करना बहुत कठिन है, घोड़ा थक गया है। साईस पीछे ही था, इस बार उसने सामने आकर लगाम पकड़ ली और घोड़े को खींचते-खीचते ऊपर उठने लगा। रास्ता बहुत कठोर है और टूटा-फूटा है।

'इतनी देर हो गई, नहाया-खाया नहीं, आपको निश्चय ही चलने में कष्ट हो रहा है।'

मैंने कहा—मै भी यही सोच रहा हूँ, सोच रहा हूँ कि रास्ता इतना भयानक है फिर भी चलने में कष्ट क्यो नहीं हो रहा है। विश्राम भी नही ले रहे हैं।

रानी ने कहा—ठीक है, अपनी शक्ति कहाँ एकत्रित पड़ी है, यह हम खुद ही नहीं जान पाते।

डेढ़ मील रास्ता पार कर जिस समय गंवावाज चट्टी में आकर पहुँचे तब उस समय अन्दाज़ एक बज गया होगा। अब और नही, सामने छोटे-से झोंपड़े के अन्दर आकर झोला-झंडा उतारा। रानी घोड़े से उतर गई। साईस घोड़े को शायद कहीं दाना-पानी देने के लिए ले गया। निर्जन चट्टी, दुकानवाला भी रास्ते के नीचे रहता है। सामने रास्ते के उस पार एक झरना बह रहा है। मक्खियो से बेहद परेशानी है। उन्होने शरीर पर से चादर खोलकर कहा—अपने को ढककर चुपचाप बैठिये, मैं हाथ-मुँह धोकर आती हूँ, अगर सभी न आयेंगे तो खाने-पीने का इन्तज़ाम न होगा।

मुँह धोकर वह फिर सामने बैठी, मक्खियो के उत्पात से बचाने के लिए वाध्य होकर उन्होने चादर का एक और हिस्सा पाँवों के ऊपर तक डाल दिया। कहने लगीं—इस तरह से परदेश में परभूमि में क्या अकेले आते हैं? शरीर की हालत का तो कहना ही क्या, घर जाकर कुछ दिन आराम कीजिये; शान्त होकर बैठे रहिये।

अघोर बाबू की स्त्री के निकट विदाई का उस दिन का दृश्य मेरे मन में अब भी उसी रूप में मौजूद है, उस भयानक आघात को मैं नही भूला हूँ; ब्रह्मचारी के साथ घनिष्ठता कैसे छिन्न-भिन्न हो गई यह भी मुझे स्पष्ट विदित है; सोच लिया है कि पथ मे और किसी के साथ स्नेह-ममता के बन्धन की सृष्टि नही करूँगा। हृदयावेग के खेल में अनेक दुःख पाये हैं।

बोला—धन्यवाद। इसके बाद खाने-पीने की व्यवस्था नहीं करेंगी ?

रानी ने कहा—विद्रूप कीजिये, सह लूँगी; किन्तु निरादर नही सह सकती। कहकर हठात रास्ते की ओर देखकर उन्होने मेरे पाँवो के ऊपर स चादर उठा ली और खड़ी हो गई। नानी आ रही हैं। धूप और रास्ते की थकान स नानी का चेहरा एक दम बदल गया है।

नजदीक आकर नातिन को देखते ही वह फट पड़ी—यह भी क्या रानी, जो पैदल चलकर आ रहे हैं उनके ऊपर ज़रा भी रहम नही ? घर तो चल, सबके सामने यह बात कहूँगी। इतना अन्याय, इतनी बेअदबी ! यहाँ तक आने के लिए तुझको किसने कहा था ? छोटी चट्टी से क्यो नही रुकी ? यह कहते-कहते वह छप्पर के भीतर आ बैठी—तुमको अपने साथ लाने मे मेरे ऊपर भारी जिम्मेदारी है, मुझे तुझे आँखो के सामने रखना है। पराई लड़की, छोटी उम्र की, क्यो तू आई आगे-आगे ? तू नही जानती कि, मेरे पाँवो मे तकलीफ है और मै चल नही सकती हूँ ?

रानी चुप है, मै नतमस्तक। समझ मे आ गया कि उसका अभियोग और भय कहाँ है। थोड़ी देर मे बुआ और एक वृद्धा चट्टी मे आ पहुँची। बहुत देर तक तिरस्कार-तीर और व्यंग्य-बाण उस मौनमुखी नवयुवती के ऊपर बरसते रहे। धीरे-धीरे उठ कर पास की चट्टी मे चला गया। भोजन की व्यवस्था मे अब देर न करनी चाहिये।

करीब दो घण्टे बाद झरने के जल से बर्तन धोकर जब चट्टीवाले के पास से हिसाब लेने के लिए जा रहा था, उस समय छप्पर के भीतर से गर्दन बाहर निकाल कर रानी बोली—खाना-बाना बनाया लेकिन हम लोगो से खाने के लिए एक बार भी नही पूछा ? हमारा तो दिन उपवास मे ही गया। कहकर उन्होने एक म्लान हँसी हँसी।

नानी भी उनके साथ हँसी। मालूम हुआ कि आबहवा हलकी हो गई है। नानी की ओर देख कर मैने कहा—आपने खाना क्यो नहीं बनाया ?

उन्होने कहा—दल-बल सब बिखर गया है। बिना चौधरी महाशय आदि के हम तो खा नही सकते भाई।

अपराह्न मे जिस समय कालीमाटी चट्टी मे आकर रुका उस समय शरतकाल के-से एक काले मेघ से बारिश झर रही थी। बादल के पार पश्चिम का आकाश लाल धूल मे रक्ताभ हो उठा है, अतः बारिश देखकर चिन्तित होने का कोई कारण नही। गोपालदा की मण्डली ने पीछे

से आकर मुझे फिर गिरफ्तार कर लिया। इस समय हम बगालियो के चारेक दल एक साथ चल रहे हैं। स्वामीजी का दल आकर मिल गया है। चार दलों मे करीब साठ व्यक्ति हैं, उनमे से प्राय: पचास स्त्रियाँ हैं। सभी आकर रुक गये। नानी की मण्डली के चौधरी महाशय आदि का अब भी पता नहीं है, सुबह से ही विच्छेद है। इस ओर बारिश देखकर और आगे चलने के सम्बन्ध मे अनेक हिचकिचाने लगे लेकिन सारे आकाश को देखने पर आगे जाना ही निश्चित हुआ।

नानी और आगे नही चलीं, चट्टी मे आश्रय लेकर रात्रि के लिए रुक गईं, चौधरी महाशय वगैरह तब भी नही पहुँच पाये थे। अब मैं क्या करूँ, न जा सकता हूँ और न रुक सकता। चट्टी के आँगन मे एक झरने के मुख पर बाल्टी रख कर पानी लेने के लिए रानी आई है। जल देखते ही प्यास लग जाती है, अतएव पानी पीने को गया। रानी ने कहा—आज आप आगे चले जाइये, इनको एक बुरा सन्देह हुआ है कल मेहलचौरी मे निश्चय ही हमे मिलना चाहिये।

मैंने कहा – इसके बाद मिलना क्या ठीक है ?

स्नेह भरे किन्तु कठिन और स्पष्ट कण्ठ से उन्होने जवाब दिया—निश्चय उचित है। जान लें कि मैं किसी की अधीन थोडे ही हूँ।

दल के साथ फिर रास्ता पकड़ा। एक मील पार जाकर रसियागढ़ चट्टी मिली। इसी चट्टी मे रात्रि में रहना है। रात को भोजन करने के बाद तम्बाकू पीते हुए गोपालदा ने एक बार कहा—वे चाहे कुछ ही कहें किन्तु मुझे तो, भाई, उनकी बातो पर विश्वास नहीं होता।

मैंने पूछा—क्या मामला है ?

'वही स्वामीजी के दल मे तुम्हारी चर्चा कर रहे थे।'

'क्या कह रहे थे ?'

'जिस लड़की का नाम तुमने लालसाड़ी रखा है, वही तुम्हारे विरुद्ध कहने-न-कहने लायक बाते कह रही है। सभी ने तुम्हारे विषय मे पूछा, लालसाड़ी ने कहा, वह तो घोडे के बाल पकड़ कर वैतरणी पार हुए हैं! वह लडकी सबको छेड़ कर इस तरह बात करती है। स्वामीजी वगैरह सब हँस रहे हैं। मै अच्छा कह कर सुनता रहा।'

मैंने कहा—इस बीच मे इतना बड़ा काण्ड हो गया ?

धीमे-धीमे गोपालदा ने कहा—होती रहे ये सब बातें, मैं तो तुम्हे जानता हूँ, तुम कलंक के भागी नहीं हो, वे तुम्हे जानते ही कहां हैं भाई ?

मैंने कहा—सत्य भी तो हो सकता है गोपालदा ?

'होता रहे सत्य, उससे मुझे भय नहीं, गंगा के जल मे मैला आकर मिल जाय तो उससे क्या गंगा अपवित्र हो जाती है ?'

मैं हँसकर बोला—तब अच्छी ही बात कहता हूँ, ब्रह्मपुत्र आकर मिली है पद्मा मे।

दूसरे दिन खाड़चट्टी और धूनारघाट के छोटे पहाड़ी शहर को पार कर जिस समय दाड़िमडाली आ पहुँचे उस समय साँझ हो गई थी। धूनारघाट से मिली है रामगंगा नदी, और मिले हैं छोटे-छोटे प्रान्तर। कहीं-कही मैदानो में खेती हो रही है। प्रायः लहराता हुआ मैदानी रास्ता है। आसपास में कई गाँव हैं। गाँव समृद्धिशाली हैं। करीब नौ बजे के समय साढ़े चार मील और चलकर इतने दिनों के बाद हम गढ़वाल जिले के अन्तिम हिस्से मेहलचौरी मे आ पहुँचे। ख़याल था कि मेहलचौरी कुछ देखने-दाखने लायक होगा, किन्तु वह इतना साधारण होगा—इस बात को स्वप्न में भी नही सोचा था। यही टिहरी राज्य की अन्तिम सीमा है। वे समस्त गढ़वाली कुली जो एक दिन हरिद्वार से बोझा ले जाने के लिए नियुक्त किये गये थे, यहाँ से विदा ले लेंगे। इसके बाद ब्रिटिश सीमा है और बिना पासपोर्ट के ब्रिटिश सीमा मे प्रवेश करने की उनको आज्ञा नहीं है। हम सभी एक देश के मनुष्य हैं, सभी भारतवासी है, फिर भी एक सामान्य राज्यगत् कारण से हम आपस मे विच्छिन्न हैं। मेहलचौरी अत्यन्त मैली और अस्वास्थ्यकर जगह है। पास ही में रामगगा नदी है और नदी के ऊपर एक पुल है।

करीब ग्यारह बजे के समय चौधरी महाशय का दल धूमधाम के साथ आ पहुँचा। उनके साथ दसेक कांडीवाले थे। रानी घोड़े की पीठ पर आई। दूर से एक-दूसरे को देखने पर ऐसे अभिवादन किया कि जिससे और लक्ष्य न कर सकें।

उसके बाद विश्राम और भोजनादि की व्यवस्था हुई। यहाँ गोपालदा की मंडली मे ब्राह्मणी के साथ किसी एक कारण स मेरी कहा-सुनी हो गई, धीरे-धीरे तिल का ताड़ हो गया। चारू की मा ने चुपचाप कहा—ब्राह्मण देवता, उस बूढ़ी के साथ झगड़ा करना भी तुम्हारा अपमान है, तुम चुप हो जाओ।

हँसकर मैंने कहा—चारू की मा, झगड़ा तो करता नही धमकी दे रहा हूँ।

चारू की मा ठहाका मारकर हँस पड़ी और बोली—अच्छा, झगड़ा नही, धमकी है ? तब तो दो-एक बातें और सुना दो, मै भी खुश हूँगी।

हम सभी चुपचाप हँसने लगे, बूढ़ी ब्राह्मणी रो उठी। स्नान करने का समय हो गया, तौलिया लेकर रामगंगा चला आया। पत्थर तोड कर नीचे उतरना होता है। थोड़ी-थोड़ी वृष्टि हो रही है।

स्नान करके सावधानी से देखते-भालते रानी उस समय नदी से वापस चली जा रही थी। एक जगह खड़ी होकर बोली—ओफ, आप इतनी कहासुनी कर सकते हैं! देखती हूँ कि आप पूरे भलेमानस नही हैं। सुनिये, इस वार उन लोगो के दल को छोड दीजिये, चलिये हमारे साथ, एक साथ इधर-उधर फिरेंगे। और हाँ, आप यहाँ से एक घोड़ा कीजिए, समझ गये, दोनो जने घोड़े पर होंगे तो ठीक होगा।

'किन्तु—'

आँखें फाड़कर वह बोलीं—मेरी बात अवाध्य नही होगी—कहकर हँसती हुई जल्दी-जल्दी उठकर चल दी।

अमरसिंह चला गया है, आज कांडीवालो ने भी विदा ले ली। विदाई का दृश्य करुणाजनक था। तुलसी, कालीचरण, तोताराम सभी ने प्रेमपूर्वक विदा माँगी; गढ़वालियो की यह एक विस्मयकर सरलता है। चौधरी महाशय के कांडीवाले तो जोर-जोर से रो रहे थे। रानी उन सवके लिए माता के समान जो है, उसके समान इतनी दयावती, स्नेहमयी देवी उन्हे जीवन मे कहाँ मिल सकती है। रानी के दान स उनकी झोलियाँ भर गईं। कपडे, चादर, पुराने कम्बल, बर्तन और नक़द इनाम, मजूरी से ईनाम ज्यादा हो गया। उम्र मे जो सवसे छोटा कुली था, वह कुछ नहीं चाहता था, केवल एक अबोध शिशु की तरह रानी के आँचल मे मुख छिपाकर, सिसक-सिसक कर रोने लगा। पराया जिस समय अपना होता है वह उस समय आत्मीय से भी अधिक अपना होता है। ऐसा दृश्य जीवन मे कभी नही देखा था। रानी की आँखे भी सजल हो आईं। राजकुमारी और श्रमको के बीच मे आज कोई अन्तर नही रहा। दु:ख में, दुर्योग मे, पथ-पथ मे, इन दीर्घ चालीस दिनो मे आज उन्होने जाना, वह मा उनकी अपनी मा नहीं है, ससार के अपार जन-अरण्य मे उनकी मा अदृश्य हो जायगी। यहाँ मुझे भी सवसे विदा लेनी पड़ी। बूढ़ी ब्राह्मणी के साथ विवाद के बाद गोपालदा की मडली को आज यही से त्याग देना पडा। सोचा, यदि सम्भव हुआ तो स्वदेश जाकर फिर मिलूँगा। काफी दिनो तक गोपालदा के साथ रहा हूँ, ऋषीकेश की वही बातचीत, आज उनसे विछुड़ना बहुत अखर रहा था। खैर, ठीक तीन बजे स्वामीजी और गोपालदा

की मंडलीवाले घोड़े पर माल-असबाब रखकर मेहलचौरी छोड़कर चले गये। उस समय अपरान्ह का समय था।

चौधरी महाशय वगैरह की मन्शा देखकर ऐसा जान पड़ा कि आज मेहलचौरी में ही रात काटनी होगी, उनको कोई विशेष जल्दी नहीं है। यहाँ से रानीखेत तक के लिए अपने लिए एक घोड़ा ठीक किया है। घोड़ा ठीक करके चौधरी महाशय से जल्दी करने को कहा, अन्त में वह चलने को राजी हो गये।

अतएव अब कोई कठिनाई नही। यात्रा शुरू करने मे पाँच बज गये। घोड़े की पीठ पर कम्बल और झोला दबाकर, लाठी साईस महेन्द्रसिंह को दी—सईस की चाल-ढाल प्रधानत: 'माइ डियरी' की-सी थी। उसके बाद राजा शिवाजी के क़ायदे के अनुसार सिर पर पगड़ी बाँधकर वीर पुरुष की भाँति घोड़े की पीठ पर चढ़ गया। रस्सी की जीन और रस्सी की लगाम, सवार के हाथ में पेड़ की एक पतली डाल। खैर, इसी दशा मे घोड़े को एड़ी लगाकर मैंने कहा, 'हट, हट !'

घोड़ा पाँव उठाकर चलने लगा। कुछ दूर जाकर पीछे की ओर देखा तो रानी अपने घोड़े को हाँकती हुई, हँसती आ रही है। पहाड़ के एक मोड़ पर आकर हम इकट्ठा हुए। उन्होने कहा—हम घोड़ों को दौड़ाकर अपने पीछे धूल उड़ादें जिससे वे देख न पाएँ, क्या राय है ?

मैंने कहा—किन्तु उसके बाद ?

'उसके बाद और क्या, शासन और सन्देह सिर पर भले ही खड़े रहें, हम आगे चले जाते हैं।'

'उसके बाद ?'

'यह देखा जाय कि किसका घोड़ा अच्छा है।' वह हँसीं।

मै बोला —मेरा घोड़ा ही अच्छा है।

'खाक अच्छा है, उससे मेरा घोड़ा कही तेज है।'

'मेरा खूब दौड़ता है।'

'दौड़ने से ही अच्छा नही हो जाता, जहाँ रुकेगा वहीं मरेगा।'

सूर्यदेव अस्ताचल को प्रस्थान कर रहे हैं। कही-कहीं पेड़ों पर वन-पक्षियों का सांध्य-कलरव शुरू हो रहा है! दक्षिण में नदी के ऊपर छाया का अन्धकार उतर रहा है। दोनो साईस पास-पास चल रहे हैं, वे बातों मे मशगूल हैं। हम भी पास-पास चल रहे है।

स्वर्ग से विदा; मर्त्य-लोक का बुलावा मिला है, वहाँ फिर चला जाना होगा। वही कलह-कलङ्क, विद्वेष और मालिन्य, सामान्य स्नेह

और प्रेम, शौकीन भाईचारा तथा नगण्य आत्मीयता। फिर भी लौटना ही होगा। महाप्रस्थान के पौराणिक पथ को कर्णप्रयाग मे छोड़ आये हैं; यह पथ ऐतिहासिक है, दक्षिण-पूर्व मे टिहरी की सीमा मेहलचौरी होकर यह पथरेखा चली आई है वर्तमान सभ्य भारत की ओर, मानव-समाज को यह पथ स्पर्श करता है। स्वर्ग-प्रवास अनेक बीते दिनो की बात हो गई है, स्मृति और विस्मृति का एक गोधूली-प्रकाश छा गया है, कानो में आ रहा है मर्त्य-भूमि का क्षीण कलरव, जीवन की विचित्र जटिलता हाथ स इशारा कर बुला रही है।

मेहलचौरी पीछे रह गया। चढ़ाई के रास्ते मे यात्री धीरे-धीरे उठ रहे हैं। हमारे घोड़े धीरे-धीरे चल रहे हैं। साईस पीछे-पीछे आ रहे हैं। दक्षिण ओर नीचे धीरे-धीरे अन्धकार होता जा रहा है। सामने पर्वत के पार पश्चिम का आकाश लाल हो उठा है, सध्या आकर बैठ गई है अपरान्ह के आसन पर। बाईं ओर पठार पर चीड़ के जंगल में मन्थर वायु बीच-बीच मे गुजन-ध्वनि करती जाती है। यहाँ का पथ पहले की अपेक्षा विस्तृत है। रानी अपने घोड़े को लेकर पास ही चल रही है। एक बार बोलीं—हम ठीक चल रहे हैं न, भूलेंगे तो नही।

मैने कहा—इस रास्ते मे भूल नहीं हो सकती, सीधा रास्ता है।

थोड़ी-थोड़ी बातचीत हो रही है; जिस बात को कह रहा हूँ उसे खुद भी सुन रहा हूँ, उन्हे भी यह लगा कि अपनी बात के लिए ही वह कान लगाये बैठी हैं। ऐसा ही होता है। जब हम अपनी बात को अपने ही कानो सुनते हैं, उस समय यह समझ लेना चाहिये कि उस कथा की अतीत वस्तु को हम उपलब्ध कर रहे हैं।

'चारो दिशाएँ कितनी सुन्दर हो उठी हैं, देखते हैं ?'

चारो दिशाओ को अवश्य देखा, किन्तु वह विस्मयकर रूप बाहर का है अथवा मेरे अन्तर का ही ? नारी के साथ एक रस-प्रकृति रहती है, आल्हादिनी शक्ति, वह शक्ति पुरुषो मे आनन्द तथा अनुप्रेरणा का सचार करती है, मन्दिर के निद्रित देवता के कानो मे जागरण-गान भरती है; ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार कि नदी मे चारो ओर से गिर पड़ता है वर्षा का जल, सर्वाङ्ग मे आ जाता है वेग, उठ पड़ता है बाढ का ज्वार, आ जाती है सक्रियता और उस जल को लेकर नदी चल पड़ती है परम लक्ष्य की ओर। इसी शक्ति को अगरेजी मे चार्म कहते हैं।

घोड़े की पीठ पर पेड़ की डाल के चाबुक स दो-एक चोटें मार रानी ने फिर कहा—पर इस बार आप पहिचाने नही जा रहे हैं।

'क्यो ?'

'संन्यासी हो गया है गृहस्थ। पञ्जाबी धोती पहने हैं, सिर पर पगड़ी है, मालूम होता है कि इसका रंग कभी गेरुआ था। आदमियो का चेहरा बहुत जल्दी बदलता है।'

मै बोला—केवल स्त्रियो का नही बदलता है। चाहे तीर्थ करें या घोड़े पर भी चढ़ें, असल मे वे . ?

हम दोनो जने हँस पड़े।

'खैर जो भी हो, आजादी खूब मिली। नानी से मै बहुत डरती हूँ।'

'तिस पर भी आपने यह कहा है कि आप किसी के आधीन नही हैं?'

'वह नितान्त आर्थिक स्वाधीनता है ..' रानी ने कहा—किन्तु आप जानते हैं कि मै किस भयानक रूप में पराधीन हूँ ?

मै चुप रहा।

'यह अवस्था होने पर भी मेरे अपमान का अन्त नही। घर के बाहर पाँव निकालना मना है, भाई-बन्धु, आत्मीयजनो के साथ बात करना भी मना है, पुस्तक समाचार-पत्र आदि पढ़ना सभी को नापसद है—इसका क्या कारण है, जानते हैं ?—मेरी उम्र छोटी है। इस नानी से मै बहुत डरती हूँ; कारण घर लौटकर वह अच्छी बात नहीं कहेगी; मिथ्या बात को ही बड़े रूप मे चित्रित करेंगी। यह मेरी सगी नानी नहीं मेरी मा की चाची हैं। दुःख भाई की तरह मेरा चिरसगी बन गया है।'

उनके निश्वास से वायु भारी हो गई। मुँह से कोई बात न निकल पाई, चुपचाप घोड़े हाँक कर चलने लगे।

इस बार रास्ते मे पहले चढ़ाई, उसके बाद मैदान, चलने मे कोई खास तकलीफ नही—किन्तु रास्ने मे कई मोड़ तथा कई जटिलताएँ है। कही से तो बहुत दूर तक दृष्टि जाती है और कही हम बिलकुल पहाड़ के भीतरी महल मे घुस पड़ते है। हमारे दोनो घोड़े शान्त और निरीह हैं, उनको हाँकना ज़रूरी नहीं, वैरागियो की तरह उदासीन होकर वे चल रहे हैं। वे जानते हैं कि हम कहाँ, कितनी दूर जाएँगे।

इन दीर्घ तेंतीस दिनो में जिन नगण्य यात्रियो के साथ परिचय हुआ है उनके बारे मे सोच रहा हूँ। आज यदि वे मुझको देखें तो नहीं पहिचान पावेंगे। तेंतीस दिनो तक जो मनुष्य मितभाषी था, निर्लिप्त और उदासीन था, आज उसका वही चेहरा बदल गया है। जो व्यक्ति बिजनी, छाँतीखाल, गुप्तकाशी, रामबाड़ा, उखीमठ आदि की चढ़ाइयो को मुँह बन्द कर पार कर गया, आज वही व्यक्ति घुड़सवारी का

शौकीन बन गया है—निश्चय ही वे लोग यह सब देखकर अवाक हो जाते। उनकी धारणा के अनुसार मैं पत्थर की भूमि की तरह कठोर हूँ, बात यह है कि मेरी तरह कष्ट-सहिष्णु तथा तन्दुरुस्त यात्री इस वर्ष एक भी नहीं आया। ऐसा जान पड़ता था कि वे लोग आज अपनी आँखो से देखने पर भी यह विश्वास नहीं करेंगे कि मैं फुहारे की तरह मुखर हो गया हूँ, मेरे मन का आकाश रंगीन क्रीड़ा-स्थल बन गया है, संन्यासी का मैंने जो वेश धारण किया था वह गिर पड़ा है, एक अपरिचित नारी के साथ अरण्य-पथ मे घोडे पर जा रहा हूँ—मेरी पूरी हो चुकी है बद्रिकाश्रम-यात्रा, शेप हो गया है तीर्थ-पथ। वे लोग विश्वास नही करेंगे क्योकि ससार का नियम ही ऐसा है। हम एक सीधे माप-दण्ड से मनुष्य को नापते हैं, एक नियत घेरे मे उसको आवद्ध रखते हैं—जिसका रग सफेद है उसको सदा सफेद ही देखना चाहते हैं। भय से, जीवन के सहज विकास को रोक कर चलना ही साधारण मनुष्य का स्वभाव है—मानव-धर्म केवल चाहता है परिपूर्ण रूप से आत्म-प्रकाश करना। जो नीति के क्रीत-दास हैं, सामाजिक रूढ़ियो के आगे जिन्होने अपने को बेच दिया है, हृदय-धर्म को सैकड़ो कठोर वन्धनो से बाँधकर जिन्होंने जीवन को सकुचित कर दिया है, वचित कर दिया है, वे आत्म-विकास की रीति को नही जानते।

मनुष्य की सहज प्रवृत्ति, प्रकृति तथा मस्तिष्क को हम तथाकथित पाप-पुण्य के विचार-दमन द्वारा उत्पीड़ित करते हैं—इस बात को कौन स्वीकार नही करेगा? यदि हम चाहते हैं स्वाभाविक तथा स्वास्थ्यपूर्ण जीवन विताना, यदि हमारी इच्छा है कमल की तरह सूर्य को देखकर विकसित होना—तब आज मन्दिर, मसजिद और गिरजे के दरवाजे बन्द कर देने होगे, बन्द कर देनी होगी धर्माध्यक्षो और नीति-प्रचारकों की वाणी—उन स्वार्थान्ध व्यक्तियों की वाणी जो अपने आदर्शों और अपनी रुचि से निर्बोध जन-साधारण को बाँध देते हैं और मूढ़ मानव-समाज को अपनी अँगुलियो के इशारे पर चलाना चाहते हैं। मनुष्य को चरित्रवान और 'गुड बॉय' बनाने के लिए इतने कार्य-कलाप हैं, यह समझ कर ही उसका मन इतना विकार-ग्रस्त हो उठता है—पृथ्वी में इसी लिए इतनी हिंसा, मारकाट तथा लोलुपता है। भारतीयो को निर्विरोध निष्क्रियता, आरामप्रियता तथा दुनिया के दरबार में युग-युग तक लांछित होने के मूल में जो वस्तु काम कर रही है, वह है इस देश के अति-मानुप तथा अ-मानुप के चरित्र की शिथिलता। इस देश में

देवता और दानवों की भीड़ है, मनुष्यों की संख्या कम है। यहाँ तो तब से अब तक देश के सर्वांग का शोषण कर अति-मानुष-दल ने खड़े किये हैं केवल सन्यासियो के निवास-स्थल। मठ, आश्रम-संघ आदि की इतनी भीड़ इस देश में है कि कही भी आगे पाँव बढ़ाने को जगह नहीं मिलती। मनुष्य मर गया है। उसके बदले आ गये शिष्य, सेवक और महाजन! इनका नाम है 'रिलिजस इन्स्टीट्यूशन'। सर्वशास्त्र-पारदर्शी तथा सर्वज्ञ ये लोग! इनके इच्छा-यंत्र द्वारा ही 'गुड वॉय' तैयार होता है।

आज वे लोग मुझको देखकर विश्वास नही करेंगे। यह बात उनको कैसे समझाऊँगा—जाड़े के बाद वसन्त आता है, उसके बाद आती है वर्षा! कभी निगूढ़-ध्यान-तपस्या मे शकराचार्य के उत्तरधाम के पथ पर चला था—शरीर पर गेरुए वस्त्र थे, पीछे लम्बी जटा थी, साथ में थी श्मशानवासी प्रेतो की मडली, चक्षु थे शिव-नेत्र; उत्तर की हवा के कारण दिन-प्रति-दिन मेरे हृदय के अन्दर जम गई थी वर्फ की तह—कठोर निश्चल वर्फ की मरुभूमि। उसके बाद चञ्चल वसन्त के उपवन मे, मालती-मल्लिका की छाया से वेष्टित अरण्य-वीथिका मे चला आया, दक्षिण पवन के दाक्षिण्य मे मिल गया माधुर्य का आनन्द! अस्थिमाला के बदले आज मेरे अङ्ग-अङ्ग मे लाल पलाश के गुच्छे हैं; माथे पर ऋतुराज का स्वर्ण-मुकुट है, चिता भस्म के बदले पराग है, हाथ का भृङ्ग बदल गया है बाँसुरी मे—वसन्त की बाढ़ में वैराग्य बह गया है।

रानी बोलीं—अपनी आपबीती सुनाकर शायद आपको दु:ख ही दिया।

दूर पर उस समय त्रिजरानी चट्टी मे प्रकाश दिखाई दे रहा था। मैंने कहा—इसमें हिचकिचाहट क्यो, दु:ख के घर मे दु:ख ही तो अतिथि बन कर आता है।

'अच्छा, यही सही।' उन्होने हँसकर कहा—अच्छा, आपको याद है रविबाबू की वह कविता? फिर वह खुद ही अपने कोमल कंठ से बोली:

राजपथ दिये आसियोना तुमि, पथ भरियाछे आलोके, प्रखर आलोके।
सबार अजाना (अनजाना) हे मोर विदेशी,
तोमारे ना जेन देखे प्रतिवेशी,
हे मोर स्वपनविहारी।
तोमारे चिनिब प्राणेर पुलके,
चिनिब सजल आँखिर पलके,
चिनिब बिरले (एकान्त में) नेहारि परम पुलके।
एसो प्रदोषेर छायातल दिये (अन्धकार में), एसो ना पथेर आलोके, प्रखर आलोके।

मैंने कहा—भले मानस ने अच्छा ही लिखा है। अच्छा, किन्तु इस वार मै आगे चला जाता हूँ।

घोड़े को दौड़ने की चेष्टा की किन्तु उसे दौड़ाना इतना सहज नहीं था। चाबुक मारने से थोड़ा आगे जाता है, फिर देखते-देखते उसकी चाल मन्द पड़ जाती है। इस तरह जब चट्टी के पास आकर घोड़े से उतरा तो उस समय काफी अँधेरा हो चुका था। सामने पास-पास पत्थरो के बने दो पक्के घर हैं, उनके साथ बरामदा है, पहिली चट्टी के नीचे मिठाइयो की एक बड़ी दुकान है—तब तो रात अच्छी तरह ही कटेगी। चारो ओर भिन्न-भिन्न पेड़ो के जगल हैं, पीछे की तरफ थोड़ा खुला मैदान है, पथ के इस ओर पत्थरो से पटा हुआ एक झरना। मालूम होता है कि थोड़ी देर पहले यहाँ वर्षा की एक फुहार बरस चुकी है, सारी धरती गीली हो गई है।

चौधरी महाशय सदलबल आकर हाजिर हो गये। पहली चट्टी के दुमजिले मे सबने आश्रय लिया। पास के घर मे उत्तर भारतीयो तथा मारवाड़ियो की एक मडली आ गई। घोडो को महेन्द्रसिंह और प्रेमवल्लभ दाना-पानी देने के लिए कहीं ले गये—यह बात तय हुई कि तड़के ही वह घोड़ो को लेकर हाज़िर हो जायँगे। सामान खोलकर दुमजिले में भीतर तथा बरामदे मे चौधरी महाशय वगैरह ने बिस्तर बिछाया, नीचे पूरियो की दूकान में से जल-पान का थोड़ा बहुत प्रबंध हुआ—रानी बालटी लेकर झरने से जल लाने गईं। जिसकी उम्र छोटी होती है, परिश्रम का अधिक भाग उसी को मिलता है।

भोजन करने के बाद ही शयन। इस बीच में बुआ के साथ किसी की कुछ खटपट हो गई, वह बिना कुछ खाये-पिये ही बरामदे के किनारे कम्बल बिछाकर सो गईं। बुआ की समस्त हँसी व रसिकता के पीछे रहता है एक विषधर साँप का फन, मनुष्य पर एकाएक चोट करना ही उसकी रीति है। किन्तु इस विलीयमान कोलाहल के बीच कमरे के मध्य में मौन रूप में देखने पर उस दिन मैंने जो दृश्य देखा, वह आज भी हू-बहू मुझे याद है। रानी ने जो दीक्षा ली है, सुबह और शाम वह जिस जप में बैठती हैं उसको मैं जानता था, लुक-छिपकर देखा भी था; किन्तु उसका रूप ऐसा है यह आज पहली बार मैं समझा। सामने लालटेन का प्रकाश है, उसी के पास आसन के ऊपर वह ध्यान में बैठी हैं, दोनो आँखें मूँदी हुई हैं; उनके मुख के ऊपर एक अपूर्व लावण्य और आभा चमक उठी है, लेकिन इतना ही नहीं—उस मुख पर एक

प्रशान्त पवित्रता, सयम और सहज कृच्छ साधना का एक अनिर्वचनीय माधुर्य है—ऐसा ज्योतिर्मय रूप सहसा नही दिखाई पड़ता। मैं एकटक देखता रहा। एक नजर देखकर जो किसी मनुष्य की आलोचना करने लगते हैं उनकी बात मैं नही कहता, किन्तु रानी के साथ मेरा थोड़े दिनों का परिचय है, बातचीत में पहले इनके संबंध मे कई विरूप धारणाएँ मेरे मन में उठी थी—वे धारणाएँ सत्य नही हैं। तथाकथित शिक्षित लड़कियो को मैं जानता हूँ, इस समय समाज मे उनकी संख्या काफी बड़ी है; उनके चाल-चलन और आचार-व्यवहार मे कालेजी ढंग होता है, चेहरे पर पालिश होता है, चरित्र में चटुलता, छलना भरी भगी होती है—जानता हूँ उनकी आशा-आकांक्षा का गोपन तत्व। पहले-पहले इनकी अनर्गल हँसी, इनका बुद्धि-दीप्त वार्तालाप इनका निस्संकोच व्यवहार और इनकी सरस बातचीत स्मरण कर कभी-कभी उनके प्रति भोहे टेढ़ी हो गई थीं—सोचा कि यह भी तो उन्हीं मे से एक हैं, वही एक विरक्तिकर चरित्र की पुनरावृत्ति है; किन्तु नही, अब मत परिवर्तन करना पड़ा। वही रात्रि, वही अन्धकार, वही नाना जातीय यात्रियो की भीड़, वही लालटेन का प्रकाश, उनके बीच मे बैठकर मन बोला, साधारण जनों के घर मे इसका स्थान नियुक्त न करो, उससे तो खुद तुम ही छोटे हो जाओगे। लड़की यदि तुम्हारी दृष्टि मे उच्च नही हो सकती तो कोई हानि नही लेकिन तुम्हारी आँखो के दोष से वह छोटी तो न हो जाय।

पृथ्वी मे इतनी नास्तिकता, संशयवाद और सिनिसिज्म, मन की इतनी मलिनता और चरित्र का इतना अध.पतन, साहित्य का सुलभ रोमान्टिसिज्म और शौकीन कल्पना, सत्य और न्याय के तथाकथित आदर्श के प्रति मनुष्य का इतना अविश्वास है—किन्तु तब भी जो-कुछ सद्गुण मानव चरित्र को उज्ज्वल बनाता है उसकी कद्र हमें करनी ही पड़ती है। मनुष्य जिन-जिन गुणो से महान बनता है, जहाँ वह दृढ़ नैतिक शक्ति का परिचय देता है, वही हम भी उसके आगे माथा झुकाते हैं। वहाँ तर्क भी नही होता, अविश्वास भी नही होता, वहाँ हम झुककर कहते है तुम साधु हो, तुम्हीं महात्मा हो।

रात मे जाड़ा हुआ, किन्तु जब कम्बल के अतिरिक्त बिछाने-ओढ़ने का और कोई चारा ही नही तब उसी को लेकर बरामदे के एक कोने मे स्थान ग्रहण किया। उत्तर और दक्षिण की ओर खुला हुआ है, सर-सर करती हवा बह रही है—नीचे का गोलमाल शान्त हो गया, पास मे

उत्तरभारतीय मंडली का उकतानेवाला गाना जिसकी बार-बार दुहराई जानेवाली एक ही रट गूँगे के बोलने के समान लग रही थी, बन्द हो गया और मेरी आँखो में तन्द्रा आ गई। सिर के पास चौधरी महाशय सोये हैं—यह अत्यन्त निष्कपट व्यक्ति हैं, उन्हीं के पाँवो की ओर सोई हुई है बुआ—वह जोर से खुर्राटे भर रही है। बरामदे के भीतर अन्य वृद्धाएँ हैं, कमरे के भीतर हैं नानी और रानी। रात्रि नीरव है, दो दिन पहले अमावास्या हो गई है। द्वितीया का शीर्ण चन्द्र कभी से पश्चिम आकाश में अदृश्य हो गया है. चारो दिशाओ मे घोर अन्धकार है। आकाश के स्वच्छ तारे खूब चमक रहे हैं।

जाड़े से सिकुड़कर सो रहा था, न मालूम कैसे एक बार नीद टूट गई। आज चले तो हैं नही, अतएव परिश्रम भी नहीं हुआ इसी लिए गहरी नींद नहीं आ रही है। एक बार देखकर फिर आँखें मूँद ली। फिर नींद टूट गई। मृदु-लघु पद-शब्द को सुनकर अन्धकार में दृष्टि फैलाये मौन होकर देखा। इतने ही मे देखता हूँ कि अत्यन्त सतर्कता से एक मानव-छाया निकट आकर एक बार हिचकिचाहट से इधर-उधर देखकर फिर चली गई। कमरे के भीतर के अत्यन्त मन्द प्रकाश मे भी रानी को पहिचान लिया !

दूसरे दिन सुबह घोडा लेकर सबसे आगे चल दिया। आगे-आगे चलना ही ठीक समझा। चलते समय पीछे को भी नहीं देखा, आग्रह भी नहीं दिखाया, जाने कितना उदासीन हूँ ! मध्य-रास्ते में रानी पीछे से आकर मेरे साथ हो लेगी, उसके बाद दोनो जने बातें करते चलेंगे, यह बात कोई नहीं जानता। तिस पर भी जिन्हे हमारा पहरा देते-देते आना है, हमे अपनी नजरो मे रखना है, उनके लिए कोई उपाय नही क्योकि वे तो पैदल आयेंगे और हम चलेंगे घोड़े पर। अपने इस छल-कौशल के सम्बन्ध मे आलोचना कर हम खुद ही हँसते हैं। सामाजिक मनुष्य के मन के रूप को हम जानते हैं—स्त्री-पुरुषो का मिलना-जुलना, स्वाभाविक बन्धुत्व, एक दूसरे के प्रति स्वाभाविक ममता—ये सब उनको बहुत ही अखरते है। स्त्री-पुरुष सम्बन्ध पर उनकी सदा एक धारणा रही है, उसके सिवा और कुछ नही। समाज-बद्ध और संस्कार-बद्ध मन के विरुद्ध हम युद्ध-घोषणा करते, उसको रोकने के लिए हमारा आग्रह भी बढ़ जाता—उनके शासन, सन्देह और बन्धनो को तिरस्कार-पूर्ण भाव से ठुकराकर हम गर्व से चले जाते, वे हमारी छाया भी न पाते।

उस दिन सुबह पीछे से आकर रानी ने मुझे पकड़ लिया। फिरकर

देखता हूँ तो उसकी आँखे नींद से भारी हो रही हैं, मालूम होता है कि कल रात ठीक नींद नहीं आई—मुख पर हँसी है। बोली—गुड मॉर्निङ्ग ! छू-छू, थोड़ा धीरे से चल बाबा, तू भी क्या अस्वाभाविक होना चाहता है ? ओ प्रेमवल्लभ, ज़रा बिन्दु को एक बार फटकार तो सही। देखती हूँ कि घोडा नानी से भी बढ़कर है !

हँस पड़ा। उन्होंने कहा—कल रात कुछ अन्याय कर बैठी, आशा है आप क्षमा करेंगे।'

'क्या, कहिये तो ?'

उन्होंने सलज्ज कण्ठ से कहा—जाड़े से आप बिलकुल सिकुड़े पड़े थे, एक कम्बल देने गई थी ; किन्तु देने का साहस नहीं हुआ। दो कदम आगे चली तो तीन क़दम पीछे लौट पड़ी—रात नीरव जो थी।

चुप बना रहा। उन्होंने कहा, 'भय हुआ कि यदि सुबह आपकी आँखे देर मे खुलीं ? लोग देखेंगे कि मेरा कम्बल आपके ऊपर पडा हुआ है। ओह, तब क्या जवाब दूँगी ? उससे तो यही अच्छा है कि, आपको कष्ट होता रहे, अनेक तकलीफें उठाई हैं आपने। अच्छी बात, इस कविता के टुकडे को आप कण्ठस्थ कीजिये। बद्रीनाथ के मन्दिर में बैठकर इसको मैंने दुहराया था !' यह कहकर घोड़े की पीठ पर से उन्होंने एक कागज मेरे हाथ मे दिया।

कागज हाथ मे लिया, किन्तु वह नहीं रुकी, लगाम से घोड़े को इशारा कर उन्होंने अपना घोड़ा आगे दौड़ा दिया।

उस दिन का ज्योतिर्मय प्रभात। तमाम जंगलों में सूर्यदेव ने अपना ऐश्वर्य बिखेर दिया था। एक हाथ में घोड़े की लगाम पकड़ कर और दूसरे हाथ से कागज खोलकर पढने लगा—

'मोर मरणे तोमार हबे जय।
मोर जीवने तोमार परिचय।
मोर दुख जे रांगा शतदल
आज घिरिल तोमार पदतल,
मोर आनन्द से जे मनिहार
मुकूटे तोमार बांधा रय।

मोर त्यागे तोमार हबे जय
मोर प्रेमे जे तोमार परिचय
मोर धैर्य तोमार राज-पथ,
से जे लंघिबे वन-पर्वत
मोर वीर्य तोमार जयरथ
तोमार पताका शिरे वय।'

कुछ दूर आने पर वह फिर मिल गईं। वह घोड़ा रोककर प्रतीक्षा कर रही थीं। पुरानी बात जहाँ खत्म हो गई थी वहाँ से उसे फिर शुरू कर फिर हम एकत्र चलने लगे। अपनी कर्मधारा का परिचय वह नहीं देना चाहती थीं, उनमें लज्जा थी, उससे भी अधिक विनय और नम्रता थी। किन्तु मैं छोड़नेवाला शख्स नहीं, उनकी सब बातें जानना चाहता हूँ—मेरे साहित्यिक प्राण अत्यन्त कौतूहल से जाग उठे हैं, उनकी दुःख-गाथा में भी मुझे अत्यन्त आनन्द मिलता है।

मेरे कल्पना-लोक को उन्होंने नया रूप दे दिया है—मेरी प्रेरणा के सब बन्धन उन्होंने खोल दिये हैं।

धीरे-धीरे चल रहे हैं। उनकी बातचीत मे अजस्रता है, प्राण की अपार बाढ़ है—उसी के प्रवाह मे उनकी वार्ता मुक्त-धारा मे बहती चली जा रही है।

हम समाज, साहित्य और साधारण जीवन-यात्रा के सम्बन्ध में आलोचना कर रहे थे। वह उच्चकोटि की विदुषी तो थीं नही, किन्तु सब विषयों पर उनकी एक सुनिर्दिष्ट और सुदृढ़ राय थी। अपने जीवन मे जिस वस्तु को उन्होंने हृदयंगम नही किया उसको केवल तर्क के बल पर मान लेने के लिए वह राजी नही थी। सारी बातचीत मे उनके सुरुचिसम्पन्न तथा उच्च मन की झलक स्पष्ट रूप से दिखाई देती थी। उनका मन उत्तम रूप मे संस्कृत था।

नारियाँ पुरुषों के सम्पर्क में आकर प्रस्फुटित हो उठती हैं। अपने जीवन की अभिज्ञता उनकी कम नहीं है, अनेक देशो में घूमी-फिरी हैं, बहुत परिवार और परिजनों से सम्बन्धित महिला हैं। एक डाक्टर नवयुवक के साथ उनका विवाह हुआ, पश्चिम के एक शहर में वह घर-गृहस्थी बनाने के लिए गईं, वहीं पति के पास गाना-बजाना, साधारण रूप से अँग्रेजी पढ़ना-लिखना और हिन्दी व उर्दू सीखी, शिक्षयित्री द्वारा कुछ शिल्प-कला सीखी, सिलाई की मशीन चलाना सीखा और सीखी चित्रकारी—किन्तु यह सब अल्प दिनो तक ही, विधाता इस शान्तिपूर्ण सुखमय जीवन को न देख सका, पति की अकाल-मृत्यु हो गई— उनको सिर का सेन्दुर मेटकर खाली हाथ लौट आना पड़ा। जिस उम्र में नारी का मन ससार-स्वप्न का इन्द्रजाल बुनता है, जिस उम्र मे सन्तान-सन्तति की तीव्र इच्छा मातृ-हृदय मे उच्छ्वासित हो उठती है, उसी उम्र मे उनका इतना आशाप्रद जीवन दिशाहीन मरुभूमि के पथ पर आ गया, सारी गति रुक गई। तूफान मे जिस पक्षी का

घोंसला नष्ट-भ्रष्ट हो गया है उसका आश्रय इस समय है पेड़ों-पेड़ों पर, कभी तो वह ससुराल में रहने लगीं, कभी मामा के घर मे और कभी इधर-उधर। मामा के घर मे ही अधिकतर रहने में इस समय सुविधा थी। सुबह से लेकर रात तक उनको पानी पीने की भी फुर्सत नहीं रहती थी। घर-गृहस्थी का लेखा-जोखा, गोदाम का भार, बाल-बच्चों की देख-रेख, दफ्तर व स्कूल जानेवालों के लिए यथा समय भोजन का प्रबन्ध, नाना की सेवा-टहल—अर्थात् साँस लेने की भी फुर्सत नहीं रहती थी। उनके हाथ में वैद्यक और होमियोपैथी चिकित्सा की भी आढ़त थी, अनेक लोग दवा-दारू के सम्बन्ध मे उनके पास आते। जिस गाँव में वह रहती थी वहाँ की स्त्रियाँ दोपहर मे उनके पास आकर उनसे सिलाई सीखती, लिखने-पढ़ने का अभ्यास करतीं। वह उनके कपड़े, शेमिज, फ्रॉक इत्यादि तैयार कर देती थी। उनके कारण घर में कोई गड़बड़ नही रहती थी, घर-द्वार वह साफ-सुथरा रखती थीं। घर मे कोई बीमार हो जाय तो उसकी सेवा-सुश्रूषा का भार भी उन्हीं के ऊपर आता था। तीज-त्यौहार, पूजा-अर्चना नित्य नैमित्तिक कार्य—इन सब की व्यवस्था तथा इनका आयोजन उन्ही के हाथ में था। ससुराल बीच-बीच में चली जाती थीं, सास उनको स्नेह की दृष्टि से देखती थीं, देवर और जेठ उनका सम्मान करते थे, किन्तु वहाँ स्वार्थ की गन्ध जो थी! उनकी इच्छा थी कि रानी उनके घर में रहे ताकि माहवारी रकम उनके हाथ मे आती रहे, किन्तु यह छिपी स्वार्थ-परता रानी की नजर से न बच सकी। जिसके द्वारा ससुराल से उनका सम्बन्ध था उसकी मृत्यु ने एक भारी अन्तर—परदे की सृष्टि कर दी।

'ससुराल मे शोषण और ननिहाल मे शासन।'—रानी ने कहा—खयाल आता है कि कुछ समय पहले तक मैं विलासप्रिय थी .

मुख की ओर ताकते ही वह हँसकर बोली—विधवा का विलास-प्रिय होना भारी अपराध है—है न? किन्तु वह अति सामान्य है, साफ-सुथरे कपड़े पहिनने तथा केशों को सँवारने मे प्रसन्नता होना भी कोई अपराध है? फिर भी इसी अपराध मे नाना ने एक दिन मुझे बुलाकर जिस समय अपने बालो को बिलकुल कटवा डालने के लिए मुझे बाध्य किया, तीन दिन तक मै रोती रही—मेरे केश पाँवो तक लम्बे थे। जानती हूँ कि आँसू बहाना बच्चो की-सी कमजोरी है, सर्वस्व त्याग करने से ही विधवा का जीवन उज्ज्वल होता है, यह भी मालूम है, किन्तु

कहते-कहते वह म्लान हँसी हँसने लगी।

मासी चट्टी पार हो गई है। रास्ता मैदानी है, कहीं-कहीं गॉव के चिन्ह दिखाई दे रहे हैं। पेड़ो की छाया से ढका हुआ चौड़ा रास्ता है, पहाड़ो की चोटियाँ दूर-दूर चली गई हैं। ग्राम्य-प्रान्तर नीरव हैं, सर-सराती हुई वासन्ती वायु बह रही है। रास्ते मे अब झरने नही दिखाई देते, रामगगा नदी पास ही है। वृद्धकेदार मे दोपहर का भोजन कर फिर आगे चले। आजकल सुख और सौभाग्य दोनो ही मुझे प्राप्त है। घोड़े पर चल रहा हूँ, नानी के यहॉ पका-पकाया भात खाता हूॅ, बर्तन भी नहीं माँजने पड़ते। जिस दिन दु.ख मे हरिद्वार से मेरी यात्रा शुरू हुई थी, उस दिन स्वप्न मे भी यह ख़याल नही था कि इतने आनन्द के साथ मेरी यात्रा पूरी होगी। चारू की मॉ और गोपालदा वगैरह एक वेला का रास्ता आगे चले गये हैं, इच्छा होती है कि दौड़कर उनको पकड़ लूॅ और अपने सौभाग्य की वात उनको सुना दूॅ। गोपालदा के धैर्य और उनकी सहनशीलता से मै वास्तव मे विस्मित और मुग्ध हूँ। किन्तु एक वड़े संकोच की वात है, दिन में नानी और रानी खाना वना देती हैं, चौधरी महाशय भी प्रेम से खिलाते हैं, किन्तु खाने के दाम लेने के लिए किसी तरह राजी नही हैं। भोजन करते समय मै सकुचित हो उठता हूॅ। मेरे सकोच को देखकर रानी भी हिचकिचाती हैं। वह इसके लिए वड़ी सजग रहती हैं कि मेरे सम्मान को ठेस न लगने पावे।

सन्ध्या को नल चट्टी पहुॅच गये। मनोरम स्थान है। पास ही में केलों का एक वन है, उसी के पूरव में छोटा एक डाकघर है, डाकघर के पास ही धर्मशाला है। कुछ दूर पर एक प्राचीन मन्दिर है, उसी के पास कई ससार-त्यागी साधुओ का आश्रम है। घोड़े से उतर कर हम चट्टी में आये और वहीं रात काटी।

अब वह दुस्तर पथ नहीं है, वह संकीर्ण आकाश नही है—पर्वतों के समूह के वीच प्राणान्तकर चढ़ाई-उतराई नहीं है। इस समय आकाश बहुत दूर तक दिखाई देता है, अव नदी भीषण गर्जन नहीं करती, धाराओ का वह अविराम झर-झर शब्द नही सुनाई देता—इस समय स्वदेश की ओर काफी आगे आ गये हैं। सुबह जब रानी से भेट हुई तो वह बोली—इस वार हमे थोड़ा अलग-अलग चलना होगा, उन्हे फिर सन्देह हुआ है . बुआ जासूसी कर रही है। वास्तव मे देखिये तो कितनी नीचता है!

मैंने कहा—सभी हमारे आचरण को क्यो मानेंगे?

'चूॅकि आप घोडे पर चलने लगे हैं इसलिए उन लोगो ने इसके

नाना अर्थ लगाने शुरू किये हैं; एक काम कीजिये, आप घोड़े पर न चढिये, पहले की भाँति पैदल ही चलिये।'

'उससे क्या सुविधा होगी ?'

'सुविधा भले ही न हो, सन्देह तो नष्ट हो जायगा। अब आप घोड़े पर नहीं चढ़े।'

मै बोला—अच्छा ऐसा ही सही।

उन्होने कहा—एक छोटी-सी बात पर उन्हें संदेह हो गया। रास्ते मे खड़े होकर आपने जो दूध मोल लेकर मेरे हाथ में दिया था उसी बात को बुआ ने नमक-मिर्च लगाकर नानी से कहा। सौभाग्य से चौधरी महाशय वही थे, उन्होने कहा दूध मोल लेकर पिलाना कोई अपराध नहीं है। रास्ते मे सभी एक दूसरे के लिए ऐसा करते हैं। चलिये आप आगे, ओह, कहती हूँ ज़रा जल्दी पाँव बढ़ाइये, वे आ रहे हैं।

एक अजीब बात। मानो एक सांघातिक खेल में हम दोनो जने उन्मत्त हो उठे हो। ध्यान देने योग्य बात तो यह है कि स्त्रियाँ एक-दूसरे के प्रति कितनी सजग रहती हैं, कोई किसी का विश्वास नहीं करती। कहीं की कोई एक थोड़ी जान-पहचान की बुआ! अपनी संगिनियो की चरित्र-रक्षा के लिए उसको कितनी फिक्र है। उसकी धारणा है कि अगर वह न हो तो बंगाल की बहुत-सी स्त्रियाँ चरित्र-भ्रष्टा हो जाँय। सौभाग्य से वह मौजूद थी!

रामगगा के किनार चौखुटिया चट्टी में आकर मैंने यह बात फैला दी कि मेरे कमर मे दर्द है, घोड़े पर अब नही चढूँगा। रानी मन ही मन हँसी। पत्तो से छाई हुई एक कुटी मे खाने-पीने का बन्दोबस्त हुआ। पास ही में एक गाँव है, कई दुकाने हैं—एक लोहार की दुकान मे हथौड़ो का कार्य चल रहा है। चट्टी के पीछे नदी के किनारे थोड़ी थोड़ी खेती-बाड़ी दिखाई दी। आज कई दिनो के बाद नहाने का मौका मिला। आबहवा गरम है। नदी की धारा पतली है, प्रावहहीन है, जल छिछला है। लेकिन जब दुकान मे साबुन मिल गया तब क्या था, नदी के किनारे बैठ कर धोती और चादर अलग कर दी। देखा तो घोड़ा, गाय और मनुष्य पास-पास नहा रहे हैं। धूप काफी तेज हो उठी है; गरम देश की ओर आ गये हैं, ज़रा-ज़रा-सी देर मे प्यास लग जाती है, परिश्रम करने की शक्ति भी कम हो गई है। थोड़ा रास्ता और रह गया है, दो दिन बाद ही हम रानीखेत पहुँच जायँगे। स्नान

करके लौट कर देखता हूँ तो पीने के पानी का भारी अभाव है। मालूम हुआ कि कुछ दूर पर जमीन के अन्दर एक सूखे-से झरने में से जल टपकता है। वाल्टी लेकर धूप में चल पड़ा। उस दिन, जिस यत्न से जलचिह्नहीन सूखी नदी के पत्थर के नीचे से पीने का जल इकट्ठा कर लाया, वह बात आज भी मुझे खूब याद है। दोनो हाथो से दोनो वाल्टियाँ भरी हुई लाकर सबको खुश कर दिया। भोजन के बाद दिन मे सो गये। दिवानिद्रा के रूप में ही हम नवीन उद्यम का संचय करते हैं।

सोने के बाद माल-असबाब बाँध कर यात्रा की तैयारी प्रारम्भ हुई। घोड़े पर चढ़ने का नशा खत्म हो चुका है, अतएव घोड़े की पीठ पर झोला-कम्बल रखकर एक वृद्धा को उस पर चढ़ा दिया, वृद्धा सिकुड़कर बैठ गई। उस समय अपराह्न हो चुका था। निकट में ही रामगंगा का पुल; पुल पार होकर दक्षिण दिशा की ओर हम चले। समतल रास्ता है, दोनो ओर देवदार के वृक्ष हैं, खजूर और आम के पेड़ो के जगल हैं। बाईं ओर बहुत दूर तक पहाड़ो की समतलभूमि (पठारो) पर खेत हैं। हम सभी एक साथ चल रहे हैं, रानी को एकान्त मे पाने का इस समय कोई मौका नहीं मिला। आज जान-बूझकर पीछे-पीछे चल रहा हूँ। चौधरी महाशय भी पास-पास चल रहे हैं। बुआ बाकायदा पहरा देती हुई नानी और अन्य सगिनियो के साथ चल रही है। रानी की ओर उसकी कड़ी नजर है।

किन्तु विधि की दया। देखते-देखते आकाश का चेहरा बदल गया। चारो ओर से काली-काली घटाएँ घिर आईं। पेड़ो के सिरो पर तूफानी हवा सरसराने लगी और फिर थोड़ी ही देर मे मूसलाधार वर्षा होने लगी। पहाड़ो पर बारिश बहुत कष्टदायक होती है, जल की बूँदें तीव्र और तीक्ष्ण होती हैं। सब घबरा गये और किसने कहाँ आश्रय लिया इसका ठीक पता नहीं। किन्तु आश्रय ही कहाँ? भीगते-भीगते तेज चलने के सिवा और कोई उपाय नही था। कइयो के पास आइल-क्लाथ (मोमजामे) की बर्सातियाँ थीं—साधारणतः इसी को ढक कर इस देश में कांडीवाले यात्रियो का माल-असबाब ले जाते हैं—उसी कपड़े का टुकडा सिर पर रखकर नानी और दो-एक जन और चलने लगे। रानी को भी उन्होने आइल-क्लाथ के एक टुकड़े से ढक दिया, घोड़े की पीठ पर एक किम्भूतकिमाकार चेहरा लेकर वह चलीं। मैं पीछे से हँस पड़ा।

तूफान। तूफान और बारिश। वृष्टि और वज्रपात। पेड़-पौदे पागल की भाँति उन्मत्त हो उठे, बारिश के जोर से चारो ओर पृथ्वी प्लावित हो उठी। दौड़ते-दौड़ते कौन न जाने कहाँ चला गया, चौधरी महाशय तक का पता नही। उस दुर्योग और मूसलधार बारिश मे रानी ने घोडे की लगाम खींचकर उसकी चाल मन्द कर दी। नज़र बचाकर चुपचाप चला जा रहा था कि उन्होने पुकार कर कहा—रुको, अब भीगना नही, क्या अब भी कुछ और भीगना है आपको! न छाता है, न ओढ़ने को कपड़ा है—आपका सन्यासीपन देखकर बदन मे आग लग जाती है।

'आप तो बहुत मज़े मे चल रही हैं।' मुख फेरकर मैने कहा।

'आप मज़े मे चलने ही कहाँ देते हैं? इच्छा होती है कि मैं भी आपके साथ भीगते-भीगते चलूँ। कहिये, देखा न? कैसे हैं वे? दूसरे के लिए जिनको अधिक चिन्ता रहती है, वे ही विपत्ति के समय अपनी जान बचाकर भाग गये। वास्तव में, आपके इतने स्वच्छ, साबुन से धोए हुए कपड़ो की क्या दशा हो गई, देखिये तो! दूसरे कपड़े तो होगे नहीं, दानी कर्ण की भाँति सब तो दान कर आये कर्णप्रयाग में, अब ये सब आप किस प्रकार सुखाएँगे? चादर भी तो गई!'

मै बोला—शरीर पर ही सूख जायेंगे।

बारिश के झोके से हम परेशान हो रहे थे। आँखो पर, मुख पर, सारे शरीर पर जल था। मुँह पानी से तर-बतर था, माथा सिकोड़कर वह बोली—शरीर पर ही! आपकी बात सुनकर बदन में आग लग जाती है। बीमार पड़ गये तो देखने-भालनेवाला यहाँ कौन है?

'क्यो, आप?'—हँसकर मैंने कहा—ऐसा हो जाय तो निश्चय ही सोलह कला-पूर्ण हो जायँ। - एकाएक रास्ते की ओर देखकर घोड़े को चाबुक मारकर उन्होने तेज़ी से उसे दौड़ा दिया।

पहाड़ी देश की वृष्टि, देखते-देखते फिर आकाश हल्का हो गया। शून्य मन से धीरे-धीरे चल रहा था। वृष्टि बन्द हो गई, तूफान रुक गया, आकाश साफ हो गया, रास्ते मे एक पुल पार कर दक्षिण की ओर चले। देखते-देखते शेष अपराह्न की म्लान धूप फिर एक निर्लज्ज की भाँति प्रगट हो गई। और दो मील चल कर हम साँझ को एक धर्मशाला के पास आ पहुँचे। स्थानीय कई हिन्दी-भाषी सम्मान्य जन एक दुकान के पास बैठकर बातचीत कर रहे थे। बंगालियो की मडली देखकर वे आगे चल कर बातचीत करने लगे। सामने की धर्मशाला को रहने के लिए उपयुक्त न बताकर उन्होने स्कूल के कमरे मे हमारे

रहने की व्यवस्था कर दी। स्कूल को देखने ही यह समझ मे आ गया कि इसके आस-पास गाँव है। पडितजी आये, साथ मे कई विद्यार्थी भी। आकर उन्होने देश के संबध मे नाना प्रश्न पूछने प्रारंभ कर दिये ' कांग्रेस की कैसी अवस्था है, महात्माजी कब रिहा होगे, धर-पकड़ अभी भी हो रही है या नही, इन प्रश्नो के द्वारा उनकी उत्सुकता और उनका उत्साह भॉप कर मैं विस्मित हो उठा। सुनने मे आया कि अल्मोड़ा स समय-समय पर उन्हे देश की खबरे मिलती हैं।

स्कूल के कमरे के बरामदे मे हमारा डेरा जमा। बरामदे मे फूलो के कई पेड़ थे ; पास ही मे लड़को के खलने के लिए थोड़ी खुली जमीन थी, पश्चिम की ओर लकड़ी का एक कारखाना था। बरामदे के एक ओर हम चौदह यात्रियो ने आश्रय लिया। बारिश से सब कपडे-लत्ते व विस्तर भीग चुके थे, ख़ैर सौभाग्य स रास्ते मे हवा स थोड़ा उन्हे सुखा लिया था। सध्या का अन्धकार घना हो गया, दो-तीन हरीकेन लालटेने जला ली गई। यात्रियो की भीड़ मे रानी और नानी व्यस्त रही। आज कई दिनो बाद झोली के अन्दर से कागज़ और कलम निकालकर नोट लिखने बैठा। कितना रास्ता, कितनी घटनाएँ, कितनी स्मृति। जीवन की बाहरी कथा लिखी जा सकती है, किन्तु उसकी महत्वपूर्ण घड़ियो के दु ख और आनन्द को भाषा द्वारा प्रगट करना कठिन कार्य है। कलम लेकर बरामदे मे एक एकान्त जगह पर बैठ तो गया लेकिन समझ मे नहीं आया कि क्या लिखूँ। लिखकर प्रगट ही कितना किया जा सकता है। सध्या तो बीत चुकी किन्तु एक पंक्ति भी नोट न कर सका। इस वक्त मुझे भोजन बनना है, चौधरी महाशय मेरा पकाया खायेंगे। बरामदे के पार आते समय आज सध्या को फिर वही चमत्कारपूर्ण दृश्य देखा। जप समाप्त कर निर्वाक दृष्टि से देखती हुई रानी बैठी है, हाथ मे उसके वही रुद्राक्ष की माला है। लालटेन के प्रकाश मे मेरी ओर देखा—प्रसन्नतापूर्ण बड़ी आँखें, स्वप्न और तन्द्रा से अभिभूत आँखे, अर्द्ध-निमीलित। जिस नारी को देखा है सारे पथ में, जिसको देखा है घोड़े की पीठ पर, जिसके कलहास्य, कल-कठ तथा प्राण-चांचल्य से सारा पथ चकित और मुखर हो उठा—वही मायामयी योगिनी यह नही है, यह तो उसकी एक आमूल परिवर्तित प्रतिकृति है। वह ऐसी बेसुध थी कि मानो उसकी आत्मा देह को अतिक्रम कर कही दूर चली गई हो, रानी ने मुझको नही पहचाना। आँखो से आँखे मिलाये हुए खड़ा था, किन्तु मेरा सिर शर्म से झुक

गया, मुख फेरकर उस पार जाकर नानी से बोला—आपके लिए कुछ लाना है ?

नानी बोली—हाँ भाई लाना है, दुकान में हैं भूँजे चने और पेड़े। उन्ही को ले आओ—ये नौ पैसे हैं. पेड़े ही यहाँ भाग्य में लिखे हैं।

कुछ देर बाद पेडे और भूँजे हुए चने लाकर खड़े होते ही रानी ने कहा—मेरे हाथ मे दीजिये, नानी जप कर रही हैं।

उन्हीं के हाथ में दे दिये। उन्होंने हँसकर कहा—मैनी थैंक्स !

दूसरे दिन आठ बजे। द्वाराहाट का छोटा पहाड़ी शहर पार हो गया है। दो रास्ते दो तरफ को गये हैं, एक अल्मोड़ा की ओर और दूसरा रानीखेत में जाकर मिलता है। रानीखेत का रास्ता पकड़ा, पास ही में भैरव का एक पुराना मन्दिर है। मन्दिर के पीछे विस्तीर्ण प्रान्तर, उसी की असमतल गोद में पहाड़ी गाँव है। रास्ता धीरे-धीरे नीचे को उतरा। इतने दिनो के बाद फिर श्रमिक नर-नारी मिले हैं। किसी के सिर पर घास है, किसी के सिर पर लकड़ी का गट्ठा और किसी के सिर पर गेहूँ का बोझ ; कोई घोड़े की पीठ पर माल-असबाब रखकर जा रहा है। हमारे दल में कुल पाँच घोडे हैं, चार की पीठ पर यात्री हैं, एक की पीठ पर माल-असबाब है। एक क़तार मे घोड़े खट-खट करते, रास्ते मे धूल उड़ाते चले जा रहे हैं। घोड़ो का जैसा साज-सरंजाम है और उनके ऊपर वृद्धाएँ जिस हास्यास्पद ढङ्ग से बैठी हुई हैं, उससे यह जान पड़ता है कि घोड़े पर चढने के समान और कोई लज्जाजनक बात नहीं है। वृद्धाओं की ओर देखकर रानी की हँसी बन्द ही नही होती।

आज धूप तेज है, गरमी से सभी परेशान हैं। क्षण-क्षण मे गला सूख जाता है ; झरने भी नही, जलाशय भी नहीं। जल का कहीं नामो-निशान नहीं ! कल से ही बाकायदा पानी की तकलीफ शुरू हुई है। रूखे-सूखे, पेड़-पौदे-हीन पहाड़ हैं, छाया कही भी नहीं। धूल भरी गरम हवा के झोको से चारों ओर अन्धकार हो गया है।

पानी, पानी ; पानी के बिना हम बहुत कष्ट पा रहे हैं। सब पीड़ाएँ सही हैं, किन्तु पानी की तकलीफ यह पहली है। यदि कोई एक घड़ा पानी दे दे तब अनायास ही इस झोले-कम्बल को उसको दे सकता हूँ। चातक की तरह भारी प्यास के कारण जल के लिए चारों ओर देखते हैं, किन्तु कही भी जल नहीं। दस मील तक यह जल-कष्ट है।

करीब बारह बजे के समय एक दुमंजिले चट्टी मे चले आये। यहाँ से दूर पहाड़ की चोटी पर रानीखेत का अस्पष्ट शहर दिखाई देता है।

चट्टी मे पहुँचते ही जल के लिए दौड़ पड़ा। पास ही मे कुछ खेत थे, उन्ही मे से होकर झरने की एक धारा वह रही थी। किन्तु थोड़ा विश्राम लिये विना नहीं चला जा सकता। एक दुकान की दूसरी मजिल मे भीतर जाकर बैठ गया—चलने की बिलकुल ताकत नहीं। केवल दो-चार जन आ पाये हैं, नानी, चौधरी महाशय वगैरह कई लोग नही आये। मालूम होता है कि रानी ने पास बैठकर मेरी यह हालत देख ली थी। सब चुप थे। इस समय फर्श पर बिखरी अटरम-शटरम चीजो में से कुछ चीज चमकती-सी दिखाई दी, उठा कर देखा तो छोटा एक ताम्बे का पतला टुकड़ा, उसके ऊपर लक्ष्मी के दो चरण खुदे हुए थे। उसी समय उठकर मुफ्त मे उस मैने रानी को भेंट कर दिया। लक्ष्मी के चरण-चिह्न देखकर उन्होने सादर उसे लेकर पास मे रख लिया। साधारण हो गया असाधारण।

बहुत कठिनता से जल सग्रह कर प्यास बुझाई। नानी आई, उनके साथ आई विजया दीदी रोते-रोते। क्या माजरा है? देखा तो उनके पैरो के तले विवाई फटने से अत्यन्त पीड़ा हो रही है, अब वह चलने मे असमर्थ हैं। सब झाड-फूँक और जड़ी-बूटियाँ व्यर्थ हुई। विजया दीदी पूर्वी बगला भाषा मे विलाप करने लगी। खाने-पीने का वन्दोवस्त होने लगा।

फिर यात्रा। विजया दीदी की अवस्था देखकर रानी ने अपना घोड़ा उसे दे दिया। अतएव आज रानी की पहली पैदल यात्रा है। पाँवो की व्यथा उनकी सामान्य ही है, इतना रास्ता किसी तरह चली जावेंगी। एक दिन उन्होने पाँवो मे एक जोड़ा चप्पल पहनी थीं, आज फिर पाँवो मे कैनवेस का सफेद जूता पहना। इस वार रास्ते मे थोड़ी-थोड़ी उतराई है इसलिए चलने मे कोई कष्ट नहीं। आज सुवह से ही वातचीत करने को एक बार भी मौका नही मिला है, दाएँ-बाएँ सतर्क आँखे है, बुआ चुपचाप पहरा दे रही है। इस समय शासन नहीं, केवल सतर्कता है। रानी भी उसी तरह की स्त्री हैं, मानो कही कुछ गोपन नही इस भाव से वातचीत करते-करते साथियो के साथ चल रही हैं, मेरी ओर ताकने की भी उन्हे फुर्सत नही। सब समझ गया। मैं भी अखण्ड उदासीनता का पालन कर आगे-आगे चल रहा हूँ, रानी को मानो पहिचानता ही नहीं। रानी कौन है?

गाँव मे से होकर टूटा-फूटा, टेढ़ा-मेढ़ा रास्ता जाता है, उसी रास्ते मे जीर्ण लकड़ी का एक पुल पार कर हम ठीक चार वजे गगास पहुँच

गये। गगास एक जलाशय के किनारे छोटा-सा एक पहाड़ी शहर है। हममे से कई एकों को पैदल चलते देखकर स्थानीय कई लोगो ने घोड़े लाकर हमारे सामने हाजिर कर दिये। घोड़ा देखते ही रानी लँगड़ी होकर बैठ गई। कहने लगी—इतना तो चली हूँ, समझी नानी, लेकिन फिर वही पीड़ा.. सच, न मालूम क्या हो गया मुझको!

अतएव इस वार उन्होंने सफेद रंग का एक मजवूत घोड़ा किराये पर ले लिया। रानीखेत तक का भाड़ा कुल एक रुपया तय हुआ। साथ में एक छोकरा साईस चलेगा। इस वार वहुत अच्छा सवारी का घोड़ा था। मुझको इशारे से आगे चलने के लिए कहकर वह घोड़े पर चढ़ी।

फिर सामने एक वड़ी चढ़ाई आई। पहले तो डर गया। किन्तु यही अन्तिम चढ़ाई है, अन्तिम पहाड़ है, यह यदि किसी तरह पार हो जाय तो हमारी मुक्ति निश्चित है। इस वार अव हम पथ के पंजे से मुक्त हो जायँगे, इस खयाल से वड़ा आनन्द मिल रहा है। पथ हमें इस वार विदा दे देगा इस वात को सोचते ही वेदना होती है। किन्तु क्यों?... आनन्द-वेदना के लहरो पर इस तरह झूलना क्यों अच्छा लगता है? क्या पाया है?

केवल छः मील सामान्य पथ रह गया है। कुछ दूर आगे चलकर दिखाई दिया कि यदि थोडा अधिक परिश्रम कर सीधा चढ़ा जाय तो रास्ता वहुत कुछ शॉर्ट-कट हो जाता है। यही किया, भारी ताकत से, वेपरवाह होकर, जिस तरह चींटी दीवार को पार कर जाती है उसी तरह करीव आध घण्टे की मेहनत के वाद खड़े पहाड़ की चोटी पर जा पहुँचा। अन्य यात्री जो इस रास्ते के इतिहास से अपरिचित हैं, वहुत पीछे पड़े रह गये। इसका नाम है कौशल से रास्ता चुराना। जिनकी यह धारणा है कि मैं पीछे-पीछे आ रहा हूँ, वे कुछ देर वाद देखेंगे कि मै ही सवसे आगे हूँ। रास्ते की धार पर एक वडे पत्थर के ऊपर खडे होकर कुछ देर विश्राम लिया। जो कुछ सोचा था वही हुआ, रानी का सफेद रंग का वह तेज घोड़ा दौड़ते-दौडते आ रहा है। कन्धे पर मेरे एक लाल रंग का गमछा था, उसको ऊपर-नीचे हिलाते हुए रानी ने देख लिया। लाल-झंडी का सिगनल! घोड़े को और तेज दौड़ाकर वह पास आ गई। पहले ही हँसते-हँसते वोली—इस वार वे खूव ठगे गये हैं—उनका खयाल है कि आप वहुत पीछे हैं। ओह अभी भी हाँफ रहे हैं। किन्तु खडे होने से काम नहीं वनेगा, चलिये। देखते हैं, कितना अच्छा घोड़ा मिला है इस वार? इच्छा होती है कि इसे घर ले चलूँ।

निःश्वास फेंक कर वह फिर बोलीं—रास्ते के आखिरी भाग में बहुत आनन्द मिला है, सदा याद रहेगा।

चलते-चलते उन्होने फिर कहा—पाँवों मे ज़रा भी तकलीफ नहीं, सहज ही मे इतना रास्ता चले चलती, किन्तु ऐसा करने से आपके साथ बातचीत न हो सकती . भाग्य से घोड़ा मिल गया !

अपरान्ह की धूप मन्द हो गई है। चीड़ के पेड़ों के घने जगल के भीतर उनका घोड़ा चल रहा है। चारों ओर एक प्रशान्त नीरवता है। समय-समय पर वायु के झोके लग रहे हैं—उस वायु मे जगल का मर्मर शब्द नहीं है, चीड़ के वन का दीर्घ निःश्वास है। ऐसा जान पड़ता है कि मानो हमारे अर्थहीन तथा अस्थायी बन्धुत्व की ओर देखकर काल का देवता करुण निःश्वास फेंक रहा हो। आज सुबह से क्षण-क्षण मे विदाई का स्वर ध्वनित हो रहा है। हमने एक दूसरे के हृदय को स्पर्श किया है, उसको विच्छिन्न करने का समय आ गया है। सहज मे ही हम मिले थे, सहज रूप से ही बिछुड़ने की चेष्टा मे हैं। यह बात तो माननी ही पड़ेगी कि हमारे बीच मे एक सुस्पष्ट ममत्व-पैदा हो गया है, विदाई के समीप होने का विचार ही उस पर आघात कर रहा है। हमे ज्ञात है कि हमारे इस परिचय को इतना अधिक दृढ़ किया है उन्ही उत्तुंग पर्वत-मालाओ ने, नदियो ने, उन्ही वन-जंगलो ने—वह अनन्त विश्व-प्रकृति की पटभूमि न होती तो हम एक दूसरे को इस तरह एकान्त मे नही पहिचान पाते। उन्होने मृदुकंठ से कहा—आपके लिए मैंने बहुत चोरी की, किन्तु उसके कारण मेरे मन मे कोई ग्लानि नहीं। आपके साथ यात्रा के कुछ अन्तिम दिन जो मैंने बिताये हैं वे मेरी जप की माला में रुद्राक्ष की तरह गुँथे रहेगे।

सनोवर के पेड़ो के वन स सूर्यास्त की रक्तिम आभा दिखाई दे रही है। कहीं-कहीं पेड़ो पर वन-पक्षियो का कलरव सुनाई दे रहा है, इस पार पहाड़ो के शिखर पर दिनान्त की क्लान्त धूप लाल हो उठी है। उन्होंने फिर कहा—शायद जीवन मे फिर दुबारा आपसे भेंट न हो, किन्तु उसके लिए मुझे दुःख नहीं है। मैं अपनी सब बातो को निःस्सकोच रूप से प्रकट कर सकी हूँ, इसके लिए मुझे खुशी है—हाँ, भ्रमण-कहानी क्या आप लिखेंगे ? किस पत्र मे ?

मैंने कहा—यदि लिखूँगा तो "भारतवर्ष" मे ही लिखूँगा।

'अच्छा ही होगा, मैं "भारतवर्ष" की ग्राहक हूँ। किन्तु देखना सावधान ..'

दो मिनट चुप रहकर वह फिर बोलीं—आपसे अनुरोध है कि मेरे जीवन की सारी कथा आप प्रकाशित कर दें। आपके लेखों से यह जान सकूँगी कि मै क्या हूँ।

हँसकर मैंने उत्तर दिया—सब बाते ही कम कर दूँगा, लिखूँगा सामान्य ही।

उन्होंने कहा—मेरा विश्वास है कि सुन्दर रूप में कहने से सब कुछ कहा जाता है; आप सुन्दर रूप में लिखेंगे; केवल मेरी कथा ही नहीं, अन्य लेख भी। आपकी सब रचनाओं द्वारा एक महान जीवन को स्पर्श करने का-सा अनुभव होता है—उसके भीतर रहती है अनन्त प्रीति और ममता।

विस्मित होकर उनकी वाणी सुनता चला जा रहा हूँ। यह भी उनकी एक अभिनव मूर्ति है। वह कहने लगीं—अन्याय और असत्य को मैं क्षमा नही करता; समस्त सामाजिक मिथ्याचार, निर्लज्ज वर्बरता, मनुष्य की कुटिलता और अपमान—मेरी रचना मे इनके विरुद्ध मानो सर्वनाशकारी ध्वंस का कठोर स्वर ध्वनित होता है। जो वंचित हो गये हैं, अन्याय के विरुद्ध आवाज़ नही उठा सकने से जिनका सिर झुक गया है, शतकोटि बन्धनो से जकड़े रहने के कारण जो साँस नहीं ले पाते—मेरे साहित्य मे मानो उन्ही की आत्मा की भाषा बोल उठती है। मेरी कहानियो मे जो पात्र आते-जाते है वे मानो सब विरोध और असत्य से मुक्ति पा जाते हैं, सब मिथ्या और सब प्रकार की लज्जा से वे मानो महत्तर जीवन की ओर बढ पाते हैं।

'बंगला पुस्तक तथा पत्र मैं नियमित रूप से पढ़ती हूँ।' उन्होंने कहना प्रारम्भ किया—रात मे जब सब सो जाते है उस समय मै जागती हूँ। किन्तु पढ़ने से हँसी ही आती है। आजकल के साहित्य तथा समाचार-पत्रो मे अन्तर नही। लेखो के भीतर से मैं देखती हूँ लेखकों को। उनका कैसा संकीर्ण जीवन है कैसी स्थूल दृष्टि है! परिश्रम होता है किन्तु साधना नही होती। अपने मनोभावो के साथ फिट कर अपनी खुशी के मुताबिक वे स्त्री-पुरुषो का चरित्र चित्रण करते हैं, इसी से वे कठपुतलियो-से हो जाते हैं। इनको पढने से हँसी आती है। किन्तु क्रोध तो उस समय आता है जब कि यह देखती हूँ कि इन्ही बातो को लेकर अक्षम्य लेखकगण नाना प्रकार की कसरत तथा दाँव-पेच दिखाते हैं। जीवन मे प्रेम और वीर्य का अस्वाभाविक अभाव उनको दिखाई नही पड़ता और यही उनके साहित्य मे दुर्बल लालसा के इतिहास—

मॉरविड मन की कुत्सित अभिव्यक्ति के रूप में प्रगट हो जाता है।

कमलिनी जिस प्रकार धीरे-धीरे एक-एक दल को खोलकर अन्त में पूर्ण रूप से विकसित हो उठती है, इस नारी का परिचय भी उसी प्रकार मिला। अवश्य, सब बातें उसने इस तरह गूँथ कर उस दिन नहीं कही, कुछ प्रकाश में लाई और कुछ अप्रकाशित ही रखी; किन्तु यही था उनका मूल वक्तव्य।

चार मील रास्ता और चलकर सध्या के समय हमने रास्ते की आखिरी चट्टी में आकर शेष रात्रि के लिए आश्रय लिया। दूर पूर्व दिशा में रानीखेत शहर की कई रोशनियाँ यहाँ से दिखाई देती हैं, कल सुबह वहाँ पहुँचेंगे। अगल-बगल दो पक्के घर हैं—रहने के लिए ऐसे स्थान हमें निश्चय ही कम मिले हैं; घर मे खाने-पीने के सामान की एक दुकान है। दुकान में रात्रि के भोजन का प्रबन्ध हुआ। थोड़ी देर बाद ही चौधरी महाशय और नानी वगैरह समारोह के साथ उपस्थित हुए। आते ही किसी एक बात पर नानी और चट्टीवाले के बीच विवाद उठ खड़ा हुआ, नानी बदमिज़ाज औरत थी—क्रोधित होकर सब चीजें और सगी-साथी लेकर पास के घर में चली गईं। मै एक चौकी पर यहीं पड़ा रहा। आकाश के तारों की ओर देखकर रानी की कही हुई शेष बातो पर विचार कर रहा था। शुक्लपक्ष का शीर्ण चन्द्र उस समय पहाड़ों के पश्चिम की ओर अस्त हो गया था। किन्तु मेरे मन में कहाँ बात जमी है और कहाँ व्यथा हो रही है?

दूसरे दिन सुबह उदय होते हुए सूर्य के प्रकाश मे, चीड़ और सनोवर के वनो मे टेढ़े-मेढ़े रास्ते से जासूस बुआ की नज़रो से बचकर, गिद्धो से घिरे हुए एक श्मशान से चुपचाप खिसककर, चौधरी महाशय के साथ बातचीत करत-करते,—इतने दिनो के बाद रानीखेत के प्रकांड शहर की सीमा में आ पहुँचे। पास ही मे गोरे सैनिको की एक छावनी है, उसके पास सरकारी दफ्तर, क्लब, बोर्डिङ्ग हाउस, डाकबॅगला तथा सैनेटोरियम हैं—शहर का विविध प्रकार का साज-सामान है। चारों ओर एक बार शून्य दृष्टि से देखकर घोड़ा छोड़कर रानी बैठ गईं। मालूम होता था कि इस सुबह भी वह थकी ही हैं, बहुत थकी हुई हैं। निराशा, अवसाद तथा कारुण्य से उनकी आँखें ढकी दिखाई दीं। उनको पीछे छोड़कर आगे चला गया। रास्ते पर मुड़ते ही असंख्य दुकानें, बाजार, होटल, घर, फेरीवाले तथा अनगिनत लोग आते-जाते नज़र आये; उस ओर कई मोटर बसें दिखाई दी। अवाक होकर

मोटरों को देखता रहा। मोटर के पहियों की ओर देखकर द्रुतगति के आनन्द में उल्लसित हो उठा। भूल गया हूँ यन्त्र-सभ्यता की वात—सबसे विच्छेद हो गया है, अनात्मीयता हो गई है। सभ्यता, सौजन्य और सामाजिकता की केंचुली फिर पहननी पड़ेगी।

पहले ही उठकर चाय की दुकान मे चल दिया। जिस निश्शब्द नीरवता को दीर्घ काल के वाद अतिक्रम किया है उसके साथ वर्तमान स्थिति का कितना भेद है। लोहा-लक्कड़ की कटकट-खटखट, कुत्ते और मुर्गे की आवाजें, गिर्जे के घण्टे का वजना, गोरा छावनी मे बैग पाइप की ध्वनि, दुकानदारो का हो-हल्ला, मोटर की आवाज़, राहगीरो का उच्छृङ्खल आलाप, हँसी मज़ाक, भोंपू की आवाज़—विलकुल विभ्रान्त हो उठा। इनके साथ आज हमारी कोई सगति नही, हम मानो नये देश के मनुष्य हैं; वन्य और पार्वत्य प्रकृति हमारी है, हमारा आचार-व्यवहार सम्पूर्ण रूप से स्वतंत्र है, हमारी चाल-ढाल विलकुल भिन्न है—इसी नागरिक सभ्यता के आईने मे अपना प्रतिविम्बित चेहरा देखकर हम विस्मय और संकोच से खुद ही अलग चले गये। हमारी पोशाक मे, हाव-भाव मे आचार-व्यवहार मे, भाव-भंगी मे मानो हिमालय की वन्य-प्रकृति ने डेरा जमा लिया है; एक-दूसरे की ओर देखकर हम सव चुप हैं। ऐसा जान पड़ता है कि आदिम युग के हम सभ्यता-लेशहीन मनुष्य एकाएक तथाकथित सभ्यता के कोलाहल मे आ पडे हैं—निर्जन हिमालय के गह्वर की ओर भाग पड़ने की हमारी फिर इच्छा होती है।

हम चौदह जन है। प्रत्येक यात्री पीछे दो रुपया देकर यहाँ से एकावन मील दूर हल्द्वानी स्टेशन तक मोटर वस ठहराई गई। करीब आठ वजे गाड़ी छूटी। वाईं ओर यहाँ से एक रास्ता अल्मोड़ा की ओर चला गया है; अल्मोड़ा से भिकियासैण को। हमारी गाड़ी काठगोदाम को चली। पहाड़ से धीरे-धीरे उतर रहे हैं, खूव पक्का रास्ता है, एक ओर पत्थरो की वड़ी दीवार है, वहुत नीचे एक नदी वहती है, उस पार जंगल है—जंगल मे कही-कही झरने प्रवाहित हो रहे हैं। सुन्दर प्राकृतिक दृश्य है। एक गोल भँवर की तरह घूम-घूमकर मोटर नीचे उतर रही है, कही झकझोरती है और कहीं झूले की तरह ज़ोर स हिला देती है।

अद्भुत लग रही है यह गति, यह तेज़ी; मालूम होता है कि हमारे पाँव ही मोटर के पहिये हैं, हम ही दौड़ रहे है—ऐसा ज्ञात होता है कि थकावट नहीं है, उदासीनता नही है। हमारे मन मे, हमारे विचारो मे,

हमारे चरित्र मे मानो वही अनन्त पथ है—पथ ही पथ है। गाड़ी के भीतर बैठकर भी हम चल रहे हैं—केवल चल रहे हैं। हमारे पॉव रुक नही गये हैं। वृद्धाओ ने मोटर के भीतर स कै करना शुरू कर दिया—वे मोटर-यात्रा को सह कैसे सकती हैं? उनके शरीर पर इस यन्त्रयान के सघात का बुरा असर पड़ा है। रानी पीछे की सीट मे बैठी हैं, मेरी बाईं ओर चौधरी महाशय हैं। गाड़ी बहुत छोटी है, ठसाठस उसमे सब लोग भरे पड़े हैं। किसी के शरीर पर किसी का हाथ है, किसी के पॉवो में किसी का पाँव फँसा हुआ है—एक बार अपना पाँव खुजलाने के लिए हाथ बढ़ाया तो किसी के हाथ को थपथपा बैठा। भीड़ के बीच में अपनी स्वतत्रता की रक्षा करना कठिन है।

करीब साढ़े दस बजे हल्द्वानी स्टेशन आ पहुँचे। अन्तिम जेठ की प्रखर धूप मे चारो दिशाएँ धाँय-धाँय कर रही हैं। ऐसा जान पड़ता है कि ठंढे देश मे से उठाकर हमें अग्नि-कुण्ड मे झोक दिया गया हो, ग्रीष्म की दोपहरी की प्रचंड आग की लपटो से सारा शरीर झुलस-सा गया। ऊँचे से एकाएक नीचे इस गरम देश मे उतरने से साँस रुक-सी जाती है, हॉफते हुए बार-बार निश्वास लेने लगे। रानी बिलकुल मौन है, हिमालय को छोड़ने के बाद उनका दिल न जाने कहाँ टूट गया है। जब तक कोई बड़ी आवश्यकता ही नही आ जाती तब तक वह नहीं बोलती हैं; एक दुकान में एक चौकी के ऊपर वह उदासीन हो बैठी रहीं। माल-असबाब लेकर हम थर्ड क्लास के मुसाफिरखाने में आ गये और उस वक्त वही आराम किया। भारी निश्वास के कष्ट से शरीर की हालत खराब दिखाई देती है।

रानी ने मानो मन्त्र-बल से मेरी अवस्था जान ली। एक बार एकांत पाकर मेरे सिर पर स्नेह से हाथ फेरकर, जिस तरह मा उद्वेलित आकुलता पूर्वक अपने शिशु से उसकी कुशल पूछती है, उसी तरह कोमल कंठ से वह बोली—ओह, मुख यह कैसा हो गया है? मालूम होता है कि तबियत अच्छी नहीं है?

मैंने उत्तर दिया—साँस लेने में कष्ट मालूम होता है।

उन्होने घबराकर कहा—ओह, तब जान पड़ता है कि हार्ट पैल-पिटेशन है। मेरे पास दवा है। आप जाकर चौधरी महाशय से कहिये। मैं अभी दवा निकाल दूँगी।

दवा खाने के बाद शरीर स्वस्थ हो गया। चौधरी महाशय चुपचाप पड़े रहे। मैं भी पड़ा रहा। दिन मे तो कोई गाड़ी थी नहीं; अतएव

दिन भर आराम कर शाम को छः बजे की गाड़ी में चढ़े। बालामऊ का टिकट कटाया है, नैमिषारण्य होकर जाने की इच्छा है। सब बंगालियों ने मिलकर रेल के एक कमरे पर अधिकार कर लिया है। गाड़ी तो छोटी ही है ; लेकिन बड़े जोर से छक-छक आवाज करते चल रही है। ग्रीष्मकाल का लम्बा दिन समाप्त हो गया, प्रान्तर के उस पार सूर्यदेव अस्ताचल को चले गये, थकी आँखों मे नीद आने लगी, दूर की पर्वत मालाएँ धीरे-धीरे विलीन हो गईं। नानी, रानी तथा चौधरी महाशय चलती हुई गाड़ी मे ही अपने जप मे ध्यान लगा कर बैठ गये।

रात के साढ़े नौ बजे के समय सब ने बरेली स्टेशन मे गाड़ी बदली और काशीवाली गाड़ी मे बैठ गये। गाड़ी मे खूब भीड़ थी और बेहद गर्मी। अनेक प्रयत्न करने पर भी कहीं ठंढा जल नहीं मिला, सभी प्यास से छटपटा कर निराश होकर बैठ रहे। थकावट, मेहनत और गरमी की अधिकता से सभी मृतप्राय हो गये थे, गाड़ी के चलने के कारण झकझोरों से सभी सहज में ऊँघने लगे। और कहीं कोई चूँ भी नहीं कर रहा है। खिड़की के पास सिर झुकाकर रानी भी ऊँघने लगी। मै ऊपर सीट मे चला गया।

ठीक समय पर एकाएक नीद टूट गई। रात के ढाई बज गये हैं। सभी घोर निद्रा में अचेत पड़े हैं नीचे उतर कर देखता हूँ तो सजग दृष्टि से देखती हुई रानी बैठी हैं। उनकी आँखो मे नीद नही, मानो नींद कभी थी ही नहीं। बाहर अन्धकार की ओर देखकर पत्थर की मूर्ति की तरह बैठी थीं।

मैंने कहा—क्या बालामऊ पार हो गया है ? रानी आँखें उठाकर कुछ देर तक मेरी ओर देखती रही, उसके बाद मृदु कण्ठ से बोली—यदि पार भी हो गया है तो उससे क्या, बालामऊ मे आप नही उतरेंगे।

'क्यों ?'

निद्रित नानी की ओर देखकर वह धमकाकर बोली—घर नहीं लौटोगे ? काशी से आये हैं, काशी ही चलिये। और तीर्थ-भ्रमण की जरूरत नहीं है, पर्याप्त तीर्थ-यात्रा हो चुकी है।

मैने कहा—किन्तु मेरा टिकट तो बालामऊ का ही है ?

उन्होंने उत्तर दिया—रास्ते में बदल लीजिये।

चुप बैठा रहा। वह मानो फिर चिन्ता-सागर मे डूब गईं। किन्तु थोड़ी देर ही के लिए, उसके बाद ही मेरी ओर उज्ज्वल चक्षुओं से देखकर बोली– इससे ही क्या ? यह भी तो मिथ्या है, अर्थ-हीन है ! आप

क्या कुछ विश्वास करते हैं ? इस लोक मे ? परलोक मे ? पुनर्जन्म मे ?

उनके प्रश्नो का उत्तर देना सभव नहीं था। द्रुतगामी ट्रेन के बाहर घनी अँधेरी रात भी उनके प्रश्नो के प्रति निरुत्तर ही रही।

देखते-देखते गाड़ी बालामऊ स्टेशन मे आकर रुक पड़ी। रात के तीन बज चुके थे। उतरा तो नहीं; किन्तु गाड़ी की झकझोर से सभी जाग उठे। नानी ने उठकर पूछा—क्यो भाई तुम यहाँ नही उतरे ?

मैने कहा—नानी जाने भी दो, इस यात्रा मे नैमिषारण्य नही देखा जा सकेगा।

'खैर ठीक ही है, इतने परिश्रम के बाद अरे बैठे-बैठे ही तू खुर्राटे भर रही है, क्यो रानी ? अहा, बिलकुल नींद मे बेहोश है—दो दिनो से खाना-पीना भी तो नहीं हुआ...

निद्रा का ऐसा चमत्कारपूर्ण त्रुटि-रहित अभिनय देखकर हँसी से पेट फूल उठा। रानी यह नहीं जतलाना चाहती थी कि वह अब तक जगी हुई थीं।

सुबह लखनऊ पहुँचे। पैसेंजर गाड़ी से जाने में बहुत देर होगी, इसलिए लखनऊ में गाड़ी बदलने के लिए फिर उतर पड़े। बहुत समय है—झोला-कम्बल रखकर स्टेशन के रेस्टोरां में चाय पीकर बाहर आया और एक ताँगा किराया कर शहर घूमने चल दिया। प्रभात के प्रकाश मे सुन्दर लखनऊ नगरी उस समय अपनी आँखे खोल रही थी। रास्ता, दुकान, बाजार आदि पार कर नवाबो के महलो के बीच से होती हुई गाड़ी चली। पुराना किला, ऐतिहासिक भग्नावशेष, लाट साहब की कोठी, मैदान, गोमती नदी, उस पार विश्वविद्यालय—सबके ऊपर नजर डाल कर दो घण्टे बाद बाजार से एक जोड़ा स्लीपर खरीद कर फिर स्टेशन आ गया। देहरादून एक्सप्रेस आने मे उस समय देर नही थी। गाड़ी आ गई, माल-असबाब लेकर सभी गाड़ी मे चढ़ गये, गाड़ी मे चढ़ते वक्त फटे हुए सफेद कैनवेस के जूतो को लखनऊ स्टेशन को उपहार मे दे आया। दुस्तर हिमालय के विचित्र इतिहास और अनन्त स्मृति को लेकर अनादृत वे रास्ते के किनारे पड़े रहे। कंकड़-पत्थर मे, बर्फ मे, वर्षा में उन्ही जूतो ने भाई की भाँति मेरा साथ दिया था। मेरे पाँवो के नीचे आश्रय लेकर मुझे विपत्ति और दुरवस्था से बचाया। जूतो के इस जोडे को रास्ते के ऊपर फेंक कर प्रति पदक्षेप में मैंने उसका हृदय दलित किया है। आज मानो वह जोड़ा अपने दो करुण नेत्रो से एकटक बहुत दूर तक मेरी ओर देखता रहा।

धूप तेज होने लगी, खुले प्रान्तर के चारों ओर मानो आग भड़क उठी है। आकाश धूसरवर्ण है, कहीं भी बादलों का निशान नही, नदी-तालाव सूख गये हैं—गाड़ी खूब तेज चल रही है। देश-देशान्तर पार हो रहे हैं, मानो सब कुछ नया है। ये सब चीजें मानो पूर्वजन्म की हैं, जन्मान्तर के बाद आने पर कुछ भी नही पहिचाना जा रहा है।

फैजावाद, अयोध्या, शाहगंज पार हो चुके, जौनपुर भी पीछे रह गया—इस वक्त तेज धूप में पुनर्जन्म ग्रहण किये हुए हम तीर्थ-यात्रियों का दल फिर काशी स्टेशन में आ पहुँचा। शेष जेठ की आग चारों ओर वरस रही है।

स्टेशन से ही सबसे विदा ले ली। बस्ती के बीच में आकर हमारा सब सम्पर्क समाप्त हो गया। आज यह अनुभव हुआ कि हम बिलकुल पराये हैं, कहीं भी आत्मीयता का बन्धन नहीं है। पथ का परिचय पथ के समाप्त होने पर ही खत्म हो गया। भीड़ के बीच में खड़ी होकर रानी कुछ कहती-सी दिखाई दीं, किन्तु सुनने का मौका नहीं मिला, उनका कण्ठ भी रुद्ध हो गया। रुद्ध हो गया सदा के लिए!

धूप में निर्जन पथ पर थका हुआ मै एक इक्के मे चल रहा हूँ, इक्का बहुत ही धीरे-धीरे चल रहा है, घोड़े के गले मे रुन-झुन रुन-झुन घुँघरू बज रहे हैं। उत्साहीन, निरानन्द, निःस्पृह! मैं निद्रित हूँ या जागृत? कहाँ चल रहा हूँ, कौन रास्ते को देखता रह गया है? कौन रास्ते से होकर चला गया? मन की दशा कंगाल की तरह क्यो हो उठी है? इतनी बड़ी तीर्थ-यात्रा मे आनन्द क्यो नही? मै चिर परिव्राजक चिर पथिक जो हूँ! तब क्या सब मिथ्या है, सब अर्थहीन है? परलोक, पुनर्जन्म—तब क्या जीवन में विश्वास नही, मरण में सांतन्वा नही?

अर्द्धनिमीलित चक्षुओ से दूर धूप की ज्वाला से आच्छादित आकाश की ओर ताककर बोला—

'कोथा वचे विंधि काँटा फिरिले आज नीड़े
हे आमार पाखी,
ओरे छिष्ट, ओरे क्लान्त, कोथा तोर बाजे व्यथा,
कोथा तोरे राखि?'

'सुफल'

अब यह आखिरी बात कहकर इस पुस्तक को समाप्त कर देता हूँ। दिन चले जाते हैं—वर्ष के बाद नया वर्ष आ गया। मानव-समाज के किनारे-किनारे अकेला आ-जा रहा हूँ। वह पथ अभी भी पार न हो सका; उसका अन्त नहीं, विच्छेद नहीं; जिनको मैं अपने पास ही रखना चाहता हूँ उनको छू भी नही सकता—बीच मे भारी पर्दा है। जिनको दूर फेंक आया था वे दूर चले गये हैं, मन कहता है, तीर्थ-यात्रा तो की है लेकिन 'सुफल' क्या मिला?—पाया तो कुछ नही, किन्तु बहुत कुछ गया है। उस अनन्त पथ के किनारे-किनारे जीवन का बहुत पाथेय फेंक आया हूँ—वन्धुत्व, प्रेम, वात्सल्य, माया और मोह। पुण्य-सचय करने को जाकर और सब संचयो को उत्सर्ग कर आया हूँ। लोभ, लालसा, कामना—ये हाथ बढ़ाकर चलते हैं किन्तु पहुँच नही सकते। विद्वेष बुद्धि, विषय-लिप्सा, आत्मपरता और दम्भ—ये भी यदि एक-एक कर विदा ले लें तो मनुष्य बचे कैसे?

कहीं भी जाने के लिए पाँव बढ़ाने पर महाप्रस्थान का वही पथ रास्ता रोक लेता है। वही दुर्गम और दुस्तर, वही आदि-अन्त-हीन अविच्छिन्न पथ-रेखा मेरे जागरण मे, स्वप्न मे, आहार-विहार में, कल्पना मे और रचना मे, मेरे सब कर्मों मे और आराम में साँप की तरह पुकार उठती है, नियति की भाँति वह सदा मुझे खींचती रहती है, रास्ता भुलाकर अपने ही पथ से ले जाती है। उसी पथ-रेखा ने मुझ को रिक्त और कङ्काल बना दिया है, तब भी तृष्णार्त जिह्वा खोलकर व्याकुल बाहु फैलाकर कहती है, 'और दो, मेरी भूख नहीं मिटी है। चले आओ, दौड़कर चले आओ, अपने सब बन्धनो को तोड़कर चले आओ!'

आज वे कहाँ गये जो मेरे लिए सबकी अपेक्षा अधिक आत्मीय थे? आज अपने सगे-सम्बन्धियों को नही पहिचान सकता; बीच मे अपरिचय का भारी पुल है। जिनके पास बैठता हूँ, निकट मे रहता हूँ, जिनको दोनो हाथो के बीच पकड़े रहता हूँ, वे भी मानो बहुत दूर हैं, हाँफते-हाँफते दौड़कर भी मानो उनको नहीं पकड़ सकता, वे मानो स्मृति की सीमा से बाहर चले गये हैं। घर से बरामदा, बरामदे से पानी का नल, नल से रसोई घर—ऐसा जान पड़ता है कि एक दूसरे से सौ कोस दूर हैं, मानो अब नही चल सकता, उन तक नही पहुँच सकता। आज

दीवालों से घिरे क्षुद्र कक्ष के मन्द दीपालोक में बैठकर सोच रहा हूँ कि उस दिन जो सगी-साथी थे उन्होने भी मेरी तरह इस तरह अभिशप्त 'सुफल' सचय किया है, वे भी क्या मेरी तरह ससार के अकिंचित-कर सुख-दुःखो के मध्य नहीं लौट सकते ? वे भी क्या रास्ते में प्रेतो की तरह घूमने-फिरते हैं।

अतीत की स्मृति के पीछे है एक सकरुण वेदना, मैंने एक दीर्घ साँस ली। जो दुर्गम के साथी थे वे आज सभी अच्छे लग रहे हैं। वहाँ ऐश्वर्य और सौभाग्य के नाना आडम्बर हैं, वहाँ जबर्दस्त प्रतियोगिता है, हम यहाँ सभी परस्पर विच्छिन्न हैं—किन्तु दुःख के दुस्तर तीर्थ मे हमारे बीच कोई अन्तर नहीं—वहाँ राजा और रङ्क भाई-भाई हैं, दुःख के उस नरक-कुण्ड में छूत-अछूत का कोई भेद नहीं है।

बहुत दिनों बाद शाह-नगर के एक पथ पर गोपालदा से भेट हुई।

'गोपालदा कैसे हो ? सब अच्छे तो हैं ?'

'अच्छे, तुम ?'

और उत्तर न दे सका।

'यही मेरी खिलौनो की दुकान है भाई। थोड़ा तम्बाकू ही सही।'

किन्तु इतना ही, उसके बाद बातचीत समाप्त ही नही हो पाती थी, आज उसका कितना उल्टा है, बीच मे आज अपार विच्छेद हो गया है, हम फिर एक दूसरे के निकट नही आ सकते। तम्बाकू सुलग रहा था, उन्होने उसके चक्राकार धुँए की ओर देखते-देखते एक बार कहा—सोचता हूँ कि इस साल फिर जाऊँगा—फिर वही भाग जाऊँ!

मौखिक सौजन्य के बाद दुकान से उठकर चला आया। दिन के बाद दिन चले जाते हैं।

श्याम बाजार के रास्ते जाते हुए एक बार पीछे से कानो मे आवाज आई—दादा ठाकुर कैसे हो ?

मुँह फेरकर देखा तो एक स्त्री-जन। चुपचाप देखता रहा।

'नहीं पहिचान पाये, मै वही भुवनदासी हूँ।' साष्टांग प्रणाम कर वह फिर बोली—आपकी दया का आग्रह कभी भूल सकती हूँ, आपके ही कारण तो मा-गोसाँई के हाड़ घर को वापस लौट सके! सेठ के बाग से कभी अपने चरणो की धूल माथे पर रखने का अवसर देना, दादा ठाकुर। पास ही है, उल्टाडिंगी मे।

और इधर-उधर की चर्चा के बाद उसने विदा ली। यह उस दिन मेरी दृष्टि मे अत्यन्त विचित्र, रहस्यमय मानव-प्राणी, अपार्थिव और

अलौकिक, युग-युगान्तर के जन्म-मृत्यु चक्र से पार हुआ तीर्थ-यात्री, दूर आकाश के किसी ऐसे ग्रहलोक के जीव के समान जिसका अभी वैज्ञानिकों ने आविष्कार ही नहीं किया हो, के समान दिखाई दी—शहरी सभ्यता के कोलाहल के मध्य खड़े होकर इसको पहिचानना बहुत ही कठिन है। यदि हिमालय के पर्वत-शिखरों, बरफ की नदियो के किनारे, घने वनो की निस्तब्धता, प्राणान्तकर पथ के पीड़न मे इनको फिर से न देखा जाय तो इनको पूर्ण रूप से नही पहचाना जा सकता।

महानगर के राजपथ पर सरपट चला जाता हूँ। रास्ते में लोगों की भीड़ मिलती है, बोलने की इच्छा होती है, मुझको क्या तुम लोग नहीं पहिचानते, मैं वही तो हूँ? मुझमे क्या परिवर्तन हो गया है? क्यों सभी को नहीं समझ सकता। यह हृदय कठोर क्यो हो गया?

कहानी लिखता हूँ, उपन्यास लिखता हूँ, किन्तु उनके भीतर से छिपकर मानव-जीवन का यह प्रश्न बोल उठता है—जीवन क्या साहित्य से बड़ा नही है? क्या मानव-यात्री स्वर्ग-राज्य की प्रतिष्ठा की कल्पना मे एक दिन तीर्थ-यात्रा नहीं करेंगे? क्या परम आशा की वाणी उनके कानों में नहीं गूँजेगी? उच्च जीवन, निष्पाप प्रेम, अकलङ्क मनुष्यत्व, दाक्षिण्यमय जीवप्रीति—ये क्या उस अलौकिक तीर्थ-पथ के पाथेय नहीं बनेंगे?

गेरुए वस्त्र तो छूट गये हैं किन्तु वैराग्य छूटना नही चाहता। वह वैराग्य महाप्रस्थान के पथ की धूल से धूसरित है। वह वैराग्य इस लोक, परलोक, पुनर्जन्म सभी प्रश्नों के ऊपर उठ गया है। उसके चारो ओर ईश्वर नहीं, सृष्टि नहीं, जन्म-जरा-मृत्यु नहीं; उसका पथ तो चिररात्रि-चिरदिन पार कर लोक-लोकान्तर की ओर चला गया है। वह मृत्युलोक को पार कर जायगा, ग्रह-नक्षत्र-सौर-जगत के पार चला जायगा, महाकाश के सीमाहीन प्रकाश-समुद्र को पार कर कभी वह स्वर्गलोक पहुँच जायेगा।

'जा किछु पेयेछि, जाहा किछू गेलो चूके,
चलिते-चलिते पिछे या रहिलो पड़े
जे मणि दुलिल जे व्यथा बिंधिल बूके
छाया हये जाहा मिलाय दिगन्तरे;
जीवनेर धन किछूई जावे ना फेला,
धूलाय तादेर जत होक अवहेला
पूर्णेर पद-परश तादेर परे ॥'

इस पुस्तक पर कुछ सम्मतियाँ

'तुम्हारे यात्रा-वर्णन में यह बात बराबर दिखाई देती है कि तीर्थ-यात्रा-पथ में तीर्थ-देवतागण तुम्हारे चित्त को आच्छन्न नहीं कर सके और सहयात्रियों के प्रति तुम्हारा मुक्त मन सदा खुला रहा।'

—शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय

'आपने तीर्थ-भ्रमण का जो एक वास्तविक चित्र आँका है, मालूम होता है इसी के फल-स्वरूप आपका यात्रा-वृत्तान्त रस-साहित्य में रूपान्तरित हो गया है।...'राधारानी' के लिए मुझे सचमुच कष्ट हुआ है और आपके ऊपर क्रोध आ रहा है—आपकी हृदयहीनता के लिए. .

'रानी' का जो चित्र आपने खींचा है वह जैसा सुन्दर है, वैसा ही हृदयग्राही भी बना है। पुस्तक समाप्त करने पर, और पाठकों की तरह मुझे भी रानी के सम्बन्ध में और भी जानने की इच्छा हुई।...'

—सुभाषचन्द्र बोस

'हम हिन्दुओं के लिए हिमालय केवल एक विराट पर्वत नहीं है, उसके साथ एक विराट idea है और विराट idea का आकर्षण एक बड़े चुम्बक के आकर्षण के समान है।

यह पुस्तक कहानी भी है। और यह कहानी है उनके सहयात्रियों की कहानी।. .लेखक ने थोड़े से ही शब्दों में इनके चित्र खींचे हैं फिर भी इनमें से प्रत्येक जीवित मनुष्य हो उठे हैं।

...इस 'कहानी' की केन्द्र है रानी जो साहित्य की एक अपूर्व सृष्टि है। ..रानी के अन्तर में हमें वही निर्मल उदार आकाश दिखाई देता है जो महाप्रस्थान के पथ पर, यात्रियों के चारों ओर विराजमान था।'

—प्रमथ चौधरी

'यात्रा सम्बन्धी अन्य पुस्तकों के समान यह पुस्तक नहीं है। सच पूछिये तो यह एक ऐसे बेचैन नवयुवक के निर्माणकारी मस्तिष्क की पठनीय कृति है जिसको 'अज्ञात का आकर्षण' हिमालय को खींच ले गया। .

बँगला साहित्याकाश में श्री सान्याल एक उदीयमान सितारे हैं और यह पुस्तक निश्चय ही उन्हें प्रसिद्ध आधुनिक लेखकों की श्रेणी में रखती है।. पुस्तक की भाषा और शैली सजीव है जो लेखक की अपनी है। प्रकृति की विभिन्न छटाओं का उन्होंने अद्भुत चित्रण किया है। पाठक पढ़ते-पढ़ते नहीं अघाता।

पुस्तक की एक बड़ी विशेषता इसका कथानक-आधार है।...थोड़े से ही शब्दों में चरित्र-चित्रण करने में लेखक ने कमाल हासिल किया है।.. राधारानी जो स्नेह, ममता, दया तथा दाक्षिण्य की प्रतिमूर्ति है, सुन्दर चित्र है। . दूसरा चित्र जो पुस्तक समाप्त करने पर भी हमारी आँखों के आगे से नहीं हटता रानी है। यह सुसंस्कृत, प्राणपूर्ण विदुषी विद्युत-धारा से भरे हुए एक तार के समान इस यात्रा-वर्णन को प्रबल जीवन-स्पन्दन से भर देती है। ..वास्तव में, वह बँगला साहित्य में अत्यधिक आकर्षक तथा आश्चर्यजनक चरित्रों में से एक है।'

—'अमृतबाजार पत्रिका'